कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प

(हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय की पीएच.डी उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध)

***

शोध प्रबंध

(अगस्त 2011)

891.433109
SHA/Kam

***

शोधार्थिनी

निधि शर्मा

Certified copy

All correction suggested by referees have been incorporated in thesis

Prof. Satyakam

(External Examiner)

***

शोध निर्देशक

25 August 11

डा. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व'

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

***

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, गोवा - 403206

T-539

CERTIFICATE

As per the Goa University Ordinance I certify that this Thesis entitled "Kamleshwar ka Katha Sahitya : Kathya Evam Shilp" "कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प" is record of research work done by the candidate herself during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Date : 25 August 2011
Taleigao plateau
Goa 403206

Research Guide
Prof. B.K. Sharma 'Rohitashva'
Professor, Department of Hindi
Goa University

DECLARATION

I, the Undersigned herself declare that this thesis entitled –'Kamleshwar ka Katha Sahitya :kathya Evam Shilp' "कमलेश्वर कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प" has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this University or any other University.

Date : 25 August 2011

Taleigao

Goa 403206

Nidhi Sharma

Research Student

प्राक्कथन

स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में कमलेश्वर का योगदान निम्न मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं के चित्रण में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दृष्टि के तहत देश-काल व युग के तात्कालिक सवालों से ही निर्देशित होती रही हैं। कमलेश्वर ने अपनी रचना और वैचारिकता को प्रेमचन्द और गोर्की के विचारों के आलोक में ही परिष्कृत किया तथा आदमी और साहित्य को एक-दूसरे का पर्याय मानकर अपनी साहित्य यात्रा की शुरूआत की।

स्वतंत्रता के पश्चात् 'नई कहानी' आन्दोलन ही साहित्यिक विचार-विमर्श का केन्द्रीय मुद्दा रहा है। भारतीय समाज में व्याप्त अनेक विषमताओं एवं विसंगतियों-दरिद्रता, नग्नता, परवशता, दहेज, बेरोजगारी, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, जातिवाद, संत्रास, हीनभाव, कुंठा, शून्यता, अकेलापन, विषाद, अजनबीपन आदि का यथार्थ चित्रण 'नई कहानी' आन्दोलन में हुआ है। कमलेश्वर 'नई कहानी' के प्रबल पैरोकार, सचेतन, एवं 'अकहानी' आदि आन्दोलन के समीक्षक तथा 'समांतर कहानी' के सूत्रधार ही नहीं रहे हैं बल्कि कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रतिष्ठाप्राप्त एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी कथाकार भी रहे हैं।

समकालीन चेतना से प्रभावित कथाकार होने के नाते कमलेश्वर ने अपने लेखन के माध्यम से अपने देश-काल व युगीन परिवेश को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ व्यक्त किया तथा नयी परिस्थितियों, विचारधाराओं, मान्यताओं तथा नये मान मूल्यों को अपनी रचनाओं में कलात्मकता से प्रस्तुत किया है। कमलेश्वर ने विपुल मात्रा में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, अनुवाद एवं

संपादित साहित्य रचा है। उनका व्यक्तित्व और साहित्य मानवतावाद को प्रतिबिम्बित करता है।

विवेच्य शोध प्रबंध का शीर्षक है 'कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प'। कमलेश्वर के कथा-साहित्य के विविध पहलुओं का सम्यक विश्लेषण ही इसमें किया गया है। कमलेश्वर के समग्र साहित्य को लेकर कई आलोचनात्मक ग्रंथ तथा शोध प्रबंध उपलब्ध रहे हैं, जिनमें प्रमुख हैं माधुरी छेड़ा का 'कमलेश्वर का कथा-साहित्य', मंजुला देसाई का 'कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन', सूर्यनारायण रणसुभे द्वारा रचित 'कमलेश्वर :संदर्भ और प्रकृति', रेखा शर्मा का 'कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान' तथा के.पी जया का 'कथाकार कमलेश्वर' आदि।

विवेच्य शोध प्रबंध 'कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प' को एक अलग दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। कमलेश्वर के समग्र कथा साहित्य का मुख्यतः 'कथ्य एवं शिल्प' पक्ष को लेकर कोई शोध या आलोचना कार्य अथवा विवेचनात्मक अध्ययन दृष्टिगत नहीं होता। साथ ही इनमें कमलेश्वर के 2000 ई. से लेकर 2006 ई. तक प्रकाशित उपन्यासों का समावेश नहीं किया गया है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मैंने अपने शोध प्रबंध के लिए उपर्युक्त विषय का चयन किया तथा कथा-साहित्य-कहानी एवं उपन्यास का कथ्य परक एवं शिल्प परक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध उपसंहार सहित छह अध्यायों में विभक्त है। । साथ ही अन्त में एक विस्तृत सन्दर्भ ग्रंथ सूची भी प्रस्तुत है। **'कमलेश्वर' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'** नामक प्रथम अध्याय में कमलेश्वर के जीवन, शिक्षा-दीक्षा, अध्ययन-व्यवसाय, संपादन, अनुवाद और कथा साहित्य सृजन का परिचय दिया गया है। कमलेश्वर के जीवन के प्रमुख प्रेरणा-स्त्रोतों पर विचार करते हुए उनके रचना संसार का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

'कथाकार कमलेश्वर : युगीन परिवेश' नामक द्वितीय अध्याय में समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा राजनैतिक एवं साहित्यिक परिवेश की विवेचना की गयी है।

'कमलेश्वर का कहानी संसार : कथ्य संबंधी विवेचन' नामक तृतीय अध्याय में कथ्य को आधार बनाते हुए उनकी कहानियों में प्रस्तुत गाँव-कस्बे का जीवन रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही प्रमुख पुरूष पात्र, राजनैतिक चेतना तथा स्त्री-पुरूष जीवन के परिवर्तित सम्बन्धों को विश्लेषित किया गया है।

'कमलेश्वर का उपन्यास संसार : विषयवस्तु एवं पात्र' नामक चतुर्थ अध्याय में कमलेश्वर के उपन्यासों के कथ्य पर प्रकाश ड़ालते हुए निम्न एवं मध्यवर्गीय जीवन और समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। कमलेश्वर के विभिन्न उपन्यासों में विश्लेषित विभिन्न प्रवृत्तियों के पात्रों की सम्यक चर्चा भी यथाशक्ति की गयी है। साथ ही स्त्री-पुरूष के दाम्पत्य जीवन में उनके परिवर्तनकारी संबंधों एवं स्वरूपों पर चर्चा करते हुए वर्तमान दौर में निम्न एवं मध्यवर्गीय जीवन में जो संक्रमण बोध पनप रहा है उसकी विवेचना तथा मध्यवर्गीय अभिलाषा और जीवन संत्रास की भी चर्चा की गयी है।

'कमलेश्वर के कथा-साहित्य का शिल्प विधान' नामक पंचम अध्याय में कमलेश्वर के कथा-साहित्य को मद्देनजर रखते हुए शिल्प संबंधी विविध आयामों को विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है। जिसमें कमलेश्वर की भाषा-शैली, बिम्ब एवं प्रतीक प्रयोगों का यथासंभव विश्लेषण करते हुए उनके कथा-साहित्य संबंधी सम्प्रेषण परक तत्वों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

"कमलेश्वर का कथा-साहित्य : योगदान एवं सीमाएँ" नामक उपसंहार के अंतर्गत प्रगतिशील परम्परा के कथाकार के रूप में उनके कृतित्व का साररूपी मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। साथ-ही उनके लेखन की विशिष्टता और सीमाओं का रेखांकन करने का प्रयास भी किया गया है।

विभिन्न रचनाकारों और आलोचकों के लेखन का आभार मानते हुए शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के समय अपने जीवनदाता पिता श्री ब्रिजेन्द्र कुमार शर्मा, माता श्रीमती आशा शर्मा के प्रेरक शब्दों को याद कर रही हूँ। उनके आशीर्वाद एवं स्नेह भावना के कारण ही यह कार्य पूर्ण हो सका है। मैं अपने पति महेन्द्र सिंह रावत के प्रति सहज आभार प्रकट करती हूँ। मेरे इस शोधकार्य के दौरान वे मुझे प्रोत्साहन, सहयोग एवं प्रेरणा देते रहे हैं।

विवेच्य शोध कार्य का प्रणयन और लेखन गोवा विश्व-विद्यालय हिन्दी विभाग के आदरणीय प्रो.बी.के.शर्मा 'रोहिताश्व' जी के दिशा निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। सतत् अध्ययन की प्रेरणा और सृजनात्मक विश्लेषण वाला कार्य करने की प्रवृति उन्हीं से जानी है। उनकी तर्क संगत विश्लेषण दृष्टि से मैं आद्यन्त प्रभावित रही हूँ। उनके प्रति मेरी भावना जो है, उसके लिए आभार प्रदर्शन की औपचारिकता मनस्तत्व में महसूस करती हूँ।

हिन्दी विभाग के वरिष्ठ सदस्यों प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र, डॉ.इशरत खान, डॉ.वृषाली मान्द्रेकर और डॉ.चन्द्रलेखा डिसूजा ने समय-समय पर मेरी हिम्मत अफजाई की है। अजय जोशी के टंकन कार्य वाले अतिशय सहयोग के लिए मैं सदैव उनकी आभारी रहूँगी। हिन्दी विभाग के कार्यालय में संजना महाले और दिलीप आगापुरकर का सहयोग भी हमेशा प्राप्त होता रहा है।

विवेच्य शोध प्रबंध 'कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प' का विशेष अध्ययन हिन्दी जगत के पाठकों व अध्येताओं के लिए लाभदायक सिद्ध होगा ऐसी आशा की जाती है। सृजना और आलोचना के क्षेत्र में मेरा यह एक विनम्र प्रयास भर है।

दिनांक : 30 अगस्त 2010

निवेदिका

स्थान : गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव

निधि शर्मा

(पी.एच डी. शोधछात्रा)

अनुक्रम

कमलेश्वर का कथा-साहित्य : कथ्य एवं शिल्प

1. **कमलेश्वर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व** 4

1.1 कमलेश्वर का जीवनवृत 4
1.2 कमलेश्वर का व्यक्तित्व 14
1.3 कमलेश्वर का प्रेरणा स्त्रोत 19
1.4 कमलेश्वर का रचना संसार 25
संदर्भ ग्रंथ सूची 46

2. **कथाकार कमलेश्वर : युगीन परिवेश**

2.1 सामाजिक- आर्थिक परिवेश 53
2.2 धार्मिक- सांस्कृतिक परिवेश 58
2.3 राजनैतिक परिवेश 61
2.4 साहित्यिक परिवेश 64
संदर्भ ग्रंथ सूची 66

3. **कमलेश्वर का कहानी संसार : कथ्य सम्बन्धी विवेचन**

3.1 कमलेश्वर की कहानियाँ : गाँव कस्बे का जीवन 69
3.2 कमलेश्वर की कहानियाँ : प्रमुख पुरूष पात्र 74
3.3 कमलेश्वर की कहानियाँ : राजनैतिक चेतना 78
3.4 स्त्री-पुरूष जीवन के परिवर्तित सम्बन्ध 91
संदर्भ ग्रंथ सूची 104

4. **कमलेश्वर का उपन्यास साहित्य : विषयवस्तु एवं पात्र**

4.1 कमलेश्वर का उपन्यास संसार : निम्न एवं मध्य वर्गीय जीवन 108
4.2 कमलेश्वर का उपन्यास साहित्य : विभिन्न प्रवृत्तियों के पात्र 120
4.3 स्त्री-पुरूष जीवन के परिवर्तनकारी सम्बन्ध 125
4.4 संक्रमणशील जीवन-मूल्य 132
संदर्भ ग्रंथ सूची 148

5. **कमलेश्वर के कथा-साहित्य का शिल्प विधान**

5.1 भाषा-शैली एवं शिल्प विधान 152
5.2 बिम्ब एवं प्रतीक प्रयोग 162
5.3 कमलेश्वर का कहानी संसार एवं शिल्प 166
5.4 कमलेश्वर के उपन्यास और शिल्प प्रयोग 179
संदर्भ ग्रंथ सूची 196

6. **उपसंहार : कमलेश्वर का कथा-साहित्य : योगदान एवं सीमाएँ**

6.1 कथा-साहित्य सम्बन्धी वैशिष्टय 201
6.2 योगदान और सीमाएँ 208
संदर्भ ग्रंथ सूची 210

संदर्भ ग्रंथ सूची 211

****

कमलेश्वर का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प

समकालीन कथा साहित्य में कमलेश्वर एक लोकप्रिय कहानीकार और रोमांटिक भावबोध के उपन्यासकार माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना जन-जीवन के संघर्ष के प्रति व्यामोह, विशिष्ट प्रवृति वाले पात्रों का लेखा-जोखा पाया जाता है। समसामयिक सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों को झेलते हुए उनके पात्र हमें आसपास के जीवन्त व्यक्ति नजर आते हैं। कहीं-कहीं राजनैतिक-सांस्कृतिक संक्रमण को झेलते हुए उनके जुझारू पात्र किसी विशेष विचारधारा एवं दर्शन से परिचारित सौदेश्यपूर्ण जीवन के राही प्रतीत होते हैं।

कमलेश्वर नयी कहानी आन्दोलनों के प्रमुख तीन तिलंगों (थ्री-मस्किटेयर्स) याने प्रतिबद्ध लडाकों में से एक रहे हैं; जो 'सारिका' पत्रिका के संपादन दौर में भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों को 'समांतर कहानी आन्दोलन' में शिरकत करने की प्रेरणा भी देते हैं।[1] कोंकणी के दामोदर मावजो, तेलुगु के निखिलेश्वर, मराठी के भालचन्द्र नेमाडे, कन्नड के के. पट्टणशेट्टी आदि रचनाकारों ने कमलेश्वर को न केवल एक सार्थक रचनाकार माना है बल्कि उन्हें अन्य रचनाकारों को सतत लेखन में सक्रिय रहनेवाला प्रेरक व्यक्तित्व भी माना है।[2]

कमलेश्वर ने आजीवन अपने लेखन के लिए एक सतत लड़ाई लड़ी है। राजेन्द्र यादव ने भी उसकी रचना प्रक्रिया को सांकेतिक रूप में रेखांकित किया है कि "शांति और एकाग्रता केवल उस समय , जब कलम हाथ में हो, वरना कमलेश्वर से कभी मिल लीजिए... वह या तो कहीं से भागता-दौड़ता चला आ रहा होगा, या उसे कहीं जाना होगा ... लगता है, जैसे वह कहीं फौजों को लड़ते छोड़ आया है और जाते ही उसे उनका चार्ज संभालना है .. कोई लड़ाई है, जिसे जाकर फिर से लड़ना है।"(3) कहना न होगा कि कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के स्त्री एवं पुरूष पात्रों के जीवन की विसंगतियों को चित्रित करने एवं अभिव्यक्ति प्रदान करने की लड़ाई लड़ी है।

कमलेश्वर के कथा साहित्य पर विचार करते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि "कहानियों में कस्बाई जीवन के उनके अनुभव तथा अछूते जीवन संदर्भ तो उभरे ही, कस्बाई जीवन का अतिक्रमण करते हुए नगरों - महानगरों के जीवन की विसंगतियों पर भी उन्होंने उतनी ही प्रामाणिकता के साथ लिखा। एक तरह से अपनी ऐसी रचनाओं में कस्बाई जीवन का कथाकार होने की अपनी छवि को उन्होंने तोड़ा भी। 'जार्ज पंचम की नाक', 'माँस का दरिया', 'खोई हुई दिशाएँ' जैसी उनकी कहानियाँ इसी तरह की कहानियाँ हैं। कमलेश्वर ने कहानी के रचना-शिल्प में बराबर नये प्रयोग किये। उनकी कहानियाँ 'राजा निरबंसिया' रचना दृष्टि के साथ रचना-शिल्प के स्तर पर उनकी प्रयोगशीलता का मानक बनकर सामने आयी। कमलेश्वर की यह, वह कहानी है, जिसके रचना-शिल्प का अनुकरण बाद की कहानी में किया गया। अपने समय से आगे काल का सहचर बनते हुए जो रचनाएँ हमेशा तरोताजा और जीवित बनी रहती हैं, कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी ऐसी ही कहानी है।"(4)

कमलेश्वर के कथा लेखन की मुख्य विशेषता पुराने नैतिक आदर्शो के निर्वाह और आधुनिक जीवन मूल्यों के टकराहट की रही है। कहा भी गया है कि कथ्य के स्तर पर राजेन्द्र यादव जहाँ मध्यवर्गीय जीवन की संवेदनाओं और विसंगतियों के रचनाकार रहे हैं। मोहन राकेश स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के आन्तरिक क्षणों के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं और कमलेश्वर रोमांटिक मिजाज-शैली, अवसाद और मानवीय जिजीविषों के कथाकार रहे हैं।"(5) शिल्प के स्तर पर कमलेश्वर एक सजग, संवेदनशील और प्रयोगधर्मी रचनाकार रहे हैं। जिसकी विवेचना प्रस्तुत अध्ययन के पंचम एवं षष्ठम अध्याय में की जायेगी।

वैसे भी कमलेश्वर ने नयी कहानी आन्दोलन और शिल्प संबंधी प्रयोगशीलता के बारे में कहा है कि "नयी कहानी मेरे लिए आन्दोलन नहीं, नये के लिए निरन्तर प्रयत्नशील और प्रयोगशील रहने की प्रक्रिया है। 'प्रयोगशील' शब्द काफी भ्रामक हो गया है। इस शब्द ने लेखक की जवाबदेही समाप्त करने की कोशिश की है। मेरे लिए प्रयोगशीलता जावाबदेही से निरपेक्ष नहीं है। जो कुछ मैं लिखता हूँ, उसके लिए अपने को जवाबदेह भी पाता हूँ।"(6) वास्तव में कमलेश्वर ने शिल्प-शैली के विभिन्न पैटर्न अपनाए हैं।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में उन्होंने कल्पना और यथार्थ के मिले-जुले फैण्टेसी शिल्प को अपनाया है।

कमलेश्वर ने उपन्यास लेखन में तीव्र गति अपनायी है। यह तो नहीं कहा जायेगा कि उन्होंने विपुल कथा लेखन किया है। बकौल रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "कमलेश्वर (1932 – 2007 ई.) के प्रायः सभी उपन्यास **'एक सड़क सत्तावन गलियाँ'** (1957 ई.), **'डाक बँगला'**(1959 ई.), **'लौटे हुए मुसाफिर'** (1961 ई.),**'समुद्र में खोया हुआ आदमी'** (1967 ई.), **'काली आँधी'**(1974 ई.), **'तीसरा आदमी'** (1976 ई.), **'आगामी अतीत'** (1976 ई.), **'वही बात'** (1980 ई.), **'सुबह दोपहर शाम'** (1982 ई.), **'रेगिस्तान'** (1988 ई.), छोटे-छोटे हैं। इधर आपका एक बडा उपन्यास **'कितने पाकिस्तान'** (2000 ई) प्रकाशित हुआ है।"[7] कमलेश्वर ने फिल्मों के लिए भी संवाद और पटकथा लेखन का कार्य किया है। लोकभारती द्वारा 2004 ई. में प्रकाशित उनका उपन्यास है 'अनबीता व्यतीत'[8] तथा इसके बाद हाल ही में छपे उनके दो उपन्यास हैं -**'अम्मा'** (2006 ई.)[9] तथा **'पति पत्नी और वह'** (2006 ई.)[10]। जो मूलतः हिन्दी पटकथा लेखन के लिए लिखे गये थे और बाद में इनका प्रकाशन उपन्यास के रूप में हुआ है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में इनका विवेचन मूलतः उपन्यास के रूप में ही किया जाएगा।

कमलेश्वर के कथालेखन के बारे में आलोचक शिवकुमार मिश्र का अभिमत रहा है कि "कमलेश्वर ने अधिकतर लघु आकार के उपन्यास लिखे सद्यः प्रकाशित और उनके जीवन के एकदम आखिरी दौर के 'कितने पाकिस्तान' को छोड़कर। इस उपन्यास में कमलेश्वर ने उपन्यास की अंतर्वस्तु में तो अतीत-वर्तमान, मिथक-इतिहास सबको एक दूसरे में गुंफित और समायोजित करते हुए राष्ट्रीय-जीवन की सबसे बुनियादी और अहम समस्या को तो अपना प्रतिपाद्य बनाया ही, रचना-शिल्प के स्तर पर उपन्यास के पारंपरिक ढाँचे को भी लगभग पूरी तरह तोड़ते हुए उपन्यास के रचना-शिल्प की संभावनाओं पर भी विमर्श के एक सिलसिले की शुरूआत की। जहाँ तक लघु उपन्यासों का सवाल है, कमलेश्वर के कथाकार का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने अपने को दुहराया नहीं।"[11] यह बात उनके कथ्य के संदर्भ में सही है लेकिन भाषा-शैली शिल्प में उनकी कस्बाई मानसिकता और मध्यवर्गीय जीवन शैली अभिव्यक्त की है।

कमलेश्वर अपने जीवन काल में एक विवादास्पद व्यक्ति, मित्र, संपादक, कथाकार, पटकथा लेखक आदि रूपों में सक्रिय रहे हैं। हाल ही में उनपर प्रदीप मांडव ने **'महानीच की आत्मकथा'** शीर्षक से एक पुस्तक संपादित की है। जिसमें उनके जीवन के कई अलक्षित, उपेक्षित, अनअपेक्षित संदर्भ उभर कर आये हैं।[12]

कमलेश्वर के कई-रूपवाले संदर्भ, कई आयामों में विभक्त व्यक्तित्व सामान्य पाठक या रचनाकार को प्रभावित कर लेते है। सुरेश कुमार ने कहा भी है कि "कितने कमलेश्वर .. कथाकार कमलेश्वर, नयी कहानी वाले कमलेश्वर, समानान्तर कहानी के प्रणेता कमलेश्वर, नये लेखकों की एक बड़ी

फौज खड़ी करने वाले कमलेश्वर, आम आदमी के जिन्दा सवालों को लेकर व्यवस्था से टकराते कमलेश्वर फिल्मी पटकथा संवाद लेखक कमलेश्वर, संपादक कमलेश्वर, छोटे पर्दे को स्थापित करने और उसे नये आयाम देने वाले कमलेश्वर, 'युग', 'चन्द्रकांता' वाले कमलेश्वर, अपनी अगली पीढी को अपना दोस्त मानकर उसे प्रेरित-प्रोत्साहित करनेवाले कमलेश्वर या फिर सुसंस्कृत और बेहतर इन्सान के रूप में 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' के समक्ष एक आदर्श व्यक्तित्व खड़ा करने वाले कमलेश्वर, पता नहीं एक कमलेश्वर में कितने कमलेश्वर थे।"[13]

1. कमलेश्वर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कमलेश्वर का अधिकांश समय बड़े नगरों-महानगरों में, जीवन और जीविका की आपाधापी के बीच गुजरा। प्रसिद्ध कथा-पत्रिकाओं के संपादक, फिल्मों के संवाद तथा पटकथा-लेखक, आकाशवाणी के कमेंटेटर एवं दूरदर्शन के डायरेक्टर जनरल तक के पदों तथा तमाम दीगर जिम्मेदारियों को संभालते और उनका निर्वाह करते हुए, वे अपने बेहद व्यस्त सफर को अंजाम देते रहे। परन्तु अपनी बुनियादी कस्बाई छवि को वे आखिर तक सँभाले रहे। उनका मिलनसार स्वभाव, व्यवहार की पारदर्शिता, बातचीत का सहज अंदाज, संबंधों को पूरी निश्च्छलता के साथ निबाहने की निष्ठा और बिना किसी भेदभाव के छोटे-बड़े सभी तबकों के लोगों से उनका साहचर्य, ये सारी बातें उनकी कस्बाई मूल की ही देन है, जो उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बनी रहीं, दूसरी बात यह कि घाट-घाट का पानी पीते हुए भी एक निहायत बहुआयामी जीवन की उतनी ही बहुआयामी जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी अपनी रचनाधर्मिता को उन्होंने अक्षत रखा। अपने रचनाधर्मी व्यक्तित्व पर खरोंच तक नहीं आने दी, अपनी पीढी के एक महत्वपूर्ण कथाकार के रूप में अपनी हैसियत बरकरार रखी, अपने समय के हर महत्वपूर्ण विचार, विचारधारा या विचार-दर्शन को बड़े निकट से उन्होंने जाना समझा, उनके सकारात्मक बिंदुओं को अपने विवेक की कसौटी पर जाँचा-परखा, अपने जाँचे-परखे को बेबाक होकर अभिव्यक्त भी किया। जीवन के यथार्थ के प्रति, सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं के प्रति अपने अर्जित विवेक ने उन्हें प्रेरणा दी। अपने पूर्ववर्तियों की विरासत के प्रति भी उनका यही रवैय्या रहा, उससे जो कुछ उन्होंने पाया अपने बदले समय-संदर्भो की अनुरूपता में देखा परखा और तदुपरांत अपनी रचना-धर्मिता का हिस्सा बनाया।

1.1 **कमलेश्वर का जीवनवृत** : महत्वपूर्ण कथाकार, यशस्वी संपादक, फिल्मों के गंभीर पटकथा लेखक और सफल पत्रकार कमलेश्वर को अपने जीवन में यह सफलता पाने के लिए कितना कठिन परिश्रम करना पड़ा है। उनकी शिक्षा-दीक्षा किस वातावरण में हुई, उनका चरित्र और स्वभाव कैसा था, किन परिस्थितियों और प्रभावों से प्रभावित होकर उन्होंने साहित्य सृजन किया। इन्हीं सब बातों और तथ्यों को विस्तार से जानने के लिए कमलेश्वर

के जन्म, शिक्षा, दीक्षा, परिवार, व्यक्तित्व और उनके रचना संसार के संबंध में विचार किया जाना एक अपेक्षित कार्य माना जायेगा।

जन्म : कमलेश्वर का पूरा नाम कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना है, बचपन में इनको कैलाश के नाम से पुकारा जाता था। इनका जन्म 6 जनवरी सन् 1932 ई. को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी कस्बे में हुआ। कमलेश्वर के पिता का नाम जगदंबा प्रसाद सक्सेना था, तथा माता का नाम शान्ति देवी था, कमलेश्वर की माँ उनके पिता की दूसरी पत्नी थी, उनकी माँ विशेषतः वैष्णव धर्म व संस्कारों का पालन करती थी, उनके तीन पुत्रों में सबसे छोटे थे 'कमलेश्वर' जब वे छोटे थे तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई, कमलेश्वर के सबसे बड़े भाई 'रामेश्वर प्रसाद' इलाहाबाद में नौकरी करते थे, वे बहुत पहले ही भविष्य की तलाश में घर छोड़कर चले गये थे, कमलेश्वर के दूसरे भाई थे 'सिद्धार्थ', सिद्धार्थ भैया के साथ कमलेश्वर का अच्छा रिश्ता था, वह बड़े होशियार भी थे, परिवार का भविष्य उन पर ही निर्भर करता था, लेकिन दुर्भाग्य से सिद्धार्थ की अचानक मृत्यु हो गई, इस दुर्घटना ने घरवालों के सपनों को अधूरा बना दिया, विशेषकर कमलेश्वर के जीवन के लक्ष्य को।

कमलेश्वर के परिवार में कुल मिलाकर सात भाई थे, सबसे बड़े भाई सौतेले थे, उनका नाम द्वारका प्रसाद सक्सेना था, कमलेश्वर अपने भाईयों में सबसे छोटे थे, कमलेश्वर का परिवार टूटा बिखरा सामंतवादी तथा मध्यवर्गीय था, उनका बचपन कठिनाईयों में बीता, घर में अभावों ने बालक कमलेश्वर को काफी जिम्मेदार बना दिया, इस संबंध में कमलेश्वर का कहना है, "अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना, खाना खाकर भी भूखा उठना, अकुलाहट भरे दुःखों के बीच भी हँस सकना, बच्चा होते हुए भी व्यस्कों की तरह निर्णय ले सकना, यह मरी आदत नहीं, मजबूरी थी।"(14)

कमलेश्वर जमींदार परिवार के लड़के रहे हैं। पर घर की आर्थिक स्थिति बदहाली में गुजर-बसर कर रही थी। वैसे भी वह लड़ाई (द्वितीय महायुद्ध 1939-1944) का जमाना था। कमलेश्वर का हल्फिया बयान है कि "सामंती घर बुरी तरह ढह चुका था। नौकर-चाकर विदा हो चुके थे, गाय-भैंसे जिन्दा रह सकें, इसलिए उन्हें गाँव भेज दिया गया था। पर हम जिन्दा रह सकें इसका कोई तरीका नजर नहीं आ रहा था। माँ रात ढाई-तीन बजे उठकर हाथों में कपडा लपेट-लपेट कर चक्की से आटा पीसती बर्तन धोती और सुबह होते होते नहा धोकर 'पुराने जमींदार घराने की मालकिन हो जाती। गरीब और टूटे हुए मुहल्लेवालों के घावों पर मरहम लगाती और रात को सूने कमरे में बैठ कर चुपचाप रोया करती।

सिद्धार्थ के कपडे बक्से में से निकाल-निकाल कर देखती और बुरी तरह रोती घर की ऊँचाई और ठोस दीवारें एक भी सिसकी बाहर न जाने देती और दोपहर में माँ सिद्धार्थ के उन्हीं कपड़ों को काट-काट कर मेरे नाप का बनाया करती।"(15) कमलेश्वर को आजीवन पिता को न देख पाने का दुःख सालता रहा, और माँ की विवशता, कातरता, दीनता उसके अवचेन में घर करती रहीं। इसलिए वे अपने कथा साहित्य में नारी पात्रों का चित्रण पूरी

संवेदना और मानवीयता के दृष्टिकोण से करते हैं चाहे वह 'कितने पाकिस्तान' कहानी की सबीना हो या 'राजा निरबंसिया' कहानी की चंदा जिसके प्रति पाठकों के मन में संवेदना, टीस उभरकर आती है।

कमलेश्वर को अपने पिता के बारे में कुछ भी याद नहीं था, उनकी माँ शान्तिदेवी में बहुत हिम्मत थी, मेहनत व संघर्ष करके उनकी माँ ने उनका भरण-पोषण किया, कमलेश्वर अपनी माँ की ही तरह जीवन की हर कठिनाईयों को झेलने के आदि थे, कमलेश्वर की माँ बचपन में उन्हें कहानियाँ सुनाया करती थी और कहती थी, इन्हीं कहानियों को लम्बी एवं विशद करके लिखना। कमलेश्वर की शादी सन् 1958 ई. में गायत्री से हुई, गायत्री बहुत ही मासूम औरत है, कमलेश्वर की पहली पुत्री का निधन जन्म से कुछ समय बाद हो गया था, उनकी दूसरी पुत्री है **'मानू'**, इनका जन्म 19 नवम्बर 1961 को मैनपुरी में हुआ।[16] यह कमलेश्वर की इकलौती पुत्री है, जिनकी शादी भी हो चुकी है, यह एक अध्यापिका है, कमलेश्वर की पत्नी लेखिका हैं। उनकी एक पुस्तक कमलेश्वर "मेरे हमसफर" राजपाल प्रकाशन से प्रकाशित हुई है।

शिक्षा-दीक्षा : कमलेश्वर के पचहत्तर वर्षीय जीवन में लगभग पचपन-साठ वर्ष घोर परिश्रम और सक्रियता के रहे हैं, कमलेश्वर के परिवार की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, इसलिए उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत ही कठिनाईयों में गुजरा, उन्होंने ऐसे वातावरण में शिक्षा प्राप्त की जहाँ पर न तो फीस के लिए पैसे थे, न कोई किताबें थीं और ना परीक्षा के समय कोई पीठ थपथपाने वाला होता था, उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा मैनपुरी में ग्रहण की, उन्होंने विज्ञान विषय लेकर इण्टर किया, इसके पश्चात इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.एस.सी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वह रूडकी इंजीनियरिंग की परीक्षा में भी सफल घोषित किए गए, इलाहाबाद में उनके ज्येष्ठ भ्राता रेलवे में इंजीनियर के पद पर कार्यरत थे और वे कमलेश्वर के अभिभावक भी थे।

जब वह कमलेश्वर को रूडकी भेजने जा रहे थे तो कमलेश्वर ने दबे स्वर में उनसे निवेदन किया कि वह इंजीनियर नहीं बनना चाहते हैं, वह हिन्दी में एम.ए करना चाहते हैं और साहित्यकार बनने की इच्छा रखते हैं, इंजीनियर भ्राता की समझ में यह बात नहीं आई कि इंजीनियर बनने का अवसर छोड़कर वह पद-प्रतिष्ठा पाने के बजाय एक घोर अनिश्चित भविष्य क्यों चुनना चाहते हैं ? कहाँ इंजीनियरी का रौब-दाँव, कहाँ साहित्यकार बनकर मारे-मारे फिरने का फितूर बड़े भाईसाहब ने गंभीर होकर कहा - "तो फिर हिन्दी में एम.ए ही करो, मगर इस बात का ख्याल रखना कि तुम्हारी पढाई पर जो खर्च आए वह कहीं व्यर्थ न चला जाए।"[17]

यह बात कमलेश्वर को लग गई और कमलेश्वर ने बड़े भाई की ताकीद को गाँठ बाँध लिया और उन्होने एम.ए. की पढाई करते हुए, इलाहाबाद में स्व-अर्जित राशि से ही अपनी पढाई पूरी की, उन्होंने बोर्ड पेंट किए। उपेन्द्रनाथ अश्क के पास रहकर हिन्दी **'संकेत'** के संपादन में योगदान दिया, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक आदि लिखे और किसी भी तरह बड़े भाई

पर निर्भर नहीं रहे, दरअसल इलाहाबाद विश्वविद्यालय से नहीं बल्कि जीवन के विश्वविद्यालय से उन्होंने जो कुछ अर्जित किया वही उनके आगे के जीवन की पूँजी बना, उन्होंने आगत की कभी चिंता नहीं की अपनी सहजता को हर हाल में बरकरार रखते हुए संघर्ष की राह चुनी, अच्छी-भली, लगी-लगाई नौकरियों का कभी मोह नहीं किया, सुविधाओं को झटकने में, कभी सोचने में समय नहीं गवाया, झूठी मर्यादाओं और हवाई महत्वाकांक्षाओं को अपने इरादों के रास्ते में नहीं आने दिया, गलत का विरोध और निर्भयता उनकी आन-बान की परिचायक है।

सन् 1954 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. किया, वह पी.एच.डी करना चाहते थे, उन्होंने अनुसन्धान कार्य को भी प्रारम्भ किया था, लेकिन उन्होंने न तो विश्वविद्यालय की नौकरी की और न ही सरकार की, इसलिए पी.एच.डी अधूरी छोड़कर कठिनाईयों और संघर्ष भरा साहित्य का मार्ग चुना और अपने आस-पास के लोगों के जीवन में रोशनी की ज्योति तथा भविष्य की आस जगाने के लिए अपने आपको सीमित कर दिया।

जीवन संघर्ष : कमलेश्वर नाम है एक संघर्ष का, आत्मविश्वास का, उनकी असाधारण सफलता का रहस्य है खुद अपने से टक्कर लेने की सामर्थ्य एवं मनोबल, वे दिन-रात लड़ते दिखाई देते थे, उन्होंने यह लड़ाई दो स्तरों पर लड़ी है, इस बारे में दुष्यंत कुमार का कहना है - " उनकी यह लड़ाई दो स्तरों पर है ... खुद अपने से और अपने साथ की विसंगतियों से, इस लड़ाई में वह हर हथियार इस्तेमाल करता है इसलिए उसके व्यक्तित्व के बाहरी रूप में विरोधाभास बहुत प्रबल है, भीतरी या अचेतन की अपेक्षा उसका चेतन कहीं अधिक क्रूर है, ऊपरी एक पर्त के नीचे वह सघन इन्सान है, वह बाहर एक धूर्त पहरेदार भी बैठा हुआ है, लिहाजा उस धूर्त पहरेदार से टकराये बिना उसके इन्सान से मुलाकात नहीं होती, वह धूर्त पहरेदार आपको व्यंग्यों, चुटकियों और चुस्त वाक्यों में छेद ड़ालता है, तेज से तेज व्यक्ति को निस्तेज कर देता है।"[18]

बाल्यावस्था : कमलेश्वर का बचपन मैनपुरी के कटरा मुहल्ले में गुजरा वैसे कहने को तो जमींदार परिवार था, परन्तु घर की अंदरूनी हालत छातों व दीवारों की तरह खस्ता थी, मकानों के दो-दो, तीन-तीन रूपये किरायों के आधार पर (जो प्रायः वक्त पर न मिलते) घर लंगड़ता चल रहा था, उनका अभावग्रस्त बचपन आर्थिक तनावों से गुजरा, जमींदारी ठाठ के समाप्त हो जाने के बाद भी उनकी माँ ने सामंतीशान को बनाए रखने का भरसक प्रयास किया, अपने आभावों को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है -"अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना, खाना खाकर भी भूखा उठना, अकुलाहट भरे दुःखों के बीच हँस सकना, बच्चा होते हुए भी व्यस्कों की तरह निर्णय ले सकना, मेरी मजबूरी बन गई थी।"[19]

घर की आर्थिक तंगी का अंदाज इससे ही लग जाता है कि मृत भाई (सिद्धार्थ) के कपडों को काट-काट कर छोटे कपडे कमलेश्वर के लिए बनाये जाते। माँ की धोती की किनारियों से स्कूल का बस्ता बनता, उनके पढने के

लिए ना किताबें होती ना कापियाँ, रबड या पैन्सिल खरीदने तक के लिए एक आना भी समस्या बन जाती थी, भूगोल की कक्षा के लिए नक्शा न खरीद पाने के कारण दो-तीन दिन स्कूल से अनुपस्थित रहना, पढने के लिए म्युनिसिपैलिटी की लालटेन से तेल चुराना, स्कूल की फीस जमा न कर सकने के कारण डाँट व अपमान झेलना, यहाँ तक कि अन्य बच्चों को चाट-पकौडी आदि खाते देखकर सिर्फ पानी का गिलास पीकर रह जाना, इस अभावों तथा अपमानों से उनके शैशव का हास्य खो गया, स्कूल, बाजार और दुकानदारों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से बालक कमलेश्वर को ठेस पहुँचती, छमाही परीक्षा में अव्वल आते परन्तु वार्षिक परीक्षा में किसी इंस्पैक्टर, तहसीलदार आदि के बच्चे अव्वल आते, "अव्वल आना मेरे लिए पढाई की दृष्टि से उतने संतोष की बात नहीं थी, जितनी की आर्थिक विवशता के दृष्टिकोण से थी।"[20] इस प्रकार उनके कस्बे मैनपुरी का बाल्यावस्थाकाल, आर्थिक तंगियों से गुजरा, इन तनावग्रस्त दिनों का प्रभाव उनके जीवन पर हमेशा ही रहा।

किशोरावस्था : कमलेश्वर की किशोरावस्था भी बाल्यावस्था के समान ही संघर्षपूर्ण रही। वे किशोरावस्था के प्रारंभिक वर्ष में मैनपुरी कस्बे से जुड़े रहे तो बाद के वर्षो में इलाहाबाद से जुड़े रहे, सन् 1946 में हाईस्कूल पास करने के पश्चात कमलेश्वर की माँ ने गांधारी की तरह आँखों पर आसुओं की पट्टी बाँधकर उन्हें अध्ययन के लिए मैनपुरी से बाहर भेज दिया, कमलेश्वर के सौतेले भाई उन्हें आगे पढाने के पक्ष में न थे, परन्तु माँ ने किराये का धीरे-धीरे जुगाड़ करके कमलेश्वर को पढ़ने भेज दिया, उन्होंने ट्यूशन आदि करके अपनी पढाई जारी रखी।

बचपन के अकेलेपन व संघर्षों ने उन्हें संकोची और अन्तर्मुखी बना दिया, परन्तु किशोरावस्था में आकर उस विद्रोह ने जो कि बचपन में वैष्णव संस्कारों से दब गया था, जड़ पकड़ ली, समाजवादी पार्टी से जुड़ने पर उनके भीतर पनप रहे विद्रोह को एक सही दिशा मिली, भावुकता और उन्माद की आयु में उनका परिचय मैनपुरी में ही 'क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी' से हो गया था, परन्तु इलाहाबाद जाकर भगतसिंह व चंद्रशेखर की उसी पार्टी में वे सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में जुड़ गये, इस पार्टी के अखबार 'जनक्रांति' में वे शहिदों एवं क्रांतिकारीयों की जीवनगाथाएँ लिखा करते थे।"[21]

कमलेश्वर का सर्वप्रथम लेख भारतीय क्रांतिकारियों पर 'कामागातामारू' था, इस प्रकार कमलेश्वर के मस्तिष्क में किशोरावस्था में ही कामपंथी विचारों का बीजवपन हो गया था, उनका पार्टी से जुड़ने का कारण आर्थिक न था बल्कि उन्हें अर्थपूर्ण जिन्दगी जीने की प्रबल इच्छा थी, सन 1947 का समय भारत की आजादी और विभाजन का था, इस समय वे जीवन की सार्थकता, शरणार्थी कैंपों में रसद पहुँचाकर, स्वयंसेवक बनकर तथा उनकी सहायता करके महसूस कर रहे थे।

किशोरावस्था में वे आदर्शों को स्थापित कर रहे थे, जो बाद में उनकी प्रारंभिक कहानियों में, कथाओं में मुख्य रूप से उभर आया था, इसी कच्ची किशोरावस्था में ही वे जीवन की कड़वाहट से भी परिचित हुए, उन्होंने यथार्थ

का पहला सबक यहीं से सीखा, विभाजन के पश्चात पार्टी के सदस्य दूसरे दलों से मिलकर अपनी सीटें सुरक्षित कराकर पार्टी व कमलेश्वर को अनाथ करके चले गये, पार्टी के लोगों की स्वार्थपरता से वे बहुत आहत हुए और उनको जीवन का पहला धक्का लगा, उन्हें कटु यथार्थ से प्रथम साक्षात्कार यहीं हुआ, पार्टी में सक्रिय कार्यकर्ता का समय भी यही था, यही 'छल-काल' का भी समय रहा, पार्टी के कारण नाबालिग उम्र में ही कुछ दिनों के लिए वे नैनी जेल की सलाखों के भीतर कैद रहें, इसी कारण उन्हें कॉलेज की परीक्षाओं में दो वर्ष के लिए बैठने नहीं दिया गया।

इसी किशोरावस्था में उन्हें प्रेम का भी अनुभव हुआ, अपने से दो-तीन वर्ष बड़ी उम्र की लड़की के प्रति उन्हें आकर्षण उत्पन्न हुआ परन्तु यह प्रेम विवाहसूत्र में न बँध सका, लड़की का विवाह अन्यत्र कहीं हो गया, अतः यह प्रेम असफल रहा।

युवावस्था : कमलेश्वर को युवावस्था में भी पैर जमाने के लिए काफी संघर्ष करने पड़े, इलाहाबाद आकर अपनी पढाई जारी रखने के लिए एवं गुजारा करने के लिए उन्हें कठिन दौर से गुजरना पड़ा, उन्होंने ट्यूशन इत्यादि करके भी गुजारा किया, उन्होंने बी.ए. में पढ़ते समय इलाहाबाद से निकलने वाली पत्रिका 'बहार' में संपादन कार्य किया, उन्होंने कभी कहीं प्रुफ रीडिंग का कार्य किया तो कहीं छिट-पुट लेखन कार्य किया, अपने बुरे वक्त में 'बुढिया के काजल' का रैप्पर बनाने व साईनबोर्ड बनाने से लेकर चाय के गोदाम की रातपारी में चौकीदारी करके भी उन्होंने गुजारा किया, कमलेश्वर ने जगह-जगह अनुवाद का कार्य एवं रेडियो आदि पर भी कार्यक्रम किये, उनके उन दिनों का अंदाज उनके मित्र एवं सहपाठी दुष्यंत कुमार के इस वक्तव्य से होता है -"हर महीने उनका नाम फीस जमा न करने वाले 'डिफाल्टर' छात्रों की लिस्ट पर रहा करता था, क्योंकि जेब खर्च नाम की कोई चीज उसके पास न होती थी, इसलिए फीस के रूपयों में से कुछ वह हमेशा खर्च कर लेता था और वक्त पर उसके पास पूरे पैसे न होते थे।[22]

कमलेश्वर विश्वविद्यालय के अध्ययन के समय छात्रों की सक्रिय राजनीति में भाग लेते थे, उन्होंने उन दिनों को उद्दाम व साहसपूर्ण कहा है, उन्होंने सन् 1953 में एम.ए. में हिन्दी विषय लेकर दाखिला लिया और इसके साथ ही उनका साहित्य से परिचय हुआ और साहित्य लेखन की ओर उनकी रूचि बढती ही गयी जो कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक चलती रही, यह हिन्दी से एम.ए. में दाखिला न होकर प्रेमचन्द की परम्परा में दाखिला था, तब से आखिर तक वे हिन्दी के होकर रह गये।

सन् 1953 में एम.ए पास कर लेने से ही उनकी समस्याओं का अंत नहीं हुआ, उनकी आर्थिक समस्याएँ ही केवल मुँह खोले न खड़ी थी, उन्हें साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात भी काफी विरोधों और तनावों को झेलना पड़ा, जीवन का रास्ता दुस्तर था, तो साहित्य का प्रस्तरमय, सन् 1954 के पश्चात कहानी-लेखन, उपन्यास लेखन के क्षेत्र में वे कदम रख रहे थे, उनकी सर्वप्रथम कहानी **'सींखचे'** की नोटिस ली गई, परन्तु **'राजा निरबंसिया'**

ने उन्हें प्रतिष्ठा दी, उन्होंने स्वतंत्र लेखन कार्य के अलावा सन् 1954 से 1957 तक **'कहानी'** पत्रिका में सहयोगी संपादन का कार्य किया, इसके साथ ही मिश्नरी स्कूल में पढाने का भी कार्य किया, इस प्रकार 100-150 रूपये महीना उनकी आमदनी हो जाती थी, **'नई कहानी'** (आन्दोलन) को स्थापित करने का कार्य भी मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव एवं कमलेश्वर द्वारा जोर-शोर से हो रहा था, इस आंदोलन के कारण भी उनके जीवन में तनाव आये, सन् 1957 में इलाहाबाद के रेडियो (आकाशवाणी) पर कमलेश्वर ने स्क्रिप्ट लेखन का कार्य शुरू किया, 1957 के अंत में ही उनका तबादला दिल्ली दूरदर्शन में हो गया, उन्होंने सन् 1957 से 1961 तक दूरदर्शन की नौकरी की, उन्हें महसूस हुआ कि सरकारी नौकरी करते हुए सत्ता के खिलाफ या उसके कमजोर पक्ष का उद्घाटन करनेवाला साहित्य-लेखन उनकी नौकरी छुड़वा सकता है, 'यथार्थ एवं अनुभूति की प्रामाणिकता' पर उनकी लेखनी की पकड़ इन विरोधों से ड़गमगाई नहीं। ये उनके जीवन के कठिन वर्ष थे, इस दौरान लेखक कमलेश्वर की सत्ता से सीधे-सीधे टकराहट थी, परिणाम व्यक्ति कमलेश्वर ने भोगा, लेखक कमलेश्वर ने गलत समझौता नहीं किया।

कहना न होगा कि यह व्यक्ति कमलेश्वर पर लेखक कमलेश्वर की विजय हुई, उनकी 275 रूपये मासिक की नौकरी तो छूट गयी, माँ को भी वे रूपये न भेज पाते थे, उनका गायत्री देवी से विवाह भी हो चुका था, इस समय आमदनी का कोई बँधा जरिया न था, परन्तु उसी समय उनकी नौकरी छूटने के बाद एक बिटियाँ हुई, वे बेटी को देखने व पत्नी से मिलने मैनपुरी जाना चाहते थे, परन्तु उनकी जेब खाली थी, उनके ही शब्दों में कहा जा सकता है -"मैनपुरी कस्बे में कोई यह माननेवाला नही था कि दिल्ली जाकर कैलाश यानि मैं (कमलेश्वर) भूखा भी रह सकता हूँ या भूखा मर रहा हूँ, मेरे पास पैसे की इतनी कमी हो सकती है कि मैं अपनी पहली सन्तान के जन्म लेने पर घर न पहुँच सकूँ।"[23] बच्ची की मृत्यु हो गयी और वह गाड़ दी गई, इस घटना ने उनको बहुत धक्का पहुँचाया, उसी अवसाद, निराशा और अजनबीपन, सूनेपन में लिखी गई कहानियाँ है -**'पराया शहर', 'खोई हुई दिशाएँ', 'दूसरे', 'नीली झील',** इस दौरान के उनके प्रसिद्ध उपन्यास - **'डाक बंगला', 'लौटे हुए मुसाफिर'**, आदि हैं।

सन् 1961 से उनके गर्दिश के दिन शरू हो गये, उनके लिए न साहित्य का मोर्चा सरल था और न ही जीवन का, वे न मैनपुरी जाकर बस सकते थे और न ही इलाहाबाद, बस वे दिल्ली जैसे महानगर के जटिल जीवन को झेल रहे थे, अब तो उन पर जिम्मेदारी भी दोहरी थी, जैसे-तैसे इड़ली-सांभर खाकर, बिना शक्कर की चाय पीकर वे गुजारा कर रहे थे, वे अर्थोपार्जन के लिए दो रूपये पर पेज अनुवाद कार्य करते, वे होनसोंग और फाहियान की यात्रा कहानियाँ आदि लिखकर गुजारा करते, परंतु समीक्षा-लेखन या निबंधों का संकलन तैयार करना उनकी विवशता थी।

सन् 1963 तक आते-आते उनके जीवन में थोड़ी स्थिरता आ गई थी, इसी वर्ष "नई कहानियाँ" (दिल्ली) पत्रिका का संपादन कार्य मिला। साथ ही टेलीविजन से भी कांट्रेक्ट मिलने लगे, उनके जीवन के कठिन दिन गुजर गये,

परंतु इस दौरान ही उन्होंने "नई कहानी की भूमिका" लिखकर नई कहानी आंदोलन को प्रतिष्ठित किया। पूर्ववर्ती कहानियों से नयी कहानी के अन्तर को वैचारिक दृष्टि का अंतर बताया है। उनका वक्तव्य रहा है कि -"नयी उम्र के लेखक वातावरण विशेष में या भिन्न परिवेश में एक नये चरितनायक को पेश कर देने से नयी कहानी के स्त्रष्टा बन जाते हैं। किसी विशेष व्यक्ति-वर्ग या समूह के बारे में लिखी गई कहानियाँ नयी ही हो, यह गलत है। पुरानी और नयी कहानी के बीच बदलाव का बिन्दु वैचारिक दृष्टि का है।"(24) उनकी पारिवारिक स्थिरता भी यहीं से प्रारम्भ होती है। एक बिटिया हुई, जिसे प्यार से वे 'मानू' कहकर पुकारते थे। उनका परिवार दिल्ली आकर उनके साथ ही बस गया। वे सन् 1965 तक **"नई कहानियाँ"** पत्रिका से जुड़े रहे।

सन् 1966 में वे दिल्ली छोड़कर **"सारिका"** मासिक पत्रिका के संपादक बनकर सन् 1967 में बंबई आ गये। सन् 1967 के पश्चात कमलेश्वर उत्तरोत्तर स्थिर हो गये। दिल्ली के दु:खो ने उन्हें सफल बनाया तो बंबई के सुखों ने उन्हें स्वतंत्र लेखक के अलावा प्रख्यात संपादक, टेलीविजन के सफलतम कार्यक्रम का संचालक बनाया, समांतर कहानी के प्रणेता और न जाने कितने-कितने विशेषण उनके व्यक्तित्व को गढते गये, उन्हें प्रतिष्ठा, नाम, इज्जत, शोहरत, यश, पैसा सब कुछ मिला। बंबई आने के बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बंबई नगरी में उनके आर्थिक तनाव व संकट के बादल तो हट गये थे, परंतु उनके "सारिका" पत्रिका के संपादन काल में उनका विरोध पूँजीपति प्रतिष्ठान के साथ हुआ। आपातकाल के दौरान व तदन्तर कार्य करना कठिन हो गया। सन् 1978 तक वे 'सारिका' में कार्यरत थे, उनके 'समांतर-आन्दोलन' का मुखिया बनने पर पत्रिका को (मैनेजमेंट) आपत्ति न थी परंतु सत्ता का विरोध करने वाली कलम को कोई भी प्रतिष्ठान स्वीकार करने को तैयार न था, परिणाम स्पष्ट था उन्हें टाइम्स छोड़ना पड़ा।

सन् 1978 में 'सारिका' की संपादकी छूटने के बाद एक बार फिर उनके जीवन में रिक्तता आ गई। जीवन में एक खालीपन आ जाने के बाद भी कमलेश्वर जैसे व्यक्ति इन घटनाओं से निराश नहीं हुए। उन्होंने अपने जीवन के खालीपन को फिल्मी लेखन से भरना चाहा। सन् 1978 से 1980 तक उन्होंने क्रमशः **"कथायात्रा"** व **"श्री वर्षा"** पत्रिकाओं का संपादन बंबई में किया। सन् 1980 में एक बार फिर कमलेश्वर जी को सरकारी नौकरी से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने उन्हें दूरदर्शन (दिल्ली) में संयुक्त महानिदेशक के रूप में नियुक्त किया।

सन् 1986 से फिल्मी लेखन से वैराग्य व स्वतंत्र लेखन के प्रति उनमें अनुराग जगा। इसी वर्ष "गंगा" दिल्ली पत्रिका के संपादक सलाहकार के रूप में वे कार्यरत रहे। सृजन की धारा जो कुछ वर्षो के लिए अवरूद्ध हो गई थी, पुनः प्रवाहित हो चली। 12-13 वर्षो के अंतराल के पश्चात उन्होंने अपने आपको फिल्मी लेखन की ओर समर्पित किया। उन्होंने करीब 30 फिल्मों के संवाद व स्क्रिप्ट आदि लिखे। इसके पश्चात उन्होंने कहानी-लेखन प्रारम्भ किया। एक उपन्यास भी लिखा "रेगिस्तान"। एक कहानी संग्रह भी छपा- "इतने अच्छे दिन"।

कमलेश्वर सन् 1990 जुलाई से 1991 फरवरी तक वे दिल्ली से निकलने वाले पत्र "दैनिक जागरण" में संपादन का कार्य करते रहे। इस पत्र के संपादन के अलावा वे टेलीफिल्म पर भी हाथ आजमा रहे थे। वे इस प्रकार के जन-माध्यम से सदा अंतरंगता से जुड़े रहे हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कमलेश्वर के लिए न तो जीवन सरल रेखा में चला न साहित्य एवं न ही पत्रकारिता की दुनिया। परंतु उन्होंने अपने जीवन की राह, पत्रकारिता में खोज ली और जीवनभर आगे आनेवाले हर संकटों का तत्परता से सामना किया।

आजीविका : कहानी लेखन के साथ-साथ कमलेश्वर के विभिन्न कार्य-क्षेत्र रहे हैं। किशोरावस्था से ही उन्हें कमाई का जुगाड़ करना पड़ा था, आर्थिक तंगी ने उन्हें किशोरावस्था में ही 'मैच्योर' बना दिया था। उनके विभिन्न कार्यक्षेत्र इस प्रकार है : -

- "मैनपुरी में 'प्रकाश प्रेस' में 'प्रूफ-रीडिंग' तथा स्थानीय पत्रिका में थोड़ा बहुत लेखन। "राजा साईन आर्ट" (इलाहाबाद) में साईन बोर्ड की पेंटिंग के कार्य के साथ-साथ ड्राईग का कार्य भी किया। (सन् 1946-47)
- "जनक्रांति" साप्ताहिक (इलाहाबाद) में क्रांतिकारियों की जीवनियाँ आदि लिखते थे। (सन् 1941-48)
- "बहार" सिनेमासिक (इलाहाबाद) में 50 रूपये माहवार पर संपादन।
- "शहनाज आर्ट" साईन बोर्ड पेंटर्स (इलाहाबाद) (1948) में साईन बोर्ड पेंटिंग अनियमित तनख्वाह पर।
- ब्रुक ब्रान्ड चाय के गोदाम की (इलाहाबाद) रातपारी की चौकीदारी दूसरे नाम से की।
- 'कहानी' मासिक (इलाहाबाद) में 100 रूपये माहवार की नौकरी की, उस समय पत्रिका के संपादक श्रीपतराय थे। (सन् 1954)
- 'सेंट जोसेफ्स सेमीनरी' (इलाहाबाद) में भारतीय तथा विदेशी केथोलिक ब्रदर्स के लिए हिन्दी अध्यापन, 125 रूपये माहवार पर। (सन् 1952-57 तक)
- 'राज कमल प्रकाशन' (इलाहाबाद) में साहित्य-संपादक के रूप में 150 रूपये माहवार पर कार्य किया।
- 'श्रमजीवी प्रकाशन' की शुरूआत की। 32 हजार रूपये कर्जा चढ जाने से काम ठप्प।
- 'आल इंडिया रेडियो' (इलाहाबाद) में 275 रूपये माहवार पर स्क्रिप्ट राईटर के रूप में नियुक्त। (सन् 1957)
- 'दिल्ली दूरदर्शन' में तबादला स्क्रिप्ट राईटर के रूप में। (सन् 1957-1959)

- 'दिल्ली दूरदर्शन' में इस्तीफा देकर, दिल्ली में ही स्वतंत्र लेखन में व्यस्त।
- 'नई कहानियाँ' मासिक दिल्ली का संपादन सन् 1963-65 तक किया।
- 'इंगित' साप्ताहिक का संपादन (सन् 1961)
- 'सारिका' मासिक (बंबई) पत्रिका का संपादन मार्च सन् 1967 से 1978 अप्रैल तक।
- 'कथा यात्रा' का संपादन (सन् 1978-79) (बंबई में)
- 'श्रीवर्षा' साप्ताहिक का संपादन (बंबई) (सन् 1979-80)
- दूरदर्शन, भारत सरकार द्वारा संयुक्त महानिदेशक (दिल्ली) (सन् 1980-82)
- बंबई में ही सिनेलेखन सन् 1982 से 1986 तक ।
- 'गंगा' मासिक पत्रिका (दिल्ली) का संपादन सलाहाकार का कार्य। (सन् 1986-88)
- सन् 1986-87 से स्वतंत्र कहानी-लेखन जारी।
- सन् 1990 जुलाई से फरवरी 1991 तक दिल्ली से निकलने वाले पत्र 'दैनिक जागरण' का संपादन।
- सन् 1991 से पुनः कहानी लेखन, फिल्म संवाद लेखन, टी.वी सीरियल लेखन में व्यस्त।
- सन् 1995 में कमलेश्वर को पद्म भूषण से सम्मनित किया गया। कुँवरपाल सिंह के विचारानुसार "कमलेश्वर ने सन् 1996 में अलीगढ में होने वाले जनवादी लेखक संघ के राज्य सम्मेलन में जनवादी लेखक संघ की सदस्यता ग्रहण की।"[25]

सार रूप में शिवकुमार मिश्र ने कहा भी है कि -"कमलेश्वर का अधिकांश समय बड़े नगरों-महानगरों में, जीवन और जीविका की आपाधापी के बीच गुजरा, ख्यात कथा-पत्रिकाओं के सम्पादक, फिल्मों के संवाद तथा पटकथा लेखन, आकाशवाणी के कमेंट्रेटर एवं दूरदर्शन के डायरेक्टर जनरल तक के पदों दीगर तमाम जिम्मेदारियों को संभालते और उनका निर्वाह करते हुए, वे अपने बेहद व्यस्त सफर को अंजाम देते रहे, परन्तु अपनी बुनियादी कस्बाई छवि को वे आखिर तक सँभाले रहे। उनके कस्बाई मानस में रचे-बसे प्रकृत बिंब और अनुभव बरकरार रहे और कमलेश्वर ने उन्हें जीवन की आखिरी साँस तक जिया। उनका मिलनसार स्वभाव, व्यवहार की पारदर्शिता, बातचीत का सहज अंदाज, संबंधों को पूरी निश्च्छलता के साथ निबाहने की निष्ठा और बिना किसी भेदभाव के छोटे- बड़े सभी तबकों के लोगों से उनका साहचर्य - ये सारी बातें उनके कस्बाई मूल की ही देन है जो उनके जीवन पर्यन्त सक्रिय रही है।"[26]

कथाकार हरियशराय ने उन्हें अग्रज रूप में मानते हुए कहा है कि "कमलेश्वर एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने कहानी की नयी भावभूमि तलाश

की, जिसने कहानी को एक नया शिल्प दिया, नया तेवर दिया, नयी भाषा दी। जिसने कहानी का मूल्यांकन किया, जिसने सामानांतर आन्दोलन चलाकर कहानी की परिभाषा को बदला और जिसने न जाने कितने ही कहानीकारों को एक पहचान दी। उनका एक ऐसा भी व्यक्तित्व रहा है, जो हमेशा सामाजिक और राजनैतिक जीवन में सक्रिय रहा। लेखकों का कोई भी आन्दोलन हो, कोई भी धरना हो, कोई भी जुलूस हो कमलेश्वर हर सही जगह और हर सही मोड़ पर लेखकों का हाथ पकड़कर उन्हें हौसला देते नजर आए। उनके हमदर्द उनके दोस्त बनकर सामने आए।'(27)

कमलेश्वर के व्यक्तित्व का एक और स्वरूप सामने आता है, जिसने 'शहर में घूमता आईना' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से टेलीविजन के कार्यक्रमों कों एक नया आयाम दिया और आमजन के दुःख-दर्दो को पूरी मानवीयता और शिद्दत के साथ वाणी दी। कमलेश्वर एक ऐसी शख्सियत के रूप में भी हम लोगों के साथ रहे, जिन्होंने हिन्दी सिनेमा को एक नया आधार दिया है। आगामी अनुच्छेद कमलेश्वर का रचना संसार के अन्तर्गत पटकथा लेखन, संवाद लेखन के बारे में सम्यक चर्चा की जाएगी।

1.2 कमलेश्वर का व्यक्तित्व

रचनाकार का व्यक्तित्व उसके कृति में झलकता है इसलिए उसका व्यक्तित्व उसके साहित्य सृजन से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण उसके आसपास के परिवेश और संस्कारों से होता है।

हिन्दी साहित्य के कथाकार कमलेश्वर एक नाम न रहकर विशेषणों, उपनामों, व टाईटिलों से विभूषित एक व्यक्ति रहे हैं। विभिन्न नाम, उपनाम, व संज्ञाएँ उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने में सहायक हैं। आलोक त्यागी का कथन है कि "मैं जानता हूँ वे देवता नहीं थे, उन्हें देवता होने-कहने का न तो शौक था, न आग्रह, पर वे एक बेइंतहा प्यारे इंसान थे ऐसे इंसान जो सबको बहुत प्यार करते थे, सबकी बहुत फिक्र करते थे। अपनी लेखक और पत्रकार बिरादरी के संकटग्रस्त दोस्तों की मदद की, पर जो दूसरे तबकों के तकलीफशुदा लोगों के लिए उन्होंने सहज प्रेमवश या उदारतावश किया, उसे उनके परिजनों के अलावा शायद ही कोई जान पाये। ऐसे मसलों में उन पर यह कहावत चरितार्थ होती है कि उनका बायाँ हाथ तक नहीं जानता था कि दायाँ हाथ क्या कर रहा है।"(28)

हिन्दी के ही नहीं बल्कि विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि रचनाकारों ने कमलेश्वर की विद्वता, सहृदयता, सहयोग की भावना की प्रशंसा की है। जिससे उनके व्यक्तित्व की अनकही परते उधड़ती है। इस सन्दर्भ में विद्वानों के विचार इस प्रकार है -"कमलेश्वर 'एक प्रतिबद्ध वामपंथी' (ललितमोहन), दलित भावनाओं के एहसासों का लेखक (दया पवार), 'न खोया हुआ आदमी' (पु. नेरूरकर), 'प्रगतिशील पर्व का निर्माता', 'समय साक्षेप दीप स्तंभ', 'समय का साक्ष्य' (सुदीप), 'एक शक्ति पुंज' (दामोदर सदन), 'हिन्दी साहित्य का मसीहा', 'अच्छा दार्शनिक', 'कस्बे का आदमी', 'फिल्मी आदमी', 'किस्सागो' (दामोदर सदन) और इन सबसे बढकर है 'मामूली आदमी' व 'गैरमामूली

फनकार' (आलमशाह)[29] दुष्यंत कुमार, कमलेश्वर के व्यक्तित्व को कुछ इस प्रकार अंकित करते हैं -" असाधारण होते हुए भी वह बिल्कुल साधारण है- औसत में कुछ छोटा कद और साँवला रंग। नाक-नक्श तीखे और आँखों में ऐसा आकर्षण कि जिधर देखिए, बँधते जाईए।[30] एक प्रकार से यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता का बयान है।

कमलेश्वर ने अपने जादूभरे व्यक्तित्व द्वारा न जाने कितने लोगों को प्रभावित किया। कई उनके कहकहों से बँधे है तो कई कहानियों से मुग्ध। कइयों को 'परिक्रमा' का हीरों नहीं भूलता तो कई उनकी तेज-तर्रार संपादकी के कायल है। वह आन्दोलनधर्मी, संघर्षशील और हाजिर जवाब देने वाले व्यक्ति थे। उनकी अपनी एक अनोखी अदा थी जो औरों से बिल्कुल जुदा थी। कमलेश्वर की हाजिरजवाबी के एक वाकिये का जिक्र यहाँ किया जा रहा है - "दिल्ली में एक गोष्ठी थी। एक श्रोता ने खड़े होकर कहा -" कमलेश्वर जी, आपने ये जो **'पति-पत्नी और वो' 'राम बलराम', 'लैला', 'बर्निंग ट्रेन'** जैसी फिल्में लिखी, मजा नहीं आया। क्यों लिखी ऐसी व्यावसायिक फिल्मे ?
आपने 'आंधी' और 'मौसम' वगैरह फिल्में देखी ? कमलेश्वर ने प्रत्युत्तर में पूछा ।
'हाँ, देखी है। वे ठीक है, पर ये व्यावसायिक फिल्में....'
कमलेश्वर ने हँसते हुए पूछा-"आप क्या करते हैं ?"
ठसक के साथ उत्तर मिला 'हम हिन्दी के प्रोफेसर है। बीस वर्षों से।'
'क्या पढाते है आप ?' कमलेश्वर का अगला प्रश्न।
'सूरदास' प्रोफेसर साहब का उत्तर था।
सुनकर कमलेश्वर ने अपना चिर-परिचित ठहाका लगाया, फिर बोले - "प्रोफेसर साहब, आप लगातार बीस वर्षों से सूरदास पढा रहे हैं। पहले एक साल में आपने जो परिश्रम किया, उसी को महीना, दर-महीना दुहरा रहे हैं। हर माह इसी का वेतन लेते हैं। मेरे कहानी उपन्यासों पर मेरी अच्छी फिल्मों, मेरे लिखे 'बंद फाइल' और 'जलता सवाल' जैसे वृत्तचित्रों पर आप बात नहीं करना चाहते तो मत कीजिए, लेकिन भूलिए नहीं कि मैं व्यावसायिक फिल्में लिखता हूँ तो हर बार नई कथा-वस्तु के साथ। वहाँ रिपीटीशन नहीं चलता। रोजी-रोटी के लिए मैं हर दिन कुआँ खोदता हूँ और ताजा पानी निकालता हूँ। आप बीस साल से कौन-सा कुआँ खोद रहे हैं ? वही सूरदास को। प्रोफेसर साहब चुप।"[31]

कमलेश्वर के व्यक्तित्व के अनेक पहलू थे। वह कहानीकार थे, उपन्यासकार थे, तथा आलोचक थे। प्रस्तुत पंक्तियाँ कमलेश्वर के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश ड़ालती है -" हिन्दी साहित्य में इस दशक का सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद हस्ताक्षर है ... कमलेश्वर .. एक तूफानी पितरेल। कमलेश्वर नाम है उस व्यक्तित्व का जिसने कभी और कोई समझौता अपनी आस्था के मूल्य पर नहीं किया। एक लेखक और संपादक के रूप में उसने सत्ता और व्यवस्था के विरूद्ध आदमी की लड़ाई प्रखर पक्षधरता के

साथ लड़ी है। यही जुझारूपन उनकी मानसिकता रहीं है, आस्था रही है और नियति भी।"[32]

उनकी असाधारण सफलता का रहस्य है खुद अपने से टक्कर लेने की अशेष सामर्थ्य और मनोबल। विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं -"पत्रकारिता में हिन्दी को प्रतिष्ठा दिलाना कमलेश्वर की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उदय प्रकाश सोचते हैं उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम मराठी के दलित साहित्य से हिन्दी को परिचित कराना था। अनेक लोगों का कहना है कि कमलेश्वर शायद अकेले ऐसे हिन्दी लेखक है जो साहित्य और फिल्म दोनों में समान रूप से स्वीकार्य, समादृत और प्रतिष्ठित रहे। लाखों हिन्दी वाले उन्हें 'सारिका' के सम्पादक के रूप में जानते और याद करते हैं। इसमें क्या शक है कि कमलेश्वर की 'सारिका' ने लाखों लोगों को हिन्दी का चस्का लगाया और कहानी का पाठक बनाया। और यह तो सब जानते हैं कि अपने से छोटों से जिस पैमाने पर कमलेश्वर ने दोस्ती कायम की और हर कुछ के बावजूद उसे अंत तक निभाया, वैसा किसी साधारण आदमी के बस का योगदान तो हर्गिज नहीं।"[33]

व्यंग्य विनोदप्रियता : कमलेश्वर जी के व्यक्तित्व की अन्यतम विशेषता रही है उनकी व्यंग्य और विनोदप्रियता। दुष्यंत कुमार के अनुसार -"वह बेहद खुशदिल खुशमिजाज, और मिलनसार आदमी रहा है। लतीफों और चुटकुलों की फुलझड़ियों से वह महफिले गुलजार रखता है और बात को मोड़कर बात पैदा करने में उनका जवाब नहीं।" उनके मित्र राजेन्द्र यादव भी उनकी इस बात को इस तरह करते हैं -"दर्जनों चंडूखाने के किस्से उससे आप सुन लीजिए। उनका उद्देश्य केवल दूसरों की टाँग खींचकर मजा लेना है।"[34]

इसी विनोदप्रिय स्वभाव के कारण, किस्से गढकर सुनाने में माहिर होने के कारण, दोस्त लोग उन्हें झूटा भी साबित करते हैं। **'माधुरी'** (पत्रिका) के पूर्वसंपादक अरविंद कुमार का कहना है -"जब भी हँसता है जोर से दिल खोलकर दूसरों के आनंद में सहभागी बनने के लिए हँसता है।"[35] उन्होंने उनकी तुलना ख्वाजा नसरूद्दीन से भी की है।

कभी-कभी तो दोस्तों के साथ मजाक, शैतानी की हद तक पहुँच जाता है। **'संडे मेल'** में मुद्रित 'आधारशिलाएँ' में एक रोचक किस्से का वर्णन है - दुष्यंत कुमार ने अपनी शादी का सूट लॉंड्री में धुलवाने डाला था। कमलेश्वर को मजाक सूझा। लॉंड्रीवाले से कमलेश्वर ने कुछ कहा और उसने कमलेश्वर के अनुरोध का पालन किया। परन्तु जब दुष्यंत कुमार अपना सूट लेने गये तो सूट को बैंडमास्टर की पोशाक का रूप लिए देख माथा ठोककर रह गए। ऐसे बीसियों किस्से आपको कमलेश्वर के मजाकिया स्वभाव के मिलेंगे।

दोस्तों की खिल्ली उड़ाने में उस्ताद कमलेश्वर के व्यक्तित्व का दूसरा पहलू व्यंग्य भी है। वे साहित्य में व्यंग्य के प्रयोग में अत्यंत उदार है। विशेषतः परवर्ती कहानी साहित्य में उसकी छटा देखते ही बनती है। अपनी दुधारी तलवार के साथ व्यवस्था को निशाना बनाया है। उनकी व्यंग्यात्मकता

उनके व्यक्तित्व का अहम् हिस्सा है। वे व्यंग्य के मौकों से भी नहीं चूकते उसमें विनोद का पुट भी बना रहता है।

दुष्यंत कुमार उनके मूलभाव को व्यंग्य विनोद नहीं करूणा कहते हैं। निम्न मध्यवर्ग व आम आदमी के प्रति अवश्य उनके हृदय ने करूणा है परन्तु प्रस्तुत रूप में व्यंग्य का आश्रय ले लिया जाता है।

विद्रोही प्रवृत्ति एवं निर्भीकता : बचपन से ही कमलेश्वर के स्वभाव में विद्रोह के बीज मौजूद थे। दुनिया के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को देखकर वे दुःखी हो जाते थे। परंतु कमलेश्वर की बाल्यावस्था में माँ द्वारा उनके विद्रोही स्वभाव का शमन किया गया। मास्टरों की सख्ती और पिटाई ने उनमें विद्रोह की प्रवृति पनपा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका पढाई से ध्यान हटता गया। बड़े होने पर विद्रोह के बिरवे ने 'जनक्रांति' से जुड़कर आकार लिया। क्रांतिकारी विचार और विद्रोही लेखन ही उनका लक्ष्य था। अपने छात्रकाल में प्रदर्शनबाजी, झंडाबाजी, नारेबाजी में भी भाग लिया करते थे। वे अपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के माहौल को दहकानेवाले दिन कहते हैं।

कमलेश्वर के विद्रोही व्यक्तित्व के सदा दो ध्येय रहे हैं। पहला अधिकार की लड़ाई, दूसरा सत्ता के प्रति असंतोष व प्रतिवाद की अभिव्यक्ति। विद्रोह व निडरता का आपस में निकट का संबंध है। उनकी निर्भीकता व निड़रता का एहसास उनके दो इस्तिफों से हो जाता है। 1961 में जब वे दूरदर्शन (दिल्ली) में कार्यरत थे, उसी समय उन्होंने **'जार्ज पंचम की नाक'** कहानी लिखी थी। उनकी कहानी सत्ता को पसंद नहीं आई परन्तु कमलेश्वर ने समझौता न करके इस्तीफा दे दिया। दूसरा इस्तीफा था **'टाइम्स'** की पत्रिका **'सारिका'** से। शासन व व्यवस्था के खिलाफ धड़कते ज्वालामुखी के समान लावा उगलते उनके लिखे गए संपादकीय त्यागपत्र का कारण बने। लेखक ने भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में 'विचारों की स्वतंत्रता' एवं अभिव्यक्ति के मूलभूत अधिकारों को खोना नहीं चाहा। यह उनके स्वभाव की निर्भीकता ही थी। दब्बू बनकर वे जी नहीं सकते थे।

इसी निर्भीक स्वभाव ने उनकी कलम से सदा सच कहलवाया है। वह सत्य चाहे 'करेला' हो या 'नीमचढा'। इस विद्रोह और निर्भीकता ने उनके जीवन को अदम्य आत्मविश्वास दिया। यह दीगर है कि इसी स्वभावगत विशेषता के कारण उन्होंने भारी कीमत चुकाई।

आलराउँडर : आलराउँडर होना कमलेश्वर के व्यक्तित्व की खासियत रही है। **'आलराउँडर'** कमलेश्वर के रूप को तमिल के लेखक शौरिराजन ने इस प्रकार रेखांकित किया है -"वह तेजतर्रार हरफन मौला है -सही लेखक आला दर्जे का है, सही व गहरा नजरिया रखता है, इंसान का पुरअसर पैरवीकार है, हर बात को सामान्य जन के हित में पाना चाहता है, भाषा पर बढिया दखल है, हर चीज को खूबसूरती से कहने की उसकी अनूठी अदा है।"(36)

कमलेश्वर जन्म से सामंती, आस्था से वामपंथी, पेशे से लेखक और कर्म से आलराउँडर रहे हैं। यह व्यक्ति जीवन में हर वक्त एक नया और

अलग-अलग पार्ट अदा करता रहा है। उनके एक व्यक्तित्व में अनेक व्यक्ति समाहित रहे हैं। कमलेश्वर कहानी लेखक रहे हैं, संपादक रहे हैं, आलोचक रहे हैं, आन्दोलन चलाते रहे हैं, रेडियो से जुड़े रहे हैं, टी.वी पर कार्यक्रम देते रहे हैं, टेलीफिल्में बनाते रहे हैं, फिल्मों में लिखते रहे, उद्घोषक, निर्माता संचालक रहे, गोष्ठी का संचालन करते रहे। वह युवापीढी के मार्गदर्शक रहे। वह मामूली आदमियों के सफलतापूर्वक इंटरव्यू लेते रहे। वह सरकारी-गैर सरकारी संस्थाओं के सदस्य रहे। वह देश-विदेश में भ्रमण करते रहे। वह एक अच्छे लेखक होने के अलावा अच्छे वक्ता भी रहे। सेंसर बोर्ड की सदस्यता का भी उन्हें अनुभव है। वह अनेक काम एक साथ करते थे। वह अनेक क्षेत्रों में माहिर थे। अरविंद कुमार के अनुसार - "कमलेश्वर एक नहीं कई काम एक साथ करते थे। कहानियाँ, उपन्यास लिखते थे, एडीटरी करते थे, आन्दोलन चलाते थे, टी.वी पर कार्यक्रम देते थे, फिल्मे लिखते थे, सब बड़ी खूबी से करते थे। दिन में 24 घंटे भी इन कामों के लिए कम है।"(37)

कर्मनिष्ठा : कमलेश्वर के कर्मठ स्वभाव की कई व्यक्ति दाद दे चुके हैं। दुष्यंत कुमार से उनके मित्र राजेन्द्र यादव कहते हैं -"यार इस आदमी में कितना स्टैमिना है। दिनभर घूम सकता है, बैल की तरह काम कर सकता है, रातभर जागकर लोगों के साथ ठहाके लगा सकता है, फिर भी चेहरे पर थकान या शिकन नहीं। अपने को हर जगह देने की ख्वाहिश ही इस कर्मठता के मूल में है।" दोस्तों को अंदेशा है कि कमलेश्वर को काम से सिर उठाने की फुर्सत नहीं। यहाँ तक कि खाना खाने का समय नहीं होता था। इस मेहनत पसंद व्यक्ति को उनके मित्रों ने कई स्थानों पर वर्णित किया है। एक अनाम फिल्मी हस्ती के अनुसार "आज कमलेश्वर हमारी इंडस्ट्री का सबसे चर्चित लेखक है पर मैंने उसे पार्टियों में नहीं देखा .. कहीं बैठकर गप्पे लड़ाते नहीं देखा। जब भी देखा सिर्फ काम करते देखा।"(38)

'संडे मेल' की पत्रिका में 'आधारशिलाएँ' संस्मरण के अंतर्गत उन्होंने अपनी व्यस्तता को भी चित्रित किया है। दोस्त लोगों के अनुसार तो कमलेश्वर को खाने की फुर्सत ही नहीं मिल पाती थी, पर वे स्वयं कबूल करते थे कि सिर्फ कुछ घंटे सोने की फुर्सत निकालने के लिए भी घर छोड़कर किसी होटल में किराये पर कमरा सिर्फ कुछ घंटे सोने के लिए लेना पड़ता था।

सच्चा हमदम और दोस्त : कुछ लोगों के पास दोस्ती के नाम पर बैलेंस ही नहीं होता। कमलेश्वर के दोस्ती के खाते में मोटा बैलेंस रहा। बचपन में चाहे कटरा मुहल्ले का घर सूना हो पर बिब्बन, रमेश और श्यामस्वरूप जैसे मित्र पेड़ो पर चढने, इमली तोड़ने , बरों के छत्तों में हाथ- डालने के लिए सदा साथ रहते।

किशोरावस्था में इलाहाबाद के दुर्दिनों के साथी मार्कण्डेय और दुष्यंत कुमार जैसे दोस्त रहे। दुष्यंत कुमार ने चाहे कमलेश्वर को एक नंबर का झूठा कहा हो परन्तु ये खिल्ली भी दोस्ती के दम पर उड़ाई हुई है। उन्हें पत्रिका निकालने के लिए रूपयों की जरूरत पड़ी। बाँदा में कवि सम्मेलन का

आयोजन था। दुष्यंत कुमार ने अपना गीत कमलेश्वर को पढने के लिए दे दिया। मित्र को पचास रूपये मिल जाये इसलिए कहानीकार कमलेश्वर कवि-सम्मेलन में सस्वर गीत पढ गये। परन्तु ये मदद एक तरफा नहीं रही। दुष्यंत कुमार को भी एक बार पाँच सौ रूपयों की जरूरत थी। उन्होंने प्रकाशक से अर्थशास्त्र की पुस्तक अनुवाद के लिए ले ली। साथ ही रूपये भी एडवांस ले लिए, पुस्तक के अनुवाद का कार्य कमलेश्वर को सौंपकर निश्चिंत होकर गायब हो गए।

उनके दुर्दिनों के अन्य साथी नरेश बेदी, जयंत गडकरी, प्रघुप सिंह व श्रीपतराय भी रहे हैं। कमलेश्वर को अजीज दोस्त भी मिला। 1956 में जालंधर स्टेशन पर, जिसका नाम था मोहन राकेश। कमलेश्वर की मोहन राकेश से दोस्ती ही नहीं एक अटूट रिश्ता भी था। वे साहित्य और जीवन के सुख-दुःख के साक्षी थे। राजेन्द्र यादव भी उनके साथ थे। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर की दोस्ती का 'त्रिकोण' प्रख्यात हो गया। वे तीनों साहित्य की चिन्ता से एक सूत्रता में बंधे थे।

1.3 कमलेश्वर का प्रेरणा स्त्रोत

कहानीकार कमलेश्वर के साहित्य-लेखन की प्रेरणा के लिए बना बनाया माहौल नहीं था, स्वयं उन्होंने कई स्थानों पर कहा कि "मुझे व्यक्तियों ने कभी कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित नहीं किया, बल्कि स्थितियों ने कहानियाँ दी हैं। मेरे लिए **'दुखी आदमी'** कहानियों का पात्र नहीं रहा बल्कि **'आदमी का दुःख'** मेरे लेखन का कारण रहा है।" कमलेश्वर की रचना प्रक्रिया या ये लेखक कैसे बने, इस संबंध में डॉ. उषा चौहान का मत है " कमलेश्वर के लिए रचनाएँ मूलतः असहमति का माध्यम है। बचपन में उन्होंने अपने कस्बे और शहर के आस-पास के लोगों की जिन्दगी को देखा-समझा। वे अपने पूरे परिवेश और पूरी परिस्थितियों के प्रति एक कसमसाहट और आकुलता अनुभव करते थे, कमलेश्वर के मन में सवाल उठते थे, शंकाएँ उठती थीं। अपने इस ठहरे हुए परिवेश के प्रति उनके मन में एक तीव्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कलम का सहारा लिया यानि वे लेखक बने।"(39)

कमलेश्वर की समस्त रचनाएँ जीवन के अनुभवों से निसृत हैं। उन्होंने आदमी के दर्द को पढकर नहीं, अनुभव के दाह से निकालकर रचना में उतारा है, कमलेश्वर के मन में जगी प्रतिक्रिया के स्तर और क्षेत्र के संबंध में उनका वक्तव्य है -" जब से अपने चारों तरफ की दुनिया की ओर देखना शुरू किया तो पाया, कहीं कुछ भी बदल नहीं रहा था। इसलिए मुझे बदलना पड़ा मुझे चारों ओर के कटु यथार्थ ने बदल दिया।"(40)

कमलेश्वर ने अपने आस-पास के माहौल यानि कस्बे मैनपुरी से प्रेरणा ग्रहण की, वहाँ के मोहक वातावरण से उनकी अनुभूतियाँ रंग गई। कमलेश्वर ने लेखन के लिए कभी कोई चार्ट नहीं बनाया। कहानी लेखन के सम्बन्ध में उनके विचार इस प्रकार है, -"मैं सोचकर कभी नहीं लिखता, जब कभी भी

मुझे शिद्दत के साथ महसूस हुआ कि इस विषय पर लिखना चाहिए, तो उसे मैंने लिखा और जो लिखा, वह स्वयं कहानी बनती चली गई।"(41)

कमलेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों को प्रभावित करनेवाले कुछ व्यक्ति रहे हैं तो कुछ घटनाएँ भी रही हैं। कहानीकार कमलेश्वर ने परिवेश को भी कथ्य में उतारा है। अतः उन सभी पर प्रकाश ड़ालना समीचीन होगा।

परिवार : कमलेश्वर ने कहा है कि उन्हें व्यक्ति प्रभावित नहीं करते परंतु उनकी माता ने अवश्य उन्हें प्रभावित किया। माँ उन्हें बचपन में कहानियाँ सुनाया करती थी और कहती थी, इन्हीं कहानियों को लम्बी एवं विशद करके लिखना। माता के कुछ विचार तो यथावत उन्होंने जिन्दगी में उतारे हैं। आदर्श, यथार्थ एवं तर्कशक्ति उन्होंने जीवन में माँ से प्राप्त की हैं। माता के संस्कार व विचार कमलेश्वर को घुट्टी में मिले थे। वे अपनी माँ की तार्किक शक्ति के कायल रहे थे। इस संबंध में उनका कहना है कि -"माँ की तार्किक वृति ने मुझे यह दृष्टि दी कि कोई भी सत्य अंतिम नहीं है और यह भी कि दूसरे के दिए सत्य को लेकर अगर जीना है, तो उसे अंगीकार कर लो पर वह तुम्हारा सत्य नहीं होगा। वह हस्तान्तरित सत्य होगा।"(42)

कमलेश्वर ने अपने कहानी-लेखन, पत्रिका सम्पादन एवं विभिन्न कहानी आन्दोलनों के समय आरोपित सत्यों का जमकर विरोध किया। इस प्रकार की तार्किक वृत्ति निश्चय माता द्वारा दी गयी थी। उनके लेखन पर इस चिन्तन का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है। माता द्वार दिए संस्कारों से उनके विचारों में दृढता ही आती गई। कमलेश्वर की माता ने बड़े त्याग व तपस्या से कमलेश्वर को पाला-पोसा था। बड़े घराने की प्रतिष्ठा व नाम को कायम रखते हुए भी, अभावों में भी वे कर्तव्यपालन करती रही थी। कमलेश्वर ने अपनी माँ के संबंध में कहा है - भाई का आना सब से ज्यादा सुख का और उनका लौटकर जाना सब से ज्यादा दुःख का क्षण होता था। मैं बहुत अकेला रह जाता था पर माँ थी कि सब कुछ चुपचाप झेलती जाती थी। कहीं खामोशी न हो, इसका उन्हें हमेशा ख्याल रहता था और वह अपना पेट काट-काटकर भी किसी पोते या नाती के लिए सौगात भेजती रहती थी। संक्रान्ति और दूसरे धार्मिक पर्वों पर पंडितजी के लिए भर-भर परात अन्न भेजती थी और शादी-ब्याहों में, 'अपने पुराने घर' की शान के अनुरूप 'व्यवहार' के जोड़े या रूपये भिजवाती थी। सावन में पीहर लौटी हुई मोहल्ले की ब्याहता लड़कियों के लिए लंबे बरामदे में झूला ड़ालती थी और उन्हें अपनी बच्चियों की तरह खिलाती-पिलाती और विदा करती थी। कमलेश्वर की रचनाओं में कहीं कहीं इसी मानवीय सहृदयता के आसार नजर आते हैं।

कहना न होगा कि कमलेश्वर के लेखन पर मैनपुरी कस्बे का भी काफी हद तक प्रभाव परिलक्षित होता है। मैनपुरी के जीवन का उनके लेखन में क्या और कितना महत्व है इसके बारे में स्वयं उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है -"हाँ ! मैनपुरी का जीवन था, निस्पंद और ठहरा हुआ जिसने मुझे प्रेरित किया। मैं छुट्टियों में इलाहाबाद से जब घर आता तो प्रायः यूँ ही घूमा करता। उस शहर की जीवन शैली में, भावनाओं में या सोचने विचारने के

ढर्रे में कोई परिवर्तन या विकास नहीं होता। लोग अपनी पीड़ाओं से सर्वथा अनभिज्ञ जान पड़ते। यहाँ तक कि एक बाग, जहाँ मैं अक्सर जाया करता, जहाँ पौधों का बढना भी रूक गया था। उन्हें पानी देने वाला या उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं था। वहीं जड़ता से भरा और रूका हुआ जीवन और उसका वातावरण था जिसने मुझे लिखने की तरफ उन्मुख किया।"[43] दुष्यंत कुमार ने **'कमलेश्वर : मेरी निगाहों में'** नामक आलेख में व्यंग्यपरक रूप से कहा भी है कि कमलेश्वर जब कभी मैनपुरी जाता था तो वापिसी में तीन-चार बोरे कहानी के प्लाट को ले आता था। यह एक प्रकार से कमलेश्वर के तीव्र गति से कहानी लेखन का साक्ष्य भी है।

कहना न होगा कि किशोरावस्था में जब कमलेश्वर 'जनक्रांति' से जुड़े तो उस भावुकता की उम्र में समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी के सान्निध्य ने उनमें क्रांति के विद्रोह का बीज बोया। कमलेश्वर एक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि -" मैं घर लौट रहा था। ब्राँच लाइन की गाड़ी कूल्हे हिलाती हुई भाग रही थी। खिड़की से मैं सूने प्लेटफार्म को देखता हूँ, तो एक डिब्बे के बाहर 'हँसिया हथौड़ा का लाल झंड़ा लगा नजर आता है, प्लेटफार्म पर उतर कर मैं उत्सुकता से उस डिब्बे के यात्रियों को देखता हूँ। मैं लड़ने के लिए उस डिब्बे में घुस जाता हूँ। मेरे हिन्दू संस्कार उसको बरदाश्त नहीं कर पाते। भीतर पहुँचकर पता चलता है कि वह 'झंड़ा' क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी का है - भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजाद की पार्टी का। उस डिब्बे में योगेश चटर्जी और यू.पी. पार्टी के सेक्रेटरी केशव मिश्र सफर कर रहे थे। योगेश चटर्जी मेरे घर का पता लेते हैं और तीसरे दिन घर पर दस्तक होती है ... और इलाहाबाद आकर मैं क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी का थोड़ा -बहुत काम करने लगता हूँ।"[44]

'जनक्रांति' के संपादक केशव प्रसाद मिश्र को वे आचार्य, गुरू यहाँ तक कि उन्हें अपना चाणक्य कहते थे। वे क्रांतिकारी शहीदों की जीवनियाँ लिखते थे। यशपाल की **'पिंजडें की उड़ान'** से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली। वे उस पुस्तक को 'अल्फ्रैड पार्क' (इलाहाबाद) जाकर पढते थे, जहाँ चन्द्रशेखर आजाद शहीद हुए थे। कमलेश्वर लिखते हैं -" वही पार्टी के दफ्तर में बैठकर तमाम किताबें पढता हूँ, और अपनी असली लड़ाई को पहचानता हूँ।"[45] कमलेश्वर ने अपने आपको प्रेमचन्द की दृष्टि का अनुयायी कहा है। 17-18 वर्ष की आयु के पश्चात ही इलाहाबाद पुस्तकालय में लगी साहित्यकारों की तस्वीरों में प्रेमचन्द की तस्वीर ऐसी जेहन में उतारी कि बस वह तस्वीर वहीं बस गयी। कमलेश्वर ने युवावस्था में स्वयं को यशपाल, अमृतलाल नागर, प्रेमचन्द के घराने से जुड़ा पाया। यथार्थ की परम्परा से जुड़े कमलेश्वर इन साहित्यकारों की आहट अपने आस-पास सुनते हैं। जिसको इस उदाहरण में सुना जा सकता है -" सही साहित्य की दृष्टि यदि मुझे प्रेमचन्द से मिलती है तो सही जिन्दगी की दृष्टि मुझे चाट-मिठाई लगाने वाले ठेले से मिलती है... मेरा प्रेमचन्द वह ठेलेवाला है। यही मैंने प्रेमचन्द से सीखा है और यही प्रेमचन्द की देन है।"[46]

इस प्रकार बाल्यावस्था से किशोरावस्था एवं युवावस्था तक इन व्यक्तियों से वे प्रभावित रहे हैं। इनसे वे कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित रहे हैं। इस संदर्भ में कमलेश्वर का कहा हुआ प्रस्तुत वाक्य महत्वपूर्ण कहा जा सकता है -"मुझे पात्रों ने कभी कहानियाँ नहीं दी है, मुझे हमेशा उनकी स्थितियों ने ही कहानियाँ दी है।"(47)

सुधी विद्वान जानते हैं कि "मैनपुरी से कमलेश्वर का न टूटने वाला रिश्ता था। इस प्रसंग में इतिहासकार ई.एच. कार की उक्ति याद आ जाती है जो कमलेश्वर जी पर एकदम सही साबित होती है कि अतीत के अभिलेख हम भविष्य में आने वाली पीढियों के लिए सुरक्षित रखते हैं। यह वही अभिलेख था जिसमें से झांकती माँ से कमलेश्वर को अक्सर बातें करते देखा जा सकता है और सहेज कर रखी मनीआर्डर की रसीद पर माँ के दस्तखत देखा जा सकता है। अक्सर कई बार उन्हें यह कहते सुना कि माँ ! यदि तुम्हारी दी हुई आत्मशक्ति मेरे पास न होती तो जो मैं कर पा रहा हूँ कभी नहीं कर पाता। उनके पास माँ की एक हस्ताक्षरित रसीद है। उसे वे बड़े जतन से अपने हाथवाले ड्रावर में रखते हैं। नहीं मालूम वे कब-कब उसे निकाल के देखते। ये पुरानी रसीद सिर्फ माँ की यादों का जरिया नहीं है। वरन् कमलेश्वर की प्रेरणा स्त्रोत और उनका 'शक्ति' पुँज है।"(48)

वास्तव में किसी भी व्यक्ति का बचपन ही उसकी स्मृतियों में आजीवन स्पन्दित और रूपायित होता है। और यह कथन कमलेश्वर के रचनात्मक कार्यो की मूलभूमि माना जा सकता है।

परिवेश : साहित्यकार अपने समय के परिवेश से प्रभावित होता है। वह अपने युग, जीवन समाज की समस्याओं का निरीक्षण करता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यक्ति ने समाज के समस्त पक्षों को नये चिंतन तथा नये दृष्टिकोण से परखा है। बदलती परिस्थितियों ने जीवन-मूल्यों तथा नैतिक प्रतिमानों को प्रभावित किया है। देश की आजादी, विभाजन, राजनीतिक स्वार्थ, मूल्यों का पतन आदि से साहित्यकार प्रभावित रहे हैं और उसकी चर्चा कथा साहित्य में हुई है।

कमलेश्वर का प्रारम्भिक लेखन कस्बे तथा परवर्ती लेखन महानगर की संस्कृति व यथार्थ को चित्रित करता है। कमलेश्वर का सम्पूर्ण जीवन मैनपुरी, इलाहाबाद, दिल्ली एवं बम्बई इन चार स्थानों से जुड़ा रहा है। 1951 से आखिर तक की प्रायः हर रचना अपने परिवेश का भी सजीव चित्रण करती है।

'गर्दिश के दिन', 'अपनी निगाह में', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की (भूमिका) -'आधारशिलाएँ' तथा कई इंटरव्यू एवं मुलाकातों में एक बात की पुष्टि होती है कि वे अपनी जन्म-स्थली मैनपुरी व उसकी यादों, पात्रों व स्थितियों को कभी नहीं भुला पाये। उनका प्रारम्भिक लेखन कस्बे से जुड़ा है। इस सन्दर्भ में उनका कथन है -"मैं उस छोटे से कस्बे मैनपुरी का आभारी हूँ, जहाँ जन्मा और पलकर बड़ा हुआ और जहाँ की धूल धक्कड़ और

जिन्दगी के कोलाहल से भरा-पूरा, उदास किन्तु मोहक वातावरण मेरी अनुभूतियों को नये-नये रंगों में रंगता रहता है।"(49)

मैनपुरी का परिवेश कस्बा, लोग, पेड़, सड़क इस प्रकार चित्रित है - "मेरा परिवार उसी समय एकाएक बहुत बड़ा हो गया था .... पूरा मैनपुरी कस्बा, उसके लोग, उसके पेड़, सड़के, गलियाँ, कुत्ते, नाले, घास, कुएँ, चौराहे, सबकी दर्दभरी दास्तानें, मेरी हो गई थी। चबूतरे पर चाय की फटीचर दुकान लगाए चायबाबू, मैनपुरी की तम्बाकू खाते जौहरी, वैद्यजी,एटा बस अड्डे पर काम करते क्लीनर और ड्राइवर सबकी कहानियाँ मेरी हो गई थी।"(50)

मैनपुरी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि जब वे आगे इलाहाबाद पढने गए तो भी मैनपुरी छूटती न थी। इलाहाबाद में 'जनक्रांति' से वे जुड़े व लेखन कार्य प्रारम्भ किया। शिक्षा ग्रहण करते हुए हिन्दी साहित्य से उनका नजदीक का संबंध बना। कमलेश्वर का साहित्यकार रूप इलाहाबाद में स्फुटित हुआ। मैनपुरी की मिट्टी तो इलाहाबाद की धधकती भट्टी ने कमलेश्वर को साहित्य की राह दी। इलाहाबाद के लिए वे कहते थे "यह शहर मुझमें साँस लेता रहता है, जब भी जिन्दगी झटका देती है। मन भागकर इलाहाबाद की गलियों में चला जाता है और अपनी शक्ति लेकर लौट आता है।"(51)

1959 में दूरदर्शन की नौकरी के सिलसिले में तबादले के कारण कमलेश्वर को दिल्ली आना पड़ा था। 1959 से 1966 तक के वर्ष उन्होंने दिल्ली में बिताए। यह उनके जीवन का महत्वपूर्ण समय रहा। यहाँ उन्होंने महानगर की नई रवानी देखी। इस शहर और संस्कृति ने उनके मानस पर विभिन्न प्रकार का दबाव ड़ाला। इलाहाबाद छोड़ दिल्ली पहुँचना ही दरअसल कमलेश्वर के लेखन का वह सबसे महत्वपूर्ण मोड़ है, जहाँ से एक नई वैचारिक लम्बी यात्रा उन्होंने शुरू की और जो अन्त तक जारी रही। दिल्ली पहुँचने पर एक भिन्न परिदृश्य उनके सामने उपस्थित था जो पिछले अनुभवों से नापा नहीं जा सक रहा था। मानो वह दुनिया इस नई दुनिया के सामने बहुत भद्दी और बौनी लग रही थी। स्वयं कमलेश्वर ने **'खोई हुई दिशाएँ'** की भूमिका में 'नयी कहानी' की बात में इस स्थिति का ब्यौरा दिया है। -"यहाँ आकर जब चारों तरफ देखना शुरू किया तो लगा कि एकाएक सब कुछ बदल गया है। जहाँ एक नयी ही जिन्दगी थी, एक ऐसी जिन्दगी जिसके किनारे खड़े होकर देखने से बहाव का पता ही नहीं चलता था।"(52)

दिल्ली से जुड़कर लेखक ने अपने समय संगत यथार्थ को न केवल स्वीकार किया बल्कि उसे रचनात्मकता भी प्रदान की। **'खोई हुई दिशाएँ'** कहानी का चंदर स्वयं कमलेश्वर के भीतर बैठे महानगर के प्रति अजनबीपन व एकाकीपन को व्यक्त करता है। **'खोई हुई दिशाएँ', 'मांस का दरिया', 'जिन्दा मुर्दे'** इस दौर की लिखी हुई रचनाएँ हैं। जिन उपन्यासों की सर्जना हुई वे हैं **-'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी', 'लौटे हुए मुसाफिर'**। इस दौर के कथा साहित्य में मध्यवर्ग एवं मानव मूल्यों का चित्रण प्रामाणिक अनुभूति के साथ हुआ है। इसी दौरान कमलेश्वर द्वारा लिखी गई **'जार्ज पंचम की नाक'** कहानी ने कमलेश्वर को रातों रात सुर्खियों में ला खड़ा किया। सत्ता में

नौकरी करते हुए सत्ता विरोधी कहानी लिखने के कारण उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ा। राजनीति और सत्ता के प्रति उनके मन में आक्रोश, उनके 'समान्तर कहानी' आन्दोलन व कहानी लेखन की पीठिका बना।

1966 में **'सारिका'** की सम्पादकी उन्हें बम्बई शहर ले आई। बम्बई का माहौल कमलेश्वर की अन्य छुपी प्रतिभा को भी प्रकाश में लाया। बम्बई में उन्होंने फिल्म क्षेत्र में संवाद लेखन व स्क्रिप्ट लेखन के अलावा सैंसरबोर्ड का अनुभव भी प्राप्त किया जो किसी अन्य महानगर में संभव न था।

उनके सम्पूर्ण जीवन में जिन व्यक्तियों तथा स्थानों व माहौल ने उन्हें प्रभावित किया उसी से हिन्दी साहित्य को एक समर्थ रचनाकार के रूप में कमलेश्वर मिले। कुल मिलाकर कह सकते है कि उनकी प्रेरणा ठोस यथार्थ व प्रामाणिक अनुभव ही रही हैं।

"कवि-कथाकार-फिल्म निर्देशक गुलजार कमलेश्वर के अभिन्न मित्रों में से एक थे। कई फिल्मों की रूपरेखा उन्होंने साथ बैठकर बनायी थी, जिनमें **'आंधी'** और **'मौसम'** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कमलेश्वर के अभिन्न मित्र गुलजार ने फिल्म **'आनन्द'** के अंतिम दृश्य में फिल्म का समापन जिन वाक्यों की संरचना को मैं श्रीपतराय से कमलेश्वर जी के लिए उधार लेता हूँ और उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन करते हुए कहना चाहता हूँ कमलेश्वर मरे नहीं, कमलेश्वर मरते नहीं।"(53)

स्वानुभूति : कमलेश्वर की रचनाधर्मिता उनके जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं परिवेश से जुड़ी हुई है। उनका जीवन कठिन व संघर्षपूर्ण दिनों को चित्रित करता है। बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था का काल तनावमुक्त कभी नहीं रहा। उनके लेखन की प्रेरणा परिवार, परिस्थितियाँ व परिवेश से निःसृत है। अतः कमलेश्वर के लेखन की अन्यतम उपलब्धि रही है अनुभूति की अभिव्यंजना। उनका रचना संसार अनुभूति की प्रामाणिकता से व्यंजित हुआ है।

कमलेश्वर का लेखन धर्म 'यथार्थ चित्रण' ही रहा है। कमलेश्वर ने लेखन के लिए विषय-वस्तु सीधे जन-जीवन के अनुभवों से ली है। वे बिना प्रत्यक्ष अनुभव अथवा अनुभूति के कभी कुछ भी नहीं लिखते थे। उनके लिए सामान्य आदमी की नियत से जुड़ा हुआ लेखन, एक तरह से अनुभव के क्षेत्र की प्रमाणिक पहचान, अनुभव के समय संगत संदर्भ और अनुभवों के अर्थो तक जाने की कोशिश यही उनकी रचनाओं का क्रम रहा है।

कमलेश्वर ने कस्बे और शहर के आस-पास के लोगों की जिन्दगी को देखा, परखा, महसूस किया। उन्होंने आम आदमी का दुःख, दर्द, अभाव, संघर्ष तथा मजबूरी को महसूस किया। समय के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति को ढालने और मन की तीव्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कलम का सहारा लिया। कमलेश्वर का वक्तव्य है -"जब से अपने चारों तरफ की दुनिया की ओर देखना शुरू किया तो पाया, कही कुछ भी बदल नहीं रहा था, इसलिए मुझे बदलना पड़ा । मुझे चारों ओर के कटु यथार्थ ने बदल दिया।"(54)

कमलेश्वर सामाजिक दायित्व एवं युग बोध की भावना से गहरे जुड़े रहे। उनकी समस्त कहानियों एवं उपन्यासों की रचना संसार मध्यवर्गीय समाज है। वर्तमान मध्यवर्ग एक ओर आधुनिक मूल्यों की बातें करता है तो दूसरी ओर परम्परा और रूढियों से जकड़ा हुआ है। विसंगति से परिपूर्ण जीवन को जीते हुए भी वह महत्वाकांक्षी है। अपने युग को निःसन्देह कमलेश्वर ने समकालीन लेखकों से ज्यादा अनुभव किया। अर्थात् कमलेश्वर एक प्रतिबद्ध कलाकार रहे हैं। प्रतिबद्ध लेखक जीवन को जिस रूप में चित्रित करता है। कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में जहाँ तक सम्भव हो सका है जीवन के कटु सत्यों को लेकर जीने वाले यथार्थ चरित्रों का उद्‌घाटन किया है।

1.4 कमलेश्वर का रचना संसार

रचनाकार कमलेश्वर के व्यक्तित्व के अनेक पहलू रहे हैं। वे कहानीकार थे, उपन्यासकार थे, नाटककार और नाटकों के अनुवादक थे। बाल-साहित्य के लेखक थे, टी.वी के लिए लिखते और कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे, फिल्मों के पटकथाकार और संवाद लेखक थे, साहित्यिक पत्रिकाओं से लेकर दैनिक पत्रों तक के संपादक रहे। उन्होंने नौटंकियाँ की और छोड़ी। वह सरकार में भी रहे और बड़े-छोटे प्रकाशन गृहों की व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं से भी जुड़े और स्वयं भी पत्रिकाएँ निकाली। कमलेश्वर की सक्रियता के इतने रूप थे जितने कि हिन्दी तो क्या किसी भारतीय भाषा के रचनाकार के भी नहीं रहे हैं। वह अपने आप में अकेले और अद्वितीय थे।

कमलेश्वर कहते थे -"साहित्य तो समय की संवेदना और सम-वेदना से ही सृजित होता है। बुद्धि उसका मुख्य स्त्रोत नहीं होता। बुद्धि तो कंप्यूटर की तरह ठोस तथ्यों का संकेत देती है। अनुभव के अग्निकुंड में वे तथ्य उबलते, पिघलते और शोधित होते हैं, तब औसत समय-सत्य का कोई सूत्र नाजुक और नई विचार संवेदना के रूप में स्पष्ट होता है.. वह विचार संवेदना निजी भी होती है और समयगत होने के साथ-साथ अधिकांश अंशों में बाहर के भावना जगत के साथ एकात्मता स्थापित करके समवेत होने की कालसिद्ध अस्मिता भी पा लेती है। वह निरपेक्ष नहीं, सदा सापेक्ष होती है.. नये जन्मे शिशु की तरह ... आकार-प्रकार, रूप और सौंदर्य में भिन्न ... और अपनी सत्ता में सम्पन्न और स्वतंत्र।"(55)

कमलेश्वर ने पद्य को छोड़कर गद्य की लगभग सभी विद्याओं का उपयोग किया है। कहानी एवं उपन्यास के अतिरिक्त उन्होंने नाट्य रूपान्तर, संस्मरण, समीक्षा, लेख, स्क्रिप्ट लेखन, संवाद लेखन आदि की रचना भी की है। पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन एवं वैचारिक लेख आदि उनके विशेष क्षेत्र रहे हैं। उन्होंने कुछ हिन्दी इतर कहानियाँ के संकलन भी तैयार किए। उनके लेखन की विविधता ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा को प्रस्तुत करती है। यहाँ पर उनके साहित्य का परिचय दिया जा रहा है।

कहानी साहित्य : कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर है। उनकी कहानी यात्रा 'नई कहानी' से आरम्भ होकर समान्तर से

गुजरते हुए समकालीन जनवादी कहानी तक पहुँच जाती है। 'कहानी' के सम्बन्ध में कमलेश्वर का वक्तव्य है -"कहानी ही एक ऐसी विधा है, जो बड़ी सहजता और आडंबरहीनता से अपने समय की भावनात्मक और विचारात्मक विविधता को प्रस्तुत करती चली गयी।"(56)

कमलेश्वर ने कहानी को अपने समय के साथ जोड़कर उसे नई व्याख्या दी है। कहानी को विकास की दिशा देते हुए इसे आम आदमी के साथ जोड़ा है। आम आदमी का दुःख, दर्द, अभाव, संघर्ष तथा मजबूरी को पकड़ने का प्रयत्न इनकी कहानियों में दिखाई देता है। कमलेश्वर की कहानियों के सन्दर्भ में रेखा शर्मा का कथन है -"नयी कहानियों से लेकर समान्तर कहानियों तक कमलेश्वर का विकास एक संवेदनशील लेखक का अनिवार्य और समय-संगत विकास है। समय के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति को ढालने की उनकी सहज कोशिश रही है।"(57) कमलेश्वर की कहानियों में से उभरते हुए व्यक्ति की जिन्दगी अनेक समस्याओं के भीतर से गुजरते हुए तथा प्रभावित होते हुए अपना रूप एवं आकार ग्रहण करती है। कमलेश्वर की कहानियाँ सप्रयास रची गयी कहानियाँ नहीं है। उनका विचार है कि "कहानी लिखना व्यवसाय नहीं, विश्वास है, यातना नहीं-यातनापूर्ण है। वे कारण जो उन्हें (मुझे) कहानी लिखने के लिए मजबूर करते है।"

कमलेश्वर का लेखन सन् 1951 से प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में उन्होंने छिटपुट लेखन कार्य किया। उनकी सर्वप्रथम कहानी है **'कामरेड'** परन्तु 'सीखचें' कहानी पहले छपी। उनके प्रकाशित कहानी संग्रह निम्न है : -

राजा निरबंसिया	(सन् 1957)	कस्बे का आदमी	(सन् 1958)
खोई हुई दिशाएँ	(सन् 1963)	माँस का दरिया	(सन् 1963-64)
जिन्दा-मुर्दा	(सन् 1969)	मेरी प्रिय कहानियाँ	(सन् 1972)
इतने अच्छे दिन	(सन् 1989)	'कथा प्रस्थान' 'रावल की रेल'	(1992)
कोहरा	(सन् 1994)	परिक्रमा	(सन् 1996)
महफिल	(सन् 2000)		

कमलेश्वर की समस्त कहानियाँ **'समग्र कहानियाँ'** (सन् 2001) शीर्षक से प्रकाशित हुई है। कमलेश्वर की कहानियाँ यथार्थ जीवन से जुड़ी हुई हैं। विशेषकर मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय लोगों के जीवन से, कमलेश्वर का जीवन संघर्षो से गुजरता रहा। इसलिए उनके जीवन के अनेक दौर रहे हैं। उसी प्रकार उनकी कहानियों के भी अनेक दौर है। यह मैनपुरी गाँव-कस्बे से होकर नगर, महानगर में पहुँच जाता है।

कमलेश्वर के कहानी साहित्य के तीन दौर है। उनकी कहानियों का पहला दौर सन् 1952 ई. से सन् 1958 ई. तक का है। इस दौर में लिखी गई कहानियाँ है -**'सींखचे', 'मुर्दो की दुनिया', 'आत्मा की आवाज', 'अकाल', 'राजा निरबंसिया', 'देवा की माँ', 'भटके हुए लोग', 'कस्बे का आदमी', 'गर्मियों के दिन', 'एक अश्लील कहानी', 'पीला गुलाब'** आदि। इस दौर में कमलेश्वर पुरानी कहानी और नई कहानी में संगति बिठलाने का प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन जिन्दगी के निकट आ जाने पर उन्हें महसूस हुआ कि पुरानी कहानी जिन्दगी के सन्दर्भ में बेईमानी और आदर्शवादी है। उनकी

कहानियाँ कोरी-कल्पना पर आधारित नहीं है, बल्कि वे आधुनिक युग के व्यवहारिक एवं वास्तविक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही है। इस संबंध में कमलेश्वर का कथन है -"आज की कहानियाँ कल्पना के पंखो पर नहीं उड़ती बल्कि दुनिया की व्यावहारिक और वास्तविक जिन्दगी से उनका सीधा सम्बन्ध है।"(58)

प्रथम दौर की समस्त कहानियों का प्रमुख स्वर परंपरागत आदर्शो एवं पिछड़े मूल्यों के प्रति घोर असहमती है। इन कहानियों में स्वस्थ और प्रगतिशील दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। कमलेश्वर के लिए "कहानी निरन्तर परिवर्तित होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया है।"(59)

पहले दौर में लिखी कमलेश्वर की कहानियों का कथ्य कस्बे के जीवन और पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है। कहानियों में मैनपुरी के जीवन की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। उन्होंने मनुष्य के छल को, निरन्तर परिवर्तित होने वाली निर्णय प्रक्रिया को टूटते जीवन मूल्यों को परिवेश की भयावहता को अभिव्यक्ति दी है। गाँव-कस्बा और वहाँ के जीवन का यथार्थ चित्रण ही इन कहानियों की विशेषता है। इस दौर की अन्तिम कहानी है 'नीली झील' जो कस्बाई जीवन की विशिष्टता को रेखांकित करती है।

कमलेश्वर अपने कस्बे 'मैनपुरी' को छोड़कर सन् 1959 ई. में दिल्ली आ गए। यहीं से दूसरे दौर की कहानियाँ शुरू होती है। दूसरे दौर का समय सन् 1966 ई. तक रहा। कमलेश्वर के मत में दूसरा दौर "व्यक्ति के दारूण और विसंगत सन्दर्भो को समय के परिप्रेक्ष्य में" जान लेने का है।

दूसरे दौर की कहानियाँ है -**'जार्ज पंचम की नाक', 'दिल्ली में एक मौत', 'खोई हुई दिशाएँ', 'तलाश', 'दुःख भी दुनिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'एक थी विमला', 'अपने देश के लोग', 'माँस का दरिया', 'युद्ध', 'पराया शहर'** इत्यादि। इन कहानियों में कमलेश्वर के लेखन का केन्द्र कस्बे से हटकर महानगर का जीवन हो गया। दिल्ली नगर से जुड़ने के पश्चात् के लेखक के मानस पर पड़े प्रभाव इन कहानियों में परिलक्षित होते है। अपनत्व की कमी के कारण युवक की स्थिति कितनी भयावह होती है, इसका चित्रण **'खोई हुई दिशाएँ'** कहानी में हुआ। **'दिल्ली में एक मौत'** कहानी में सेठ के अंतिम संस्कार के समय भी शहर में रहने वाला आदमी कितना निर्लिप्त, कृत्रिम, यांत्रिक तथा प्रदर्शनकारी बन जाता है, इसका मार्मिकता से चित्रण किया गया है। **'तलाश'** कहानी में आधुनिक परिवेश में जीवनव्यतीत करने वाली प्रौढा शारीरिक सुख के लिए मातृत्व को क्षणभर भूल जाती है और कितनी निराश तथा अकेली रह जाती है। इसका चित्रण किया गया है। वेश्या जीवन की असलियत का तथा एक संवेदनशील वेश्या की भयावह स्थिति को 'माँस का दरिया' कहानी में स्पष्ट किया है।

इस दौर की कहानियों का केन्द्र 'शहर' रहा है। कस्बाई जीवन की विशिष्टता और परिवर्तन को जिस सशक्तता एवं सहजता से उन्होंने अंकित किया है। उसी ढंग से ही 'शहरी जीवन' को भी व्यक्त किया है। दूसरे दौर की कहानियों के पात्र जिन्दगी से जुड़े हुए हैं। उनके पास समस्याएँ ही समस्याएँ है। लेकिन उनके पास इन समस्याओं का उत्तर नहीं है। वे

समस्याओं से जूझ रहे हैं। दूसरे दौर की कहानियों की विशेषता है कथापात्रों का केन्द्रीकरण, संक्षिप्रता, कथापात्रों की संवेदना तथा जीवन की प्रतिबद्धता आदि।

कमलेश्वर की कहानियों का तीसरा दौर सन् 1967 ई. से सन् 1972 ई. के बीच का रहा है। दिसम्बर सन् 1966 में कमलेश्वर बम्बई आये। महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति को जान लेने का समय उन्हें इस दौर में मिल गया। इस तीसरे दौर के कथा लेखन के बारे में कमलेश्वर का मत है -"यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य के साथ और समान्तर चलने का दौर है।"

तीसरे दौर की कहानियों में -**'या कुछ और', 'नागमणि', 'लड़ाई', 'बयान', 'जोखिम', 'रातें', 'लाश', 'मैं', 'अपना एकान्त', 'उस रात वह मुझे ब्रीचकैण्डी में मिली थी', 'आसक्ति', 'मानसरोवर के हंस', 'इतने अच्छे दिन', एवं 'हवा है हवा की आवाज नहीं'** इत्यादि आती हैं।

इस दौर की कहानियों में कथ्य की अपेक्षा परिवेश और व्यक्ति के आंतरिक (मानसिक) संघर्ष को ही प्रमुखता दी गई है। अतः इस दौर की कहानियों में व्यक्ति की असहायता एवं मानसिकता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। ये कहानियाँ पूर्णतः जीवन से जुड़ी हुई है। स्वाधीनता के पूर्व हमारे राष्ट्र पुरूषों द्वारा अनेक स्वप्न जो बतलाये गये थे, वे सन् 1966 तक आते-आते पूर्णतः भंग हो गये। इन्हीं स्वप्नों को देख देश के हजारों युवक जेल की यातनाओं को सह चुके थे, लाठियाँ तथा गोलियाँ खा चुके थे, देश सुजलाम-सुफलाम बनेगा, श्रेष्ठ मूल्यों की प्रतिष्ठा होगी सोचा गया था। देश को आजादी मिली, लेकिन प्रजातंत्रीय व्यवस्था स्वीकार कर लेने पर भी.... धीरे-धीरे यह देश अन्दर-ही-अन्दर टूटने लगा, शहरीकरण एवं औद्योगिक के कारण और भी यह प्रवृति उभरने लगी। सन् 1962 का चीनी आक्रमण, उसके बाद भारत-पाकिस्तान युद्ध ने कई जटिल प्रश्नों को जन्म दिया है। स्वभाषा और स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह करने वाला देश, विदेशी भाषा एवं राष्ट्र की मानसिकता में परिवर्तन होने लगा।

कथाकार कमलेश्वर की कहानियाँ विकास और रूपान्तरण दोनों को साथ-साथ समेटते चलने की कोशिशें हैं, उनकी कहानियों का जायजा लिया जाए तो यह बात साफ हो जाती है कि उनका कथ्य और उनकी अभिव्यक्ति कभी एक सी नहीं रहीं, उनमें लगातार परिवर्तन होता चला है,यह निरन्तर गतिशीलता एक ओर जहाँ लेखक की रचनात्मक जीवन्तता का सबूत है, वहीं आधुनिकता के संतरण की शर्त भी है, कमलेश्वर मामूली आदमी की स्थिति और संवेदना को, उसकी चारित्रिक गहनता, अनुभूति, क्षमता और सहज ज्ञान को सफल ढंग से पाठकों के समक्ष रखने में सक्षम हैं।

कमलेश्वर ने लेखक को आम आदमी के 'सह और समान्तर' जीने वाला माना है। इसलिए उनकी कहानियाँ उन्हें दूसरों से जोड़ती है। 'नई कहानी की भूमिका' में जीवन की सह-स्थिति का उन्होंने विस्तार से विश्लेषण किया है। इसी तथ्य को विकसित करने के लिए उन्होंने 'समान्तर' का सौन्दर्यशास्त्र भी प्रस्तुत किया है। कमलेश्वर के अनुसार "कहानियाँ मेरे लिए

समय की धुरी पर घूमती सामान्य सच्चाइयों के प्रति और पक्ष में लिए गए निर्णयों की कहानियाँ हैं।"[60] कहना न होगा कि कमलेश्वर की कहानियाँ विशेषकर मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय लोगों के यथार्थ जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं।

'राजा निरबंसिया' जैसी महत्वपूर्ण कहानी से लेकर अब तक लिखी गई उनकी तीन सौ कहानियों में कहीं कोई रचनात्मक दोहराव नजर नहीं आता। दुष्यंत कुमार कमलेश्वर की कहानियों के संबंध में कहते है कि "उसकी हर कहानी जीवन के संदर्भो से जुड़ी हुई है। उसकी शायद ही कोई ऐसी कहानी हो जिसके सूत्र जिन्दगी में न हों, क्योंकि वह बहुत खूबी से अंतर्विरोधों को पकड़ता है। उसकी लगभग हर कहानी का एक वास्तविक स्थल है, जहाँ से वह उसे उठाता है और अपने कथ्य की कल्पना अपेक्षाओं के साथ अभिव्यक्त कर देता है।"[61]

<u>उपन्यास साहित्य</u> : स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त कथाकारों में कमलेश्वर का नाम अग्रिम पंक्ति में आता है। हिन्दी साहित्य को विकास और नयी दिशा देने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उनके उपन्यासों की कथा-भूमि कस्बों से लेकर महानगर के विभिन्न क्षेत्रों तक फैली हुई है। "युग और समाज को एक सम्पूर्ण परिवेश में प्रकट करने की लेखकीय उत्कंठा के परिणामस्वरूप लिखे गए उनके उपन्यासों में लघु किन्तु पूर्ण चित्रफलक प्रस्तुत किया गया है। युग बोध और युग सत्य को कमलेश्वर ने सदैव प्राथमिकता दी है।"[62]

कमलेश्वर अपने उपन्यासों में युग सत्य को उद्घाटित करने में अत्यन्त सफल रहे हैं। सहधर्मी कथाकार राजेन्द्र यादव के शब्दों में "कमलेश्वर अपना सच नहीं बोल सकता, मगर अपने युग की और अपनी पीढ़ी का सच वह जरूर बोल सकता है, क्योंकि उसके पास जबान है और उसे बात करनी भी आती है।"[63] आधुनिक संचेतना के वाहक उनके उपन्यासों में जीवन की असंगतियों में तालमेल बैठाने की जद्धोजहद में व्यस्त मध्यवर्ग अपनी सारी शक्ति, कुण्ठा और विषमता के जहर को लिए हुए अपने सही रूप में उपस्थित है।

कथाकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में मुक्त जीवन तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। "कमलेश्वर के प्रायः सभी उपन्यासों की वस्तु निम्न मध्यवर्गीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध है। **'एक सडक सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'काली आँधी' और 'आगामी अतीत'** उपन्यासों में कस्बों और बड़े शहरों की जिन्दगी का यथार्थ चित्रण किया है। लेखक ने **'लौटे हुए मुसाफिर', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी',** तथा **'आगामी अतीत'** में बड़े शहरों की विषम परिस्थितियों से संत्रस्त व्यक्ति को कस्बे की ओर लौटते हुए दिखाने का प्रयास किया है। वस्तुतः इन तीनों उपन्यासों में व्यक्ति अधिक संकट के कारण कस्बे के सहज जीवन को अधिक उपयुक्त समझते हैं और बड़े शहरों के अस्त-व्यस्त जीवन को अपनी स्थितियों के अनुकूल नहीं पाते।"[64]

कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान अपना अलग महत्व रखता है। इनके पात्र अचेतन जगत में जीते जरूर हैं किन्तु सामाजिकता को नकारते नहीं हैं। डॉ. घनश्याम मधुप के शब्दों में -"वह निर्मल वर्मा तथा आधुनिक कथाकारों की भांति अपने परिवेश से कटकर कृत्रिम अभिजात्य में नहीं जीते। कारीडार, किचन, नाइट क्लब और बार की जिन्दगी से दूर उनके लघु उपन्यासों में आम हिन्दुस्तानी की जिन्दगी ही दिख पड़ती है। यही कारण है कि कमलेश्वर की कथा-कृतियों में रोजी-रोटी, पति-पत्नी का कलह और प्रेम, शंकाएँ, आस्था और निराशा आदि सब कुछ अपने यथार्थ रूप में ही आते हैं।"(65)

कहना न होगा कि कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में ग्राम्य, कस्बाई और महानगरीय जीवन के त्रिस्तरीय आयामों को विशेषतः उद्‌घाटित किया है। अतः प्रस्तुत अध्याय में कमलेश्वर के सभी उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

एक सड़क सत्तावन गलियाँ

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर का आरंभिक उपन्यास है, जिस पर 'बदनाम बस्ती' शीर्षक से श्री कपूर ने सातवें दशक में फिल्म भी बनायी थी। यह उपन्यास सन् 1961 ई. में प्रकाशित हुआ किन्तु सबसे पहले इसे अमृतराय ने 'हंस' पत्रिका में सन् 1957 ई. में छापा था। कमलेश्वर की यह रचना उनकी ख्याति का आधार बनी। यह एक ऐसी रचना भी है ,जो स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में विकसित होती है और आजादी के बाद के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिदृश्य को हमारे सामने लाती है।

इस उपन्यास की कथा एक साथ कई पटरियों पर दौड़ती है। ये पटरियाँ जीवन और समाज की हैं। इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र कमलेश्वर का अपना जन्म स्थान, उनका अपना कस्बा मैनपुरी है। इसलिए लेखक को अपनी इस कृति से उतना ही प्यार है, जितना अपनी माँ या जन्मभूमि मैनपुरी से। अपने कस्बे का परिवेश, उस परिवेश में रहते लोग, उन लोगों के सुख-दुःख उनके जीवन रीति, उनकी भावात्मक दुनिया, आर्थिक संघर्ष, यन्त्रीकरण से कस्बे में आए परिवर्तनों को लेखक ने अत्यंत सूक्ष्मता एवं सहजता से प्रस्तुत उपन्यास में उभारा है। इस प्रकार गाँव कस्बे की पृष्ठभूमि पर सामान्य व्यक्ति के जीवन संघर्ष को उद्‌घाटित करने का प्रयास इस उपन्यास में हुआ है। डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना का कथन है -"इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आकार प्रकार में 'लघु' होने के बावजूद विस्तार में यह काफी 'बडा' है और गहराई इसकी इतनी ज्यादा है कि उसकी थाह पाना मुश्किल है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पात्रों की संख्या अधिक है और सभी पात्रों के बारे में कुछ-न-कुछ प्रामाणिक जानकारी दी गयी है ...सब कुछ इतने संतुलित ढंग से कहा और पेश किया गया है कि लेखक की प्रतिभा पर आश्चर्य होता है और पाठक चमत्कृत होकर रह जाता है... 'गागर में सागर' भरने का मुहावरा इस उपन्यास पर बिलकुल 'फिट' बैठता है।"(66)

प्रस्तुत उपन्यास की कथा केवल मैनपुरी की कथा नहीं, बल्कि भारतीय कस्बों की कहानी है। महत्वपूर्ण यह है कि आजादी के पूर्व और आजादी के पश्चात फैले इसके इतिहास में वे पक्ष भी हैं, जिन्हें हम राष्ट्रीय कह सकते है और वादों तथा विचारधाराओं की परिधि में ला सकते हैं। इसमें राजनीतिक दलों की भूमिका और उनकी कारगुजारियों के संकेत है, तो उनके चरित्र का उद्‌घाटन भी। इसमें कस्बाई अर्थशास्त्र के भीतर विकसित एक ऐसा लोक भी है, जिससे समाज की नैतिकता तार-तार होती दिखाई देती है, परन्तु यहाँ मानवीयता के तंतु कहीं अधिक सशक्त रूप से हमारे सामने आते हैं और हमारी चेतना को झकझोरते भी हैं, पर सचमुच यह भी हमारी ही जिन्दगी का यथार्थ है। यहाँ एक अपराधी और लूट की संस्कृति को भी फलते-फूलते दिखाया गया है। यहाँ अपराधकर्मो की अनेक दुनियाएँ हैं। यहाँ जमाखोरी और कालाबाजारी की अपसंस्कृति है। यहाँ न्याय और कानून व्यवस्था की भीतरी पर्तों में भी प्रवेश किया गया है। सचमुच इस उपन्यास में एक बदनाम बस्ती की ही व्यथा-कथा कही गयी है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' चरित्रप्रधान उपन्यास है और चरित्रों के इर्द-गिर्द घटनाओं को बुना गया है। अलग-अलग घटनाओं के केन्द्र में समान पात्र हैं। उपन्यास की घटनाएँ कस्बाई जीवन की हलचल के बीच, सामान्य जन की जीवन पद्धतियों के बीच, गल्लामण्डी की जिन्दगी के बीच केन्द्रित है। ये घटनाएँ जुआ के अड्डे, शराब की तस्करी, डकैती, स्त्रियों की खरीद-फरोख्त', वैश्यावृत्ति, बस अड्डे की हलचल, रामलीला मेला, धार्मिक, राजनैतिक और साम्प्रदायिक तथा वर्ण और जाति के भीतर घूमती रही हैं। जहाँ तक चरित्रों की बात है, उपन्यास के सभी चरित्र परिवार विहीन है। सरनाम सिंह, रंगीले, शिवराज, डॉ.लालचन्द, गेंदा कवि, बाजा मास्टर, मंगल, हबीब साहब, बंसरी और हेम आदि निम्न और मध्य वर्ग के जीवन से आये पात्र हैं और सबकी अपनी विशेषता है। उनके व्यक्तित्व में विचित्रताएँ अधिक हैं। उनकी यह विचित्रता भी कस्बाई मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है।

कहा जा सकता है कि 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में कमलेश्वर ने जैसे अपने कस्बे के जीवन को फिर से जिया हो, पर पूरे राष्ट्रीय और मानवीय परिदृश्य के साथ। निश्चय ही, यह एक महान उपन्यास नहीं है, पर कमलेश्वर के कथाकार के निर्माण में इसका महत्व असंदिग्ध है।

डाक बंगला

'डाक बंगला' कमलेश्वर का प्रसिद्ध और बहुचर्चित दूसरा उपन्यास है। जिसका प्रकाशन सन् 1962 ई. को हुआ। इस उपन्यास के आधार पर फिल्म भी बनी है जिसका शीर्षक भी 'डाक बंगला' है।

प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक नारी जीवन की अनेक विसंगतियों को रेखांकित करता हे। वासना की उद्दाम लहरों के समुद्र को अपने हृदय में संजोये हुए अनेक नारियाँ निरन्तर मानसिक व्यभिचार करते हुए भी तथाकथित शारीरिक पवित्रता को बरकरार रख पाती हैं, क्योंकि समाज और

परिस्थितियों द्वारा प्रदत्त रक्षा का वचन उन्हें हर समय बचाये रखता है। जबकि दूसरी ओर ऐसी नारियाँ भी होती हैं जो मन से किसी एक की होने के बावजूद परिस्थितियाँ उन्हें अनेक की अंकशायिनी होने के लिए विवश करती हैं।

'डाक बंगला' उपन्यास की मुख्य नायिका 'इरा' आधुनिक काल की एक ऐसी नायिका है जिसके जीवन में चार पुरूष आते हैं - विमल, बतरा, बूढ़ा डॉक्टर और मेजर सोलंकी। परन्तु इरा की आत्मा हमेशा उसके प्रथम प्रेमी विमल को ही तरसती रही। इरा की जिन्दगी बगैर मंजिलों के चलनेवाले चिर-पथिक की जिन्दगी है। वह कहती है -"मेरा पड़ाव कभी नहीं है। रास्ते में कोई गन्दी चाय की दुकान आ गई तो लोग वहाँ भी रूककर एक प्याला पी लेते हैं।"[67] उसी प्रकार उसकी जिन्दगी में जो भी आया वह उसे सहज रूप में स्वीकारती गई। उसकी जिन्दगी औरों के लिए एक पड़ाव (एक डाक बंगला) मात्र बनकर रह गई।

इरा की कहानी के साथ इस लघु उपन्यास में ऐसा बहुत कुछ है जो हमें बांध लेता है। मध्यवर्गीय समाज की विडम्बना और विसंगतियों का तथा हमारे उच्च समाज के खोखलेपन का अच्छा खाका लेखक ने खींचा है। दुःखों ने इरा को दार्शनिक बना दिया है। अतः उसका प्रत्येक वाक्य कोई सूक्ति जान पड़ता है। तथाकथित उच्च एवं भद्र समाज में होने वाले सुशिक्षित नारी के नैतिक शोषण के कोणों को इसमें लेखक ने एक ही वाक्य के द्वारा व्यंजित कर दिया है। -चलो भाई सूटकेस, चले..."[68] संक्षेप में लेखक ने लघु उपन्यास के अनुकूल सांकेतिकता, संक्षिप्तता, एक सूत्रता एवं प्रतीकात्मकता जैसे गुणों का निर्वाह प्रस्तुत उपन्यास में किया है। डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना का इस उपन्यास के बारे में विचार है -"'डाक बंगला' उपन्यास अपने आप में एक उपलब्धि है क्योंकि इसमें एक साधारण नारी 'इरा' के माध्यम से एक साधारण नारी की विपत्ति और उसके अभ्यान्तरिक एवं बाह्य संघर्ष को रूपायित किया जा सका है।"[69]

लौटे हुए मुसाफिर

'लौटे हुए मुसाफिर' कमलेश्वर का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उन्होंने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास की भांति निम्न वर्ग और छोटे शहर (या कस्बे) की जिन्दगी की ओर एक बार फिर दृष्टिपात किया है और उसके चित्रण में अपेक्षित सफलता भी प्राप्त की है। इसका प्रकाशन सन् 1963 ई. में हुआ। कमलेश्वर ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम, स्वतंत्रता के साथ घटित विभाजन एवं उसकी विभीषिका को उपन्यास का आधार बनाया।

1947 ई. के दौरान हुए विभाजन के समय कुछ लोग अपने कस्बे से उखड़ गए। परन्तु न वे पाकिस्तान जा सके और न ही लौटकर उसी कस्बे में बस सके। उपन्यास में हिन्दु-मुस्लिम फूट को चित्रित किया है। सांप्रदायिकता एवं विभाजन के दुष्परिणामों की यथार्थ अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। लेखक का यह उपन्यास आजादी के संघर्ष के दौरान पाकिस्तान

की माँग के इतिहास और इस माँग से जुड़े संदर्भों को रेखांकित करता है। ये ऐतिहासिक संदर्भ उपन्यास में अप्रत्यक्ष रूप में रहते हैं, लेकिन इन संदर्भों के कारण बन रहे सामाजिक रिश्ते और आम आदमी की पाकिस्तान और जिन्ना के बारे में राय, मुसलमानों की असुरक्षा, पाकिस्तान बनने पर मुसलमानों का भविष्य, हिन्दू संगठन और मुस्लिम लीग की राजनीति के बारे में बताता है।

सांप्रदायिकता से बढ़कर कमलेश्वर ने इस उपन्यास में मानवीय मूल्यों एवं मानवता को महत्व दिया है। मूल्यों के लुप्त होते इस युग में इस उपन्यास के प्रमुख पात्र नसीबन के द्वारा ममता, स्नेह, सहानुभूति, दया, करूणा, आदि मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास किया गया है। डॉ. सुरेश का विचार है कि -" 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में आस्था, आत्मविश्वास, कर्तव्यपरायणता, देशानुराग, एवं दायित्व-निर्वाह का जो उन्होंने महान संदेश दिया है, वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसलिए इस पीढ़ी के प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हो जाता है।"[70]

तीसरा आदमी

कमलेश्वर का बहुचर्चित उपन्यास 'तीसरा आदमी' का प्रकाशन सन् 1964 ई. में हुआ। इस उपन्यास में नारी-पुरूष के बदलते सम्बन्धों का सूक्ष्मता से अंकन हुआ है। मध्यवर्ग के आदर्श, मूल्य एवं नैतिकता भी उभरे हैं।

लेखक ने इस उपन्यास में विवाहित जीवन में किसी 'तीसरे' की उपस्थिति से उत्पन्न मानसिक स्थितियों एवं तर्जनित समस्याओं को उद्घाटित किया है। "इस उपन्यास की विशेषता यह है कि पति-पत्नी के बीच किसी 'तीसरे आदमी' के आने की प्रचलित कहानी को लेखक ने एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक आयाम दिया है जिससे यह कहानी मात्र कहानी नहीं रह जाती, वह मध्यवर्गीय दाम्पत्य की ऊँच-नीच का एक प्रामाणिक दस्तावेज बन जाती है।"[71]

रमेश, चित्रा और सुमन्त के बीच घूमती हुई यह कहानी अन्य प्रणय त्रिकोणात्मक कहानियों से भिन्न है। सुमन्त नरेश का दूरदराज का भाई है, अतः चित्रा और सुमन्त में एक स्वाभाविक मैत्री है। नरेश जब तक इलाहाबाद आकाशवाणी में रहा तब तक तो वहाँ के परिवेश के कारण उसका अहं संतुष्ट होता रहा, परन्तु दिल्ली में आ जाने के बाद महानगरीय परिवेश के कारण उसका वह अहं टूटने लगता है। दूसरी ओर आर्थिक कठिनाईयों के कारण वह सुमन्त के साथ एक कमरे में रहने के लिए बाध्य हो जाता है। चाहकर भी वह दिल्ली में अलग नहीं रह सकता। अपने अधिक खुले स्वभाव के कारण सुमन्त चित्रा के अधिक निकट होता जाता है। अतः सुमन्त-चित्रा की यह बढ़ती निकटता नरेश को कांटे के समान चुभता है।

संशय का यह भुजंग न केवल नरेश-चित्रा के दाम्पत्य को डसता है बल्कि वह सुमन्त के जीवन को भी डस लेता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का उद्देश्य इसी मध्यवर्गीय मनोदशा और संसार को गहराई से एक हल्की

विषाक्तता के साथ उभारने का रहा है। डॉ. अमर प्रसाद जयसवाल के शब्दों में -"आकार में लघु होते हुए भी अपने विस्तार और गुणधर्म में यह कृति विस्तृत है। उसमें कम शब्दों में सांकेतिक भाषा द्वारा एक कस्बे का आदमी महानगरों में आते-आते कैसे टूट जाता है, इसका सशक्त चित्रण लेखक ने इस रचना में किया है। आत्मकथात्मक शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा हुआ यह लघु उपन्यास कस्बाई और महानगरीय जिन्दगी की जुड़ती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है।"(72)

समुद्र में खोया हुआ आदमी

कमलेश्वर का यह उपन्यास महानगरीय जीवन पर आधारित है। जो पहली बार 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के एक अंक में प्रकाशित होते ही चर्चित हो गया था। यह उपन्यास अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर इतना सहज और स्वाभाविक अंविति वाला उपन्यास है कि वह हर उस परिवार की कहानी बन जाता है जो महानगर में टूटने-बिखरने को विवश है क्योंकि उसका आर्थिक स्त्रोत सूख चुका है।

लेखक ने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय परिवार के बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरती हुई जिन्दगी का सहज चित्रण संवेदनात्मक धरातल पर किया है। श्यामलाल जिसका पुत्र समुद्र में नौकरी के सिलसिले में जाता है और खो जाता है। लौटकर नहीं आता। घर के टूटते-बिखरते संदर्भ और उन लोगों की स्थिति को स्वीकार न करने का रवैया उपन्यास में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। इसमें परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने ढंग से संघर्ष में जुट जाता है तथा जिन्दगी के अभावों से लड़ता हुआ उसे किसी प्रकार थोड़े अंशो में ही सही, बेहतर बनाकर जीने की कोशिशें करता है। असल में 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' श्यामलाल का पुत्र वीरेन नहीं बल्कि वह स्वयं है। जो भीषण आर्थिक असमानताओं के समुद्र में खो गया है। उसका परिवार और वह स्वयं महानगर के भीड़ के सैलाब में कहीं खो गए हैं।

काली आँधी

'काली आँधी' उपन्यास कमलेश्वर का अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1974 में हुआ। इस उपन्यास के आधाार पर 'आँधी' नामक फिल्म भी बनी है। इसमें लेखक ने उच्चवर्ग एवं मध्यवर्ग के राजनीतिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का अत्यन्त सूक्ष्म तथा यथार्थ चित्र अंकित किया है। इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा लेखक को चुनावों के दौरान राजस्थान के दौरे पर महारानी गायत्री को देख कर मिली थी।

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास को कुछ इस ढंग से लिखा है कि वह एक असफल दाम्पत्य की करूण कहानी जैसा लगता है पर वास्तव में वह मात्र एक करूण कहानी नहीं है। और यदि उसे एक करूण कहानी ही मान ले, तो वह मात्र 'मालती' और 'जग्गीबाबू' की करूण कहानी नहीं है। वह उन दोनों के साथ साथ देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार और छल-कपट की

भी करूण कहानी है।"[73] उपन्यास की मुख्य पात्र 'मालती' हमारी पूँजीवादी व्यवस्था की उन गलत महत्वाकांक्षाओं की प्रतीक है, जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए साधनहीन सामान्य जनों को बहकाने, फुसलाने या उनका इस्तेमाल करने से परहेज नहीं करती।

मालती राजनीति में प्रवेश करती है और निरन्तर सफलता प्राप्त करती चली जाती है। इस सफलता को प्राप्त करने के लिए उसे अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाने पड़ते है। सफलता के उच्च से उच्चत्तर शिखर पर पहुँचने के अन्तराल में वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह नहीं कर पाती। वह अपनी सन्तान से भी विमुख हो जाती है परन्तु उनका अभाव उसे एकान्त के क्षणों में सालता जरूर है। वास्तव में राजनीति के नशे में वह इतनी अधिक चूर रहती है उसके और जग्गी बाबू (पति) के बीच तनाव और कटुतापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जग्गीबाबू मालती से समझौता नहीं करते हैं, जो इस बात का परिचायक तो है ही कि वह उच्चवर्ग की खोखली, झूटी और आडम्बरपूर्ण जिन्दगी नहीं जीना चाहते अपितु इसका भी संकेत है कि जग्गीबाबू अनवरत संघर्ष करने में विश्वास करते हैं।

दाम्पत्य सम्बन्धों की यह स्थिति आज के सामाजिक जीवन के उन परिदृश्यों को प्रस्तुत करती है जो एक किस्म का सामाजिक तनाव करती है। यह सामाजिक तनाव सम्बन्धों के उन वैविध्य को प्रस्तुत करते है जो सामाजिक मूल्यों पर आघात करते हैं। निश्चय ही 'काली आँधी' आज भी समय की धार पर खरी है। उसकी कसौटी की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है।

आगामी अतीत

यह कमलेश्वर का नवीनतम लघु उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1976 ई. में हुआ। लेखक ने इस उपन्यास में आज की जटिल और विषम सामाजिक परिस्थितियों में आर्थिक संपन्ता कितनी महत्वपूर्ण हो गई है, इस कटु सत्य को अनावृत किया है। 'काली आँधी' और 'आगामी अतीत' का कथ्य लगभग वही है अंतर केवल इतना है कि जहाँ 'काली आँधी' केवल सफलता की ओर बढ़ने तक का चित्रण प्रस्तुत करता है, वही 'आगामी अतीत' उससे आगे की भी बात कहता है। अर्थात उस स्थिति की बात, जब सफलताओं की स्पर्धा से ऊबा हुआ व्यक्ति अपने पुराने परिवेश या वर्ग में लौटना चाहता है, पर लौट नहीं पाता।"[74]

प्रस्तुत उपन्यास का नायक 'कमल बोस' पूँजीवादी शक्तियों से समझौता ही नहीं करता है अपितु अपने वर्ग को भी भूल जाता है। वह धन, सम्पत्ति व महत्वाकांक्षा की लिप्सा में पड़कर 'चन्दा' के प्यार की आहुति दे देता है। कमल बोस समाज द्वारा प्रस्थापित वरीयता की प्राप्ति हेतु अपने वर्ग या अपनों से कटकर सामाजिक दृष्टि की सफलता तो प्राप्त कर लेता है, परन्तु चन्दा के भविष्य की आहुति देकर यह सम्भव हो पाता है। सफलता का नशा जब चूक जाता है, तब सिवाय पश्चाताप और घोर आत्म-ग्लानि के कुछ हाथ नहीं आता।

जब कमल बोस को पागलपन की अवस्था में चन्दा की मृत्यु का समाचार मिलता है तथा उसकी बेटी चांदनी को कार्सियांग के वेश्यालय में देखता है तो वह टूट जाता है। उस नारकीय जीवन से यदि चांदनी लौट पाती तो कमल बोस को कुछ सांत्वना मिलती, पर उनकी भरसक कोशिशों के बावजूद चांदनी उनके साथ नहीं आ पाती। कमल बोस अपने अतीत को सुधार नहीं सकता और यही उसकी ट्रेजडी है।

इस प्रकार कमलेश्वर के इस उपन्यास में धन-दौलत की होड़ में कमल बोस जैसे व्यक्ति का घोर पतन, नारी की विसंगति का यथार्थ अंकन, प्रेम के शिकार होकर यातना पूर्ण जीवन बिताने को विवश चन्दा एवं उस यातना का जहर पीकर भी जीवन की होड़ में हार न माननेवाली उसकी बेटी चांदनी, पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध आदि का सबल एवं यथार्थ चित्रण किया है।

वही बात

कथाकार कमलेश्वर का यह उपन्यास सन् 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक ने एक नये समझौते की तरफ संकेत किया है। उपन्यास के कथ्य में महत्वाकांक्षी पति और उसकी पत्नी का द्वन्द्व है। कैरियर बनाने की होड़ में व सफलता प्राप्त करने की इच्छा में प्रशान्त अपनी पत्नी समीरा से दूर होता चला जाता है। पति के स्थानान्तरण के पश्चात पत्नी का एकान्त और भी गहरा हो जाता है। ऐसी स्थिति में भावनावश पत्नी अपना एकान्त एक सीमा तक खत्म कर लेती है। समीरा के जीवन में दूसरे पुरूष नकुल का आगमन होता है। समीरा प्रशान्त से तलाक के बाद पुनर्विवाह करती है। पार्टनर बदलने से स्थिति नहीं बदलती। 'वही बात' रहती है। यह सम्बन्धों के चुकने की कहानी है। लेखक का कथन है कि -" 'वही बात' स्त्री पुरूष सम्बन्धों की एक नयी परिभाषा तैयार करती है। शहर मध्यवर्गी समाज में अनेक समझौतावादी रिश्तों के नजारे देखने को मिल सकते हैं... लेकिन यह उपन्यास नकारात्मकता को कतई स्वीकार नहीं करता। सामाजिकता की सही और सुदृढ़ दिशा क्या होनी चाहिए, यह इसके समाधान में निहित है।"(75)

सुबह···दोपहर···शाम

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित कमलेश्वर का प्रमुख उपन्यास है 'सुबह···दोपहर···शाम'। जिसका प्रथम संस्करण 1985 ई में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का कथ्य राष्ट्र प्रेम को छूता है। कथानक की साधारणता में आशय की असाधारणता समाविष्ट है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारत के कई लोगों ने भिन्न प्रकार से क्रांतिकारी भूमिका अदा की। आजादी के आन्दोलन के दौरान केवल केन्द्रीय स्तर पर प्रखर क्रांतिकारी ही देश सेवा में नहीं लगे थे बल्कि दूर-दराज के छोटे गाँव-परिवार के लोग भी अपने-अपने स्वाभिमानी कर्त्तव्यों और त्याग की भावनाओं से आजादी की अलख में योगदान कर रहे थे।

उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण संस्कारों व संस्कृति का बेहद खूबसूरती के साथ अंकन किया है। जसवन्त के परिवार में पत्नी, बेटी, माँ-बाप और बड़ी दादी है। बड़े दादा सन् 1857 में हुए स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हो गए।

बड़ी दादी अपने पति के अरमानों की पूर्ति अपने पुत्र एवं पौत्रों से करना चाहती थी लेकिन सब बेकार साबित हुए, सब अंग्रेजों के सेवक बन गए। परिवार की महिलाएँ दादी, जसवन्त की अम्मा व शान्ता एक ओर परम्परा व संस्कारों से बँधी है तो दूसरी ओर देशभक्ति के अनुराग में रंजित। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इन तीनों पीढ़ियों की नारियों के योगदान का सशक्त चित्रण किया है। लेखक का कथन है कि -"यह उपन्यास एक ही परिवार में सिद्धांतों और आदर्शों की विभिन्नता का यथार्थवादी रूपक है।"(76) स्वतंत्रतापूर्व की पीढ़ी का आदर्शों के प्रति रूझान ही इसका मुख्य स्वर है।

रेगिस्तान

यह कमलेश्वर का अद्यतन उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1988 ई. में हुआ। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक कुछ सवाल उठाते है - सन् सैतालिस में आजादी मिली तो किसको ? सवाल गहरा जरूर है किन्तु अनुत्तरित नहीं। क्या सिर्फ देश का शासन और प्रशासन आजाद हो जाना ही सम्पूर्ण आजादी है ? समग्र भारतीयता की मूलभूत पहचान और प्रवृत्तियों की आजादी आज भी सवालों के घेरे में है।"(77) जिस धरती पर मनुष्य कुछ नहीं उगाता वह बंजर हो जाती है और कालान्तर में बंजर भूमि रेगिस्तान में परिवर्तित हो जाती है। यह भारत वर्ष का कटु सत्य है। भारत आज आचार-विचार आदर्शों व मूल्यों के प्रति रेगिस्तान हो गया है।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र विश्वनाथ एक आदर्श हिन्दी प्रचारक है। सन् तीस में देश को अपनी भाषा देने के लिए स्वदेशी स्कूल की नौकरी, घरबार, सब कुछ छोड़कर निकल गया था। भारत भर में हिन्दी प्रचार करते-करते अब आजादी के बाद अपने गाँव वापस आ जाता है। तब उसे मालूम होता है कि जहाँ पहले हिन्दी थी वहाँ भी अब हिन्दी नहीं रही है। इस दुखद सत्य को मानने को विवश, विश्वनाथ फिर वहाँ हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी मन्दिर' बनवाने में लग जाता है। उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आजादी के सपनों का टूटना और बिखरना इस उपन्यास का मूल कथ्य है।

'रेगिस्तान' में खासतौर पर गांधीवाद और गांधीवादी आदर्शो के सामाजिक यथार्थ का मिश्रण हो सका है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत को ऊँचाइयों तक ले जाने का सपना हर व्यक्ति देख रहा था परन्तु वे स्वप्न पूरे नहीं हुए । जो व्यक्ति इन आदर्शों को लेकर चले उनका जीवन हाहाकार करता रेगिस्तान बन गया। इस कथा को विश्वनाथ हिन्दी प्रचारक के भ्रमभंग के माध्यम से व्यक्त किया है।

कितने पाकिस्तान

'कितने पाकिस्तान' अत्यंत व्यापक फलक पर लिखा गया उपन्यास है, जो 42 खण्डों में विभाजित है। यह उपन्यास सन् 2000 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया लगभग दस साल तक चलती रही। प्रस्तुत

उपन्यास में केवल भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर में चल रहे तमाम संघर्ष एवं विभाजन की त्रासदी और समस्याओं को उठाने का भरसक प्रयास किया गया है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास मानवता के दरवाजे पर इतिहास और समय की एक दस्तक है। इस उम्मीद के साथ कि भारत ही नहीं दुनिया भर में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवादी आतंक, विद्वेष और महायुद्ध की विभीषिका तथा साम्प्रादायिक जुनून का खात्मा हो सके।"(78)

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास पाँच हजार वर्ष के इतिहास को अपने अंदर समेटे हुए है। उपन्यास में आदिकाल, आर्यो का आगमन, उनका संघर्ष, मोहनजोदडों सभ्यता, वेदों में असुरों के युद्धों की अनुगूँज, महाभारत युद्ध, आर्याना के डेरियस और यूनानी मिलिडयाडिस का मैराथन के मैदान में हुआ युद्ध, झेलम, कैने सोमनाथ, तराइन, क्रेसी, पानीपत जैसे युद्धों का गहन अन्वेषण मानवीय धरातल पर किया है। कुँवरपाल सिंह के अनुसार - "कमलेश्वर का महत्वपूर्ण उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हमारे समय पर इतिहास और संस्कृति के माध्यम से अनेक जटिल सवालों से हमारा साक्षात्कार कराता है। क्या इतिहास पुराण है ? क्या भारतीय संस्कृति इकहरी और धर्मविशेष से संबंध रखती है ?" इससे जुड़े हुए अन्य महत्वपूर्ण सवाल है। यह उपन्यास इन प्रश्नों को हमारे सम्मुख उठाता है। एक महत्वपूर्ण सवाल और है - धर्म का इतिहास में सत्ता और अपने वर्चस्व के लिए इस्तेमाल। कमलेश्वर इन सवालों के तह में जाने का प्रयास करते हैं।"(79)

उपन्यास का कथानक केवल भारत के किसी एक शहर, कस्बे या गाँव तक ही सिमटकर नहीं रहता बल्कि देश काल की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ वैश्विक चिंताओं को हमारे समक्ष रखता है। कथानक का यह विस्तार उन तमाम मानवीय मूल्यों में मनुष्य की आस्था बनाए रखने के प्रयास में किया हुआ दिखाई देता है, जिसके लिए लेखक न केवल शिल्पगत पर कथानक के स्तर पर अपने ही द्वारा अब तक जो कुछ लिखा था उससे आगे बढ़ते हुए कुछ अलग हमारे सामने रखने में सफल हो जाता है। "कमलेश्वर की खूबी है कि उपन्यास में अदीब के रूप में मौजूद होते हुए भी उन्होंने अपनी उद्भावनाओं और निष्कर्षो को समकालीन या इतिहास प्रसिद्ध दार्शनिकों, चिंतकों, साहित्यकारों के जरिए प्रस्तुत किया है।"(80)

प्रस्तुत उपन्यास में 'अदीब', 'अर्दली', 'सलमा', जैसे प्रमुख पात्र हैं जो उपन्यास की कथा को उसकी मंजिल तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। अदीब एक पत्रकार है। उसे सच की तलाश है। इसी तलाश में वह पिछली सदियों में व उसके इतिहास में वह दाखिल होता है। इसी कारण उपन्यास में इतिहास से जुड़े अनगिनत पात्र भी आए हैं। चाहे मुगल बादशाह हो, अंग्रेज हो या वर्तमान में मौजूद नेता, साहित्यकार सभी शामिल है। "इसमें अलग-अलग किरदारों में हजारों बरस बूढ़े इतिहास को पेशकर अपने वक्त की संकटापन्न स्थितियों से दो चार होने और भविष्य के लिए कुछ महत्वपूर्ण 'क्लू' जुटाने के समूचे उपक्रम को एक नया शिल्पगत प्रयोग कहा जा सकता है।"(81)

यह उपन्यास कमलेश्वर की अत्यंत श्रेष्ठ कृति है। यह अपने तरह की एक अनूठी कृति है जिसमें विश्व में जगह-जगह चल रहे आपसी संघर्ष को समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। कथा पुराण, इतिहास कल्पना के अद्‌भुत समन्वय से बुनी गयी है, जो बड़ी गहरी दृष्टि लिए हुए अपने समय समाज और युग की स्थितियों का प्रामाणिक चित्र बनी है। कथा हिन्दू-मुस्लिम के बीच की ही नहीं बल्कि मानव के बीच की खाई को विस्तार देनेवाली कुचालों को बखूबी उजागर करती है, इतिहास में दर्ज दास्तानों की सच्चाई खोलती है, जातिवाद, आतंकवाद, भ्रष्ट राजनीति, भ्रष्ट धार्मिक व्यवस्था, खोखली व्यवस्था जैसी सामाजिक विसंगतियों पर कड़ा प्रहार करती है, सांप्रदायिक ताकतों की भी खूब खबर लेती है। उपन्यासकार ने प्रत्येक बुराई पर उँगली रखने का अभूतपूर्व साहस दिखाया है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास अमन व एकता के साथ समग्र मानवीयता का महान संदेश देता है। इस दृष्टि से विश्व स्तर पर यह उपन्यास मात्र उपलब्धि नहीं विशेष उपलब्धि है।

अनबीता व्यतीत

कमलेश्वर कृत 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास एक लघु उपन्यास है। जिसकी कहानी 1947 के बाद सामन्ती युग का पतन, पर्यावरण, पक्षियों से प्रेम तथा सहज मानवीय कोमल संबंधों की कहानी है। इसका प्रकाशन सन् 2004 ई. में हुआ।

उपन्यासकार कमलेश्वर ने इस उपन्यास में इस बात को उजागर करने का प्रयास किया है कि आधुनिकीकरण के दौर में प्रकृति और पर्यावरण को शोषण का जरिया बनाया गया है। इसी प्रकृति में तरह-तरह के जीव हैं। अपने मखमली पंखों को लहराते, अपनी मधुर आवाजों से संगीत पैदा करते ये पंछी बरसों-बरस मन की शांति को जीवन देते है और इन्हीं पंछियों में आ मिलते है, वे परदेसी पंछी जो सर्दियों में सायबेरिया और उत्तर गोलार्द्ध से उड़कर हर वर्ष भारत आते हैं। यहाँ बसेरा करते हैं। हजारों मील का सफर और हिमालय को पार करते हुए सर्दियों में भारत को अपना घर बना लेते हैं। लेकिन इन मासूम पंछियों के पीछे भी मृत्यु पड़ी रहती है। जगह-जगह उन्हें पकड़ा व मारा जाता है और इनका व्यापार किया जाता है। इसी यथार्थ को उजागर करती हैं, वह नीली झील जहाँ वे परदेसी पंछी जीवन पाने के लिए आते हैं। परन्तु शिकारी के बन्दूक की एक गोली छूटती है और सारा वातावरण कोलाहल से भर जाता है .... इसी दारूण मृत्यु परंपरा के अंधे अभियान से मुक्ति का एक आख्यान है यह उपन्यास।

अम्मा

कमलेश्वर का 'अम्मा' एक सिने उपन्यास है। जिसका पहला संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ। अपने इस उपन्यास के संबंध में कमलेश्वर का कथन है -"इसकी रचना की प्रक्रिया और प्रयोजन उन उपन्यासों से एकदम अलग है जो मैंने अपनी अनुभवजन्य संवेदना के तहत लिखे हैं। अतः यह कहने में

मुझे संकोच नहीं है कि यह उपन्यास मेरे आन्तरिक अनुभव और सामाजिक सरोकारों में नहीं जन्मा है ..... इसकी सामाजिकता सिने-माध्यम तक सीमित है, पर बाधित नहीं।"[82]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे क्रांतिकारी युवकों के जीवन एवं उनके परिवार द्वारा भोगे जाने वाली यातनाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। साथ ही अंग्रेजों की क्रूरता एवं स्वार्थ हेतु उनकी चापलूसी करते हुए भारतियों की मानसिकता का और रूढ़िवादी पारम्परिक समाज में विधवा स्त्री की त्रासद स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

पति-पत्नी और वह

कमलेश्वर द्वारा कृत 'पति-पत्नी और वह' उपन्यास भी एक सिने उपन्यास ही है। जिसका पहला संस्करण 2006 में ही प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास का कथा फलक कमलेश्वर के 'अम्मा' उपन्यास से बिल्कुल पृथक है। देहलोलुप पुरूषों की लिप्सा और कुंठा इस उपन्यास का केन्द्रीय विषय है।

प्रस्तुत उपन्यास में वरिष्ठ उपन्यासकार कमलेश्वर ने समकालीन समाज में पुरूष मानसिकता को उघाड़कर रख दिया है। इस उपन्यास पर बी.आर चोपडा के निर्देशन में फिल्म भी बनाई गई है। इसमें संजीव कुमार, विद्या सिन्हा एवं प्रवीन बाबी मुख्य भूमिकाओं में थे।

कहना न होगा कि 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास को छोड़कर कमलेश्वर के समस्त उपन्यास, लघु उपन्यास हैं। उनके उपन्यासों के विषय ऐसे है, जो आदमी के व्यापक जीवन की बहुरंगी छवियों से परिचित कराते हैं, जीवन से कटे हुए नहीं है। वे पाठक को जिन्दगी से जोड़ते हैं, उसे उससे काटकर एकांतिक अनुभव क्षेत्र में नहीं ले जाते। पात्रों और चरित्रों के मनोद्वन्द्वों में भी कमलेश्वर गहराई से उतरते हैं और उनमें गहरे उतरते हुए भी कथा सूत्रों को बिखरने नहीं देते, उन्हें सँभाले रहते हैं, समायोजित किये रहते हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन है -"वस्तुतः कमलेश्वर एक कहानीकार है। इसीलिए उन्होंने कहानी की संवेदना को ही उपन्यासों में मूर्त करने का प्रयत्न किया है। उनमें निश्चित रूप से कथा-रचना की मौलिक दृष्टि है। यदि उन्होंने सिनेमा जगत से अपने को न जोड़ा होता तो उनकी प्रतिभा का सहज उत्कर्ष उनके रचनाकार को सफलता के शिखर पर पहुँचा देता।"[83]

संपादक कमलेश्वर : 1954 में 'विहान' जैसी पत्रिका का संपादन आरम्भ कर कमलेश्वर ने दर्जनों पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें 'नई कहानियाँ', 'सारिका', 'कथा-यात्रा', 'गंगा' आदि प्रमुख हैं। इन सब में उनकी संपादकीय प्राथमिकताएँ थीं। नई प्रतिभाओं को नये विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित करना और सशक्त हस्ताक्षरों से उनका सर्वश्रेष्ठ प्राप्त कर प्रकाशित करना।

सर्वप्रथम हिन्दी 'संकेत' में कमलेश्वर ने सम्पादक के रूप में कार्य किया था। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' उसके नामधारी प्रधान सम्पादक थे। 'संकेत' हिन्दी लेखन की पहचान के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ था। कहना न होगा कि

कमलेश्वर ने 'संकेत' के माध्यम से प्रगतिशील रचनात्मकता को एकत्रित करने के लिए 'संकेत' का मंच तैयार किया था। इसके पश्चात कमलेश्वर ने दिल्ली से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'इंगित' का संपादन किया। जिसमें उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर सार्थक टिप्पणियाँ और लेख लिखे। प्रदीप पंत का कहना है कि –"कमलेश्वर अपने इंगित कार्यालय को साथ लिए-लिए चलते थे।"(84) कमलेश्वर ने 'पर्यवेक्षक', 'संजय', 'हरिशचन्द्र' 'सौमित्र सिन्हा', 'वित्र गोस्वामी' आदि उपनामों से तत्कालीन विषयों पर टिप्पणियाँ लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

कमलेश्वर ने 'इंगित' के कुछ अंक निकाले और फिर वे 'नई कहानियाँ' के संपादक हो गए। कमलेश्वर ने 'नई कहानियाँ' को एक निरंतर प्रवहमान नदी का रूप दिया। प्रमाण है कि 'नई कहानियाँ' के युवा कथाकार देवेन की स्मृति को समर्पित 'नव लेखन विशेषांक' जिसके पन्नों पर अनेक नए लेखक नजर आए और इन अंकों से पहले तथा बाद में भी निरंतर आते रहे। यहीं से कमलेश्वर के साहित्यिक सम्पादक का व्यक्तित्व निखर उठने लगा।

1966 के अन्त में कमलेश्वर बंबई आए। 1967 से 1978 तक का समय 'सारिका' कथा के संपादकत्व का है। 'सारिका' का दौर कमलेश्वर के कार्यकाल का सबसे लंबा दौर तो रहा ही, उनके एक सफल साहित्यिक कर्म का सबसे हलचल भरा दौर भी रहा है। 'सारिका' को उन्होंने एक सफल ऐतिहासिक पत्रिका बनाया। 'सारिका' की सफलता का प्रमाण था कि उसे मासिक से पाक्षिक बनाया गया। इतना ही नहीं 'सारिका' के माध्यम से कमलेश्वर ने पूरा का पूरा एक समानांतर कथा आन्दोलन ही खड़ा कर दिया। एक ऐसा कथा आन्दोलन, जो सम्बन्धों के बिखराव और भावुकता भरे हुई कहानी वाले दौर से एकदम अलग जनता के जुझारू तेवर को रेखांकित कर रहा था।

कमलेश्वर के इस समांतर आन्दोलन को लेकर हिन्दी जगत में कई विरोध थे। जो लोग कमलेश्वर को अपने से छोटा मानते थे और उनके समकालीन भी थे, वे कहा करते थे कि "कमलेश्वर ने अपने इर्द-गिर्द नये लेखकों की भीड़ इकट्ठी कर रखी है और खुद उनका नेता बना बैठा है, वे यह भी कहते थे कि ये सब लोग क्योंकि 'सारिका' में छपते है इसलिए कमलेश्वर से जुड़े हुए हैं। इलाहाबाद में एक बार मैं 'माया' मासिक पत्र के कार्यालय में गया और वहाँ पर एक बड़े हिन्दी कहानीकार ने कमलेश्वर को लेकर मेरी ऐसी-तैसी कर दी।"(85)

कमलेश्वर का सारिका काल उनकी साहित्यिक पत्रकारिता का शिखर काल है, जब उन्होंने हिन्दी पाठकों को समस्त भारतीय भाषाओं से तो रूबरू कराया ही, उन्हें पिछड़े हुए अफ्रीकी और लैटिन अमरीकी देशों के कथा-साहित्य से भी रूबरू कराया और यह रेखांकित किया कि सभी पिछड़े हुए देशों में शोषित समाजों की पीड़ी एक जैसी है। "आज हिन्दी साहित्य कमलेश्वर का ऋणी है कि उसने 'सारिका' के माध्यम से सचेतन, अकहानी और बहुत से उखड़े हुए आन्दोलनों को खत्म कर कहानी को जाँघों के

जंगल से छुड़ाने के लिए हिन्दी साहित्य को एक से एक जगमगाते नक्षत्र दिए। मैं यहाँ उन सितारों के नाम नहीं गिनाना चाहता, जिनकी शिनाख्त आज समांतर कहानीकारों के नाम से की जाती है। इन मशहूर लेखकों की कहानियाँ सदियों तक समांतर के लाइट-हाउस की तरह आने वाली पीढ़ियों का पथ-प्रदर्शन करेगी। और इन सितारों को कहानी के आकाश पर टांकने का श्रेय कमलेश्वर को ही है।"(86)

इसी प्रकार कमलेश्वर ने 'कथा यात्रा' का संपादन 1978-79 में किया तो 1979-80 के दौरान बंबई में 'श्री वर्षा' साप्ताहिक का संपादन संभाला। 1986 से दिल्ली में 'गंगा' पत्रिका में संपादन सलाहकार की भूमिका अदा की। 1990 जुलाई माह से कमलेश्वर ने पत्र पत्रिका संपादन में एक और मील का पत्थर तय किया। दिल्ली शहर से निकलने वाले दैनिक पत्र 'दैनिक जागरण' का वे संपादन कार्य कर रहे थे। कमलेश्वर के कुशल नेतृत्व, संचालन एवं संपादकत्व काल में इस दैनिक पत्र ने अल्प समय में ख्याति प्राप्त कर ली थी। कमलेश्वर समकालीन लेखकों को जन-जीवन से सही अर्थ में जोड़ने के उद्देश्य से प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने किसी 'वाद' की नारेबाजी की बजाय सच्ची मानवतावादी दृष्टि को अपनाया। सम्पादक कमलेश्वर के संबंध में अजित पुष्कल का कथन है -"सम्पादक के रूप में भारतीय चिन्तन और सम्मिलित भारतीय साहित्य के स्वरूप को भाषाई सीमाओं के ऊपर ले जाकर एकात्मक करने का जो ऐतिहासिक दायित्व कमलेश्वर ने निभाया है वह यथार्थवादी सोच और प्रगतिशील चिन्तन की परम्परा की ही अगली कड़ी है।"(87)

कमलेश्वर ने समय-समय पर कई पुस्तकों का संपादन कार्य भी किया। 'सारिका' के संपादन के दौरान उन्होंने **'गर्दिश के दिन'** नामक स्तंभ प्रारम्भ किया। इस पुस्तक में 12 भारतीय लेखकों की अपनी गर्दिश की विवरणात्मक कहानियाँ हैं। 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' नामक संस्मरण ग्रंथ के अन्तर्गत मोहन राकेश ने यादव पर, यादव ने कमलेश्वर पर, कमलेश्वर ने मोहन राकेश पर संस्मरण लिखे हैं। जिन्होंने अपने अनुभव अपने दोस्त के हमदम बनकर पेश किए हैं। हिन्दी कहानी में उभरे समान्तर आन्दोलन की पीठिका के रूप में **'समान्तर -1'** नामक पुस्तक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आम आदमी की समस्याओं से आज के लेखक की सम्बद्धता ही इस पुस्तक का केन्द्र है। इसी प्रकार 'पहली कहानी' पुस्तक में भारत की विभिन्न भाषाओं की 'पहली कहानी' को स्थान दिया गया है। प्रमुख भाषाओं के लेखकों के परिचय, चित्र एवं विवेचना भी प्रस्तुत की गई है। भारत की पहली कहानियों का यह अनोखा संकलन निश्चय ही नवीनता का द्योतक है। संविधान सम्मत भारतीय भाषाओं तथा लोक सम्मत भाषाओं, उपभाषाओं की आधुनिकतम, अद्वितीय और चर्चित कहानियों का अछूता व अप्रतिम आयोजन कमलेश्वर जैसे प्रखर साहित्यकार ने **'भारतीय शिखर कथा कोश'** में किया।

समय-समय पर कमलेश्वर ने अनुवाद करने का कार्य भी किया। 'इंगित' साप्ताहिक में उन्होंने विश्व साहित्य से दस्तावेज के रूप में बहुत सी कहानियों को अनुदित किया था। जिन्हें प्रदीप मांडप ने कमलेश्वर के

'मरणोपरांत धरोहर' नामक पुस्तक में संकलित किया। जिसका प्रथम संस्करण 2008 में प्रकाशित हुआ। इसमें कमलेश्वर की **'मैं खुदा हूँ'** (जुलियन कावालक), **'मौत और चार दिन का खाना'** (सेवदेत कुदरेत), **'होसेंग'** (पाकची- वान), **'हास्य अभिनेता'**(हर्बर्ट बेट्स), **'वेदना'** (रशाद रशदी), **'जो एंकर की चट्टान'** (डोरोथी हीवेट), **'सुख'** (सैयद मुस्तफा सिराज), **'एक क्लर्क की मौत'** (चैखव), **'युद्ध'** (लुइगी पिरांदेलो), **'वासंती साये'** (हर्बर्ट आइसनराइश), **'बीस साल बीतने पर'**(एडगर ऐलन पो), **'कर्मयोगी'** (जरासंध) आदि अनुदित कहानियाँ संकलित हैं।

साथ ही तत्कालीन साहित्यिक सामाजिक संवाद के लिए कमलेश्वर ने सिमोन द बुआ, जीन फेल्डमान और मैक्सगरटेन वर्ग तथा जोशे आरगेता गेस्से के महत्वपूर्ण लेखों का अनुवाद भी किया वो भी इसी पुस्तक में सम्मिलित है।

आलोचक कमलेश्वर : आलोचना का क्षेत्र सामन्यतः साहित्यकारों के पहुँच की दुनिया नहीं है, फिर भी कमलेश्वर ने वहाँ भी अपनी जीत का झण्डा फहराया है। कमलेश्वर ने समय-समय पर कई पत्रिकाओं में आलोचनाएँ लिखी हैं, उन्होंने 'नई कहानी' आन्दोलन के उपरान्त उभरने वाले आन्दोलनों पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है जो धर्मयुग के चार अंकों में सन् 1965-1966 के समय छपी थी, परन्तु उनकी दो पुस्तकें स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में आये परिवर्तनों को स्पष्ट करती है, इन पुस्तकों को आलोचना के अन्तर्गत रखा है, पहली है –**'नई कहानी की भूमिका'** और दूसरी - **'मेरा पन्ना : समान्तर सोच'**, इसमें कमलेश्वर ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्यिक पहलुओं और संकल्पों को उजागर किया है।

'नई कहानी की भूमिका' के वक्तव्य में ही इस पुस्तक लेखन का कारण स्पष्ट दिया है -"आज कहानीकार व उपन्यासकार होने के बावजूद भी लेखक के पास कहने को बहुत कुछ रह जाता है।"[88] उसी की पूर्ति उन्होंने 'नई कहानी की भूमिका' लिखकर की है। पुस्तक में 21 समीक्षात्मक लेख हैं। 'नई कहानी' आन्दोलन को लेकर यह पुस्तक ऐतिहासिक महत्व रखती है। 'नई कहानी की भूमिका' की ही भाँति 'मेरा पन्ना' 'सारिका' पत्रिका में लिखे गए बहुचर्चित संपादकियों का पुस्तकाकार रूप है। पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। इसके प्रथम खण्ड में तत्कालीन कहानी आन्दोलन अर्थात् 'समान्तर आन्दोलन' की वैचारिकता को स्पष्ट किया गया है तथा दूसरा खण्ड आपातकाल के पश्चात का है। " 'मेरा पन्ना' को एक साथ पढ़ा जाए तो कहना होगा कि वह अपने समय की सम्यक समीक्षा है। सामाजिक बदलाव में साहित्य की भूमिका को बेहद कारगर मानने वाले कमलेश्वर कई अर्थो में प्रेमचन्द के उसी तरह वारिस थे जैसे परसाई और भीष्म साहनी। वह सामाजिक क्रांति में आम आदमी की भागीदारी को महत्वपूर्ण मानते हुए कहते थे कि "अगर क्रांति आम आदमी की आत्मा को तेजस्वी नहीं बनाती तो सड़ने लगती है।"[89]

नाटक, निबंध एवं यात्रा वृतांत : कमलेश्वर ने नाटक के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है, उन्होंने मौलिक एवं अनुदित नाटकों की रचना की। कमलेश्वर के मौलिक नाटक है - 'अधूरी आवाज', तथा 'रेगिस्तान' तथा उनका अनूदित नाटक है 'खड़िया का घेरा'। इसके साथ ही उन्होंने प्रमेचन्द के गोदन, गबन, और निर्मला का नाट्य रूपांतर किया है। लेकिन ये अप्रकाशित एवं अप्राप्य है। कमलेश्वर ने बाल नाटकों के चार संग्रह भी लिखे है। इस प्रकार नाटक-साहित्य को भी कमलेश्वर ने अपना योगदान दिया है।

कमलेश्वर ने सन् 1996 में 200 निबंधों का संग्रह प्रस्तुत किया है। संग्रह का समर्पण 'अनाम सहयोगियों' के नाम है, जिन्होंने इनके लेखन में हाथ बँटाया, इनके निबंध विविध विषयों से संबंधित हैं 'हिन्दी के निर्माता साहित्यकार' 'संस्कृति और कला', 'राष्ट्रीय समस्याएँ', 'विज्ञान और खेलकूद' आदि महत्वपूर्ण है। श्री श्याम श्रीवास्तव ने स्वयं 'कमलेश्वर' को आधुनिक कथा साहित्य का महत्वपूर्ण साहित्यकार कहा है।"[90]

कमलेश्वर ने मात्र एक यात्रा विवरण से यायावरी साहित्य विद्या को सम्पन्न बनाया। उनका यात्रा विवरण है -'खंडित यात्राएँ'। इसमें अन्य संस्मरणों की भाँति मात्र प्रकृति के सुरम्य, रमणीय, मादक या रौद्र रूप को ही पेश नहीं किया बल्कि वहाँ के जर्जर आदमी का भी चित्रण किया है।

रेडियो, दूरदर्शन एवं सिनेमा : हिन्दी फिल्मों और टेलीविजन माध्यम से सम्बद्ध रहे साहित्यकारों में भी कमलेश्वर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम है। उनकी कई कहानियों ने फिल्म और टेलीविजन माध्यम और फिल्म व्यवसाय को सामाजिक संवेदना एवं कलात्मक ऐंद्रिकता प्रदान की है। जहाँ कमलेश्वर ने अपनी और कुछ अन्य लेखकों की रचनाओं पर **'आँधी', 'मौसम', 'डाक बंगला', 'सारा आकाश', 'अमानुष'** जैसी साफ-सुथरी फिल्मों की पटकथा लिखी तो **'पति,पत्नी और वो', 'लैला', 'राम बलराम', 'बर्निंग ट्रेन', 'सौतन'** आदि व्यावसायिक फिल्में भी लिखी तो इस प्रकार कमलेश्वर ने लगभग 100 फिल्मों का लेखन किया। 'बदनाम बस्ती' हो या 'डाक बंगला' इन सबमें दर्शकों ने जीवन के उन अछूते और अनकहे क्षणों का साक्षात्कार किया, जिन्हें सिनेमा के परंपरावादी दृश्यों या कथानकों से अलग माना गया।

कुछ अधूरी फिल्में ऐसी भी हैं, जिनकी कहानी और संवाद कमलेश्वर के छिपे तेज को संभवतः आगे कभी उजागर करे। राज कपूर ने 'नीली झील' नाम की फिल्म की तैयारी कमलेश्वर के साथ मिलकर की थी और कुछ इसी तर्ज पर लता मंगेशकर की 'एक अमर प्रेमकथा' भी ऐसी तस्वीर है, जो कमलेश्वर की कला को अब तक अभिव्यक्त नहीं कर पायी है। "कमलेश्वर की खासियत यही थी कि वे किसी एक अकेले क्षेत्र में, और कई क्षेत्रों में एक साथ भी कार्यो को संपादित करने में इस कदर सिद्धहस्त थे कि संपूर्णता से सहज ही रू-ब-रू करा देते थे। **'आँधी',** और **'मौसम'** हिन्दी सिनेमा के दो ऐसे नगीने हैं, जो कमलेश्वर की समग्र चेतना को संजोये सदैव उनकी उत्कृष्टता का अहसास कराते रहेंगे।"[91]

कमलेश्वर ने 1957-58 में इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर कार्य किया। उन्होंने उस समय तथा समय-समय पर करीब 700 स्क्रिप्ट लेखन का कार्य किया। आकाशवाणी और बाद में टेलीविजन के लिए आलेखक पद पर रहकर कमलेश्वर ने समसामयिक और प्रासंगिक विषयों पर लेखन तथा उनकी रचनात्मक प्रस्तुति, साहित्यिक कार्यक्रम 'पत्रिका' की शुरूआत, धाराविवरणी (रनिंग कमेंट्री) तथा पहली टेली फिल्म 'पंद्रह अगस्त' का निर्माण किया। अछूते विषयों और सवालों से पूरे देश को झकझोर देने वाले 'परिक्रमा' कार्यक्रम (जिसे यूनेस्को ने दुनिया के दस सर्वश्रेष्ठ कार्यक्रमों में से एक माना) में कमलेश्वर ने साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक समस्याओं पर खुली बहस करने की दिशा में साहसिक पहल की थी।

साहित्य और सिनेमा को एक सहज सूत्र में पिरोकर कमलेश्वर ने जो उच्च मापदंड स्थापित किये हैं, उसकी डोर अभी भी बरकरार है। आज जरूरत है उस शख्स की, जो इस डोर को मजबूती से थामकर कमलेश्वर की परम्परा का वाहक बन सके। कमलेश्वर अपनी पूरी शख्सियत के साथ कथा-संसार में खड़े थे। बल्कि कहना चाहिए कि उसके केन्द्र में थे। वह और भी बहुत कुछ लिखना चाहते थे -'उर्दू-हिन्दी का साझा इतिहास' और 'ईश्वर' शीर्षक से उपन्यास, लेकिन ..... ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दामोदर मावजो : शोधकर्तो की निजी वार्ता - माजोर्डा : 1 मई 2009

2. रोहिताश्व : शोधकर्त्री की निजी वार्ता - हिन्दी विभाग, गोवा-विश्वविद्यालय दिनांक 27 अप्रैल, 2010

3. राजेन्द्र यादव : कमलेश्वर (सं) मधुकर सिंह पृ.75

4. शिवकुमार मिश्र : वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2007 पृ.21

5. रोहिताश्व : कथा साहित्य के प्रतिमान पृ.89

6. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका पृ.103

7. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.231

8. कमलेश्वर : अनबीता व्यतीत (उपन्यास), लोकभारती प्रकाशन 2004

9. कमलेश्वर : अम्मा (उपन्यास), राज कमल प्रकाशन, 2006

10. कमलेश्वर : पति, पत्नी और वह, राज कमल प्रकाशन, 2006

11. शिवकुमार मिश्र : वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2007 पृ.21

12. प्रदीप मांडव : महानीच की आत्मकथा-यश प्रकाशन

13. सुरेश कुमार : वर्तमान साहित्य पत्रिका, सितम्बर 2007 पृ.30

14. कमलेश्वर : कमलेश्वर (सं. मधुकर सिंह) पृ.72

15. मधुकर सिंह(सं) : कमलेश्वर पृ.78

16. योगेन्द्र दत्त शर्मा (सं) : आजकल; अप्रैल 2007 पृ.9

17. योगेन्द्र दत्त शर्मा (सं) : आजकल; अप्रैल 2007 पृ.9

18. दुष्यंत कुमार : दुष्यंत कुमार की निगाह में (सं. मधुकर सिंह) पृ.93

19. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.55

20. कमलेश्वर : गर्दिश के दिन पृ.155

21. कमलेश्वर : आइने के सामने कमलेश्वर (सं. मधुकर सिंह) पृ.84

22. दुष्यंत कुमार : दुष्यंत कुमार की निगाह में (सं. मधुकर सिंह) पृ.87

23. मंजुला देसाई : कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन पृ.12

24. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका पृ.26

25. कुँवरपाल सिंह : वर्तमान साहित्य, फरवरी 2007

26. शिवकुमार मिश्र : वर्तमान साहित्य, 2007 पृ.21

27. हरियश राय : वर्तमान साहित्य, 2007 पृ.86

28. आलोक त्यागी : वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2007 पृ.14

29. मंजुला देसाई : कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन पृ.16

30. मधुकर सिंह(सं) : कमलेश्वर, लेख दुष्यंत कुमार पृ.94

31. योगेन्द्र दत्त शर्मा (सं) : आजकल पत्रिका पृ.12

32. कमलेश्वर : मेरा पन्ना- प्रकाशकीय, प्रथम संस्करण 1978

33. कमला प्रसाद(सं) : प्रगतिशील वसुधा (अंक-72) 2007 पृ.41-42

34. कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ (राजेन्द्र के 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' परिचयनामा) पृ.9

35. अरविन्द कुमार : अंधे काँच की दीवार (सं. मधुकर सिंह) पृ.98

36. मंजुला देसाई : कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन पृ.18

37. अरविन्द कुमार : अंधे काँच की दीवार (सं. मधुकर सिंह) पृ.101

38. दुष्यंत कुमार : दुष्यंत कुमार की निगाह में (सं. मधुकर सिंह) पृ.91

39. दामोदर सदन : एक शक्तिपुंज : कमलेश्वर (सं. मधुकर सिंह) पृ.290

40. उषा चौहान : नई कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि पृ.141

41. उषा चौहान : नई कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि पृ.141

42. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.68

43. प्रदीप मांडव : वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2007 पृ.5

44. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.98

45. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.101

46. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.106

47. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.108

48. प्रदीप मांडव : वर्तमान साहित्य, 2007 पृ.10

49. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया, भूमिका पृ.8

50. कमलेश्वर : अपनी निगाह में पृ.68

51. मंजुला देसाई : कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन पृ.23

52. शैलेन्द्र सागर : कथाक्रम : अप्रैल-जून-2007 पृ.59-60

53. सुरेश कुमार : वर्तमान साहित्य, 2007 पृ.31

54. उषा चौहान : नई कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि पृ.141

55. कमलेश्वर : जो मैंने जिया पृ.126

56. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका पृ.29

57. रेखा शर्मा : कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान पृ.48

58. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया, भूमिका पृ.6

59. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया, भूमिका पृ.6

60. मधुकर सिंह (सं): कमलेश्वर, भूमिका पृ.7

61. दुष्यंत कुमार : मेरा दोस्त कमलेश्वर, प्रदीप मांडव (सं) विरासत के अलम्बरदार पृ.53

62. घनश्याम मधुप : हिन्दी लघु उपन्यास पृ.160

63. राजेन्द्र यादव : मेरा हमदम मेरा दोस्त पृ.42

64. शिव कुमार मिश्र : वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2007 पृ.22

65. घनश्याम मधुप : हिन्दी लघु उपन्यास पृ.161

66. वीरेन्द्र सक्सेना : कमलेश्वर की औपन्यासिक यात्रा (सं. मधुकर सिंह) पृ.185

67. कमलेश्वर : समग्र उपन्यास, डाक बंगला पृ.227

68. कमलेश्वर : समग्र उपन्यास, डाक बंगला पृ.228

69. मधुकर सिंह (सं): कमलेश्वर शब्दाकार पृ.187

70. घनश्याम मधुप : हिन्दी लघु उपन्यास पृ.107

71. मधुकर सिंह (सं): कमलेश्वर पृ.188

72. अमर प्रसाद जयसवाल : हिन्दी लघु उपन्यास पृ.237

73. मधुकर सिंह : कमलेश्वर पृ.193

74. मधुकर सिंह : कमलेश्वर पृ.195

75. कमलेश्वर : समग्र उपन्यास, वही बात (भूमिका) पृ.513

76. कमलेश्वर : समग्र उपन्यास, सुबह-दोपहर-शाम (भूमिका) पृ.573

77. कमलेश्वर : रेगिस्तान उपन्यास, भूमिका पृ.671

78. रोहिताश्व : कितने पाकिस्तान : क्लासिकल अभिरूचि की महागाथा, प्रयास पृ.17

79. कुँवरपाल सिंह : नेट पत्रिका : अभिव्यक्ति

80. रोहिणी अग्रवाल : इतिवृत की संरचना और संरूप पृ.46

81. रोहिणी अग्रवाल : इतिवृत की संरचना और संरूप पृ.41

82. कमलेश्वर : अम्मा उपन्यास : भूमिका

83. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य पृ.232

84. प्रदीप पंत : राख के ढेर से बार-बार उठ खड़ी होने वाली शख्सियत प्रदीप मांडव(सं) पृ.39

85. राम सरूप आणखी	: वर्तमान साहित्य, 2007	पृ.26
86. दामोदर सदन	: एक शक्तिपुंज कमलेश्वर (सं मधुकर सिंह)	पृ.285
87. अजित पुष्कल	: कमलेश्वर : चिंतन पत्रकारिता और संपादक के संदर्भ (सं मधुकर सिंह)	पृ.342
88. कमलेश्वर	: नयी कहानी की भूमिका	पृ.18
89. महेश दर्पण	: कमलेश्वर होने का एक खास अर्थ था : आजकल	पृ.17
90. मंजुला देसाई	: कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन	पृ.35
91. राजीव श्रीवास्तव	: कमलेश्वर का सिने संसार : वर्तमान साहित्य, 2007	पृ.107

****

कथाकार कमलेश्वर : युगीन परिवेश

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य साहित्य में कथा-साहित्य का विशेष महत्व है क्योंकि इस काल में कथा साहित्य में कई नूतन प्रवृतियों का श्रीगणेश हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन बदली राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की असलियत तत्कालीन साहित्य जाहिर करता है। इन बाह्य परिस्थितियों व तात्कालिक परिवर्तन से लेखकों एवं कथाकारों की भीतरी संवेदनाओं और अनुभूतियों में परिवर्तन आ जाना सहज स्वाभाविक था। इस संबंध में नरेन्द्र मोहन का कथन है -"किसी भी देश के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति महज एक घटना नहीं होती, यह उस देश के लोगों की अदम्य मुक्ति कामना, संघर्ष और सामूहिक चेतना का प्रतिफल होता है। स्वतंत्रता के पीछे एक लम्बे संघर्ष का इतिहास रहता है और यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को एक नया अर्थ और आयाम देता है।"[1]

हर साहित्यकार अपने परिवेश से प्रभावित होता है। वह अपने युग, जीवन समाज की समस्याओं का निरीक्षण करता है । स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यक्ति ने समाज के समस्त पक्षों को नये चिंतन तथा नये दृष्टिकोण से परखा है। बदली परिस्थितियों ने जीवन-मूल्यों तथा नैतिक प्रतिमानों को प्रभावित किया है। देश की आजादी, विभाजन, राजनीतिक स्वार्थ, मूल्यों का पतन आदि से साहित्यकार प्रभावित रहे हैं और उसकी चर्चा कथा-साहित्य में हुई है।

साहित्य के लेखन पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश का प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह तो सर्वविदित है कि रचना का सृजन अकेले में होता है किन्तु रचनाकार के इन एकान्तिक क्षणों में भी उसका परिवेश उसके साथ होता है। अपने देशकाल से वह प्रभावित होता है। जिसके परिणामस्वरूप "परिवेश से रचनाकार,रचनाकार से रचना और रचना से पुनःपरिवेश का निर्माण होता है। जो लोग साहित्य के साथ परिवेश के रिश्तों का निषेध करते हैं। इनका साहित्य 'इलिया एहरेन बुर्ग' के शब्दों में स्वप्नों की फैक्ट्री में उपजा साहित्य होता है।"(2)

लोक साहित्य को अनदेखा करके साहित्य रचना करने वाले लेखक इतिहास से बाहर रह जाते हैं। रचना के मूल में रचनाकार की अनुभूति का साथ तो होता ही है किन्तु परिवेश के साथ गहरी एवं आत्मीय संबद्धता उसकी रचना को प्रामाणिक बनाती है। परिवेश की जीवतंता के कारण ही प्रेमचन्द का समस्त लेखन, उनके काल की परिस्थितियों पर कारगर टिप्पणियाँ मानी जाती हैं। इसी के साथ ही साथ फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' उपन्यास, उषा प्रियंवदा की 'वापसी' तथा ज्ञानरंजन की 'पिता' आदि कहानियाँ इसलिए महत्वपूर्ण है कि ये रचनाएँ लेखक द्वारा अनुभूत परिवेश की देन हैं।

मानवीय चेतना का परिवेश से इतना निकट और बहुआयामी संबंध है कि परिवेश को दृष्टि में रखे बिना हम मानव जीवन के निरन्तर बदलते स्वरूपों को नहीं समझ सकते। परिवेश और मानव की अंतश्चेतना दोनों एक दूसरे से दोहरे रूप में प्रवाहित है। जहाँ व्यक्ति के क्रिया कलाप परिवेश का निर्माण करते हैं। वहीं परिवेश व्यक्ति को प्रभावित करता है।

स्वतंत्रता के बाद का भारतीय परिवेश अनेक परिवर्तनों और घटनाओं से गुजरा है। कस्बे के मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य होने के नाते कमलेश्वर स्वयं इन बदलावों के भोक्ता रहे हैं जिनका जीवन्त उद्घाटन उन्होंने अपने कथा-साहित्य में किया है। कमलेश्वर के अनुसार -"अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता की कामना, प्रजातंत्रवाद, तटस्थता, शान्तिपरकता, समाजवाद और सहिष्णुता, राष्ट्रीय स्तर पर जातिहीन मनुष्य-केन्द्रित दृष्टि, धर्मनिरपेक्षता, समाजवादी व्यवस्था में समानता और समान अवसर की अनिवार्यता, स्त्री-पुरूष संबंधों का नया संतुलन, इकाई के रूप में उभरती स्त्री की स्वीकृति, परिवार का विघटन, नई पीढी की केन्द्रीय व्यक्ति के रूप में स्थापना, धर्मवादी संस्थाओं का परित्याग, चरित-नायकों की अनुपस्थिति साधारण जन की स्वीकृति, निर्णय की स्वतंत्रता, धर्म आचरण की जगह व्यक्तिमूलक नैतिकता का उदय, एक-दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप की अनुपस्थिति, तर्क-सम्मत निष्कर्षों की स्वीकृति, पुरातन का संशोधन, पुनर्मूल्यांकन और साहसपूर्ण परित्याग, अप्राकृतिक मृत्यु के प्रति प्रतिवाद, वर्तमान की स्वीकृति और अपनी नवनिर्मित सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं के प्रति 'कन्सर्न' अपने समय की कटु वास्तविकता को स्वीकार करने का साहस किसी भी तरह के अंधानुकरण के प्रति विराग, सम्मिलित शक्ति में विश्वास और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तनों के प्रति सतत जागरूकता एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में मनुष्य की प्रतिष्ठा। इन तमाम धारणाओं और लक्षणों में से बहुत से तो हमें कार्यरत

दिखाई पड़ते हैं और बहुत से केवल शब्द भर लग सकते हैं।"[3] परंतु आज भारत की मानसिक दुनिया विशेषतः इन्हीं धारणाओं के उद्वेलन का प्रतिफलन है। यदि विश्व स्तर पर देखा जाए तो भारत बहुत जागरूक और जीवन्त देश है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य की प्रवृत्तियों की सही पहचान के लिए तत्कालीन परिवेश का परिचय पाना नितान्त आवश्यक है। कमलेश्वर की प्रायः समस्त रचनाएँ अपने परिवेश का भी सजीव चित्रण करती हैं। अतः यह जानना आवश्यक है कि कमलेश्वर इस संबंध में कहाँ और कितनी गहराई तक जुड़े रहे और उनके कथा स्त्रोत के स्फुरण बिन्दु कहाँ-कहाँ किन आयामों को छूते हैं।

2.1 **सामाजिक - आर्थिक परिवेश**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, नियम-कानून, परम्परागत रूढियों-मान्यताओं को नई रणनीति के धागों में बाँधा जाने लगा। समाज में चहुँमुखी परिवर्तन की लहर फैल गई। कमलेश्वर ने 'नई कहानी की भूमिका' में स्वतंत्रता के पश्चात के समाज का चित्रण करते हुए लिखा है -"चारों तरफ चाटुकारिता, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, कालाबाजार, विसंगति और भीड़ है, जिसमें उसका अपना अस्तित्व नगण्य हो गया है और उसकी मुद्रा है कि कुछ भी करने से कुछ भी नहीं हो सकता।"[4]

हम भारत की स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यक्ति के पारिवारिक जीवन मूल्यों पर दृष्टिपात करेंगे तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि पारिवारिक जीवन मूल्य पूर्णतः परिवर्तित हो चुके हैं तथा उनमें एक प्रकार की विचित्रता का समावेश परिलक्षित हो रहा है। भारतीय समाज पहले संयुक्त परिवार का समर्थन करने वाला था परन्तु आधुनिक युग में नगरीकरण और आर्थिक दबाव ने संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को विघटित किया। संयुक्त परिवार टूटते-बिखरते नजर आए। आज शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार, स्त्री की आत्मनिर्भरता, गरीबी के कारण आज का आदमी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए मजबूर हो गया है।

पारिवारिक स्तर पर स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद समाज में स्त्रियों के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। जो स्त्रियाँ कई शताब्दियों से पद दलित, शोषित, कुंठित, सामाजिक बन्धनों में बँधी थीं परन्तु भौतिक समृद्धि एवं संवैधानिक अधिकार ने स्त्री की जीवन शैली को परिवर्तित कर दिया। उनमें नवीन चेतना, नवीन भावना का संचार हुआ। उसे समाज में उतना ही अधिकार प्राप्त हुआ, जितना कि पुरूष को। यही कारण है कि आज की नारियाँ अध्यापक, डॉक्टर, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं विदेश सेवा जैसे उच्च पदों पर पदासीन होकर घर, परिवार, समाज एवं देश की मर्यादा की परिरक्षा कर रही हैं।

शिक्षा के माध्यम से नारियाँ अपना सर्वांगीण विकास करने में सफल हैं। आज उनकी विचारधारा में इस प्रकार परिवर्तन दिखाई देता है कि वे

अपने घर परिवार, बाल बच्चों की देखभाल तक अपने आपको सीमित नहीं करना चाहती हैं। बल्कि विविध क्षेत्रों में अपना वर्चस्व प्रतिष्ठित करना चाहती हैं। इस प्रकार स्त्रियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण वर्तमान समय में असमानताएँ, वैवाहिक विच्छेद, तनाव जैसी बातें उनके मानसिकता को प्रभावित कर रही हैं। उनके वैवाहिक संबंधों में उल्लास, खुशी की जगह घुटन, कुंठा, निराशा, जैसी बातों का संचार परिलक्षित हो रहा है। प्रेम विवाह और यौन सम्बन्धों के दृष्टिकोण में भी बदलाव आया।

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज की जाति-वर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। जाति के आधार पर कर्मक्षेत्र चुनने की परम्परा खत्म हो गई। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के नगरीकरण, सामाजिक चेतना के कारण इस प्रथा को आज उतना महत्व प्राप्त नहीं है। परन्तु गाँवों में आज भी यह विकराल एवं भयावह रूप धारण कर बैठी है। डॉ.ए.आर. देसाई ने सच ही कहा है कि -"ग्रामीण क्षेत्र में जाति प्रथा सामाजिक संरचना का मूलाधार है और ग्रामीण जीवन में आज भी जाति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है।"(5)

भारतीय स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे सामाजिक रूढियाँ, परम्पराएँ खत्म होने लगीं। समाज में औद्योगीकरण, शहरीकरण शिक्षा का सर्वांगीण प्रचार एवं प्रसार जैसे क्रांतिकारी बदलावों के कारण जाति व्यवस्था कुछ हद तक चरमराने लगी। आज स्थिति ऐसी है कि समाज का हर तबका जीविकोपार्जन हेतु अपने पैतृक स्थान से सुदूर शहर की ओर पलायन कर रहा है। ऐसी दशा में हर वर्ग के लोगों को भेद भावों से मुक्त होकर एक-दूसरे के साथ खान-पान करना पड़ता है चाहे होटल हो या उसके घर। उपरोक्त परिस्थितियों के चलते जाति-पात, ऊँच-नीच, छुआछूत जैसी समस्याएँ अब कुछ हद तक खत्म हो गई हैं।

वैज्ञानिक विकास और पश्चिमी सम्पर्क ने भारत के सामाजिक जीवन को काफी प्रभावित किया। पाश्चात्य शिक्षा से व्यक्ति भौतिकवादी बन गया। उस संबंध में कृष्णा अग्निहोत्री का कथन है -"मानव के सामने नई समस्याओं ने एक नई सामाजिक स्थिति संवार कर रख दी है। वैज्ञानिक आविष्कारों और वर्षों की गुलामी और उसके प्रभाव ने हमारे सामाजिक रहन-सहन और जीवन के मानव मूल्यों को झकझोर डाला।"(6) इसके फलस्वरूप भारतीय अपनी सामाजिक व्यवस्था और गठन को हेय समझने लगे। व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता और विचारों ने दखल देना शुरू किया। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने एक ओर भारतीय समाज में उदार, प्रजातांत्रिक तथा धर्म-निरपेक्ष मानसिकता को जन्म दिया तो दूसरी ओर व्यक्ति को स्वार्थी बना दिया इसलिए आज व्यक्ति को पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर पर द्वंद्व के बीच जीना पड़ रहा है।

जीवन के हर क्षेत्र में उठने वाली आँधी ने जीवन मूल्यों को भी झकझोर कर रख दिया। मानवीय संबंधों के प्रति असंतोष, उदासीनता, सर्वत्र तनाव ही स्वातंत्र्योत्तर समाज में दिख रहा है। सामाजिक एकता तभी सुदृढ़ एवं कायम रह सकती है जब तक कि पारिवारिक सदस्यों द्वारा नवीन मूल्यों,

नवीन आदर्शों एवं मनःस्थितियों में आस्था विद्यमान हो अन्यथा विघटन का प्रभाव भारत के जन-मानस पर पड़ना अवश्यम्भावी प्रतीत होता है।

कमलेश्वर की अधिकांश रचनाओं में सामाजिक युगबोध स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर कालीन मोहभंग, विभाजन, टूटते हुए जीवन मूल्य, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, असन्तोष, आक्रोश, अनास्था आदि ने सामाजिक परिवेश को बदल दिया। समाज की महत्त्वपूर्ण संस्था 'परिवार' तथा समाज का महत्त्वपूर्ण अंग 'व्यक्ति' इस परिवर्तन का शिकार बन गया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में आए इन बदलावों का यथार्थ चित्रण कमलेश्वर की कहानियों एवं उपन्यासों में हुआ है।

कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'मांस का दरिया' में वेश्याओं की सामाजिक विवशता का अश्लीलता की सीमा तक नग्न और यथार्थ चित्रांकन किया है। लेखक की कलम समाज पर व्यंग्य के बाण छोड़ती है। समाज की निर्ममता व स्वार्थपरता का इस कहानी में चित्रण है। कमलेश्वर ने जुगनू नामक वेश्या की जाँघ पर निकले फोड़े का करूण चित्र दिया है। उस वेश्या के फोड़े का मवाद उसकी नारकीय जिन्दगी है। फोड़ा जुगनू की जाँघ पर नहीं बल्कि समाज की छाती पर है। समाजवाद का नारा लगाने वाले लेबलधारी लोग हरिजनों व निम्नवर्ग का कल्याण तो करना चाहते हैं पर मात्र तिरंगा फहरा कर अपने कर्तव्य से मुक्त हो जाते हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं व निर्माण कार्यों पर करोड़ों रूपये खर्च हो रहे हैं परन्तु नाली में कुलबुलाती नारी अभी भी जाँघों के बल पर कमा रही है। नारी का पेट भरने के लिए दुनियाँ के सबसे पुराने पेशे की रोकथाम के लिए कोई 'पाजिटिव' कदम नहीं उठाया जा रहा है। इसी प्रश्न को खड़ा करने में कमलेश्वर सफल हुए।

इसी प्रकार कमलेश्वर ने अपने 'डाक बंगला' उपन्यास में व्यक्ति के जीवन के अकेलेपन और खोखलेपन को सामाजिक और असामाजिक दोनों सन्दर्भों में अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है। इस उपन्यास की नायिका है 'इरा'। इस उपन्यास में स्त्री के संदर्भ में नये जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न हुआ है। लेखक ने भारतीय सामाजिक परम्परा के स्वरूप पर गहरा व्यंग्य किया है। उपन्यास की पात्र 'इरा' ने नारी को वेश्या और पत्नी बनाने वाले सामाजिक व्यवस्था की ओर व्यंग्य प्रहार करके कहा -" लोग आत्मा की बात करते हैं, पर तन पर एकांतिक अधिकार चाहते हैं। ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की घड़ी के मुताबिक चलता है। ... उनके लिए बुरी से बुरी औरत एक क्षण में पूरी तरह अच्छी बन सकती है अगर वह उन्हें समर्पित हो जाए।"[7]

'इरा' तिलक से इस सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन को उद्घाटित करती हुई कहती है -"तुम्हारे समाज में हर आदमी कुछ करने आता है और हर औरत कुछ भोगने आती है। इसलिए हर क्वारी माँ की कोख से तुम्हारे प्यार भरे पापों ने जबरदस्ती सन्ताने पैदा की है और उन सन्तानों को तुमने पैगम्बर का दर्जा दिया है।"[8] कोई भी औरत अपनी मर्जी से वेश्या नहीं बनती। इसके लिए पुरूष एवं समाज जिम्मेदार है। प्रस्तुत उपन्यास को

सामाजिक व्यवस्थाओं तथा विधानों के प्रति मानवीय संघर्ष की क्राँतिकारी आकांक्षा का अंश कहा जा सकता है।

आर्थिक परिवेश : मानव समाज का जन-जीवन अर्थ की प्रधानता पर आधारित है। आज के जितने भी सामाजिक संबंध है वे सब अर्थपरक हैं। धन एवं सम्पत्ति ही आज के मानव जीवन की धुरी बन गई है, जिनके होने से व्यक्ति की लोकप्रियता, मर्यादा एवं शान-शौकत समाज में बनी रहती है और जिनके पास घनाभाव है उसको आज का समाज उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात सुख, शान्ति, समृध्दिशाली, शक्ति सम्पन्न एवं अखण्ड राष्ट्र की स्थापना के उद्देश्य से देश का नेतृत्व करने वाले नेताओं ने योजनाबद्ध तरीके से आर्थिक नीति को लागू करने का सफल प्रयास किया। आर्थिक स्थिति को अधिकाधिक सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु सरकारी नेताओं द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारम्भ किया गया जिससे कि सामाजिक व्यवस्था सदा कायम रहे। इन पंचवर्षीय योजनाओं का भरपूर फायदा अमीरों ने ही उठाया। कमलेश्वर ने लिखा है -"खेती बाड़ी के लिए खाद या बीजों के वितरण पर इस क्षेत्रीय नेतावर्ग का प्रभाव हावी रहा, निर्माण-योजनाओं में अगर कहीं औषधालय भी खुला, तो इसी वर्ग की नई कोठी में उसे स्थापित किया गया। पेड़ लगाए गए तो बंजर जमीन पर जिस पर इस नेतावर्ग का कब्जा था। बिजली यदि पहुँची तो शहर में सबसे पहले बिजली की फिटिंग और सामान की बिक्री का लाइसेंस इसी वर्ग के आदमी को मिला। कोई सरकारी दफ्तर बना या कोई बड़ी इमारत बननी शुरू हुई तो ईट बनाने का भट्टा खोलने का लाइसेंस इस वर्ग के आदमी या उसके द्वारा पोषित व्यक्ति को मिला... यानी आजादी द्वारा प्राप्त होने वाली छोटी-से-छोटी सुविधाएँ भी इसी क्षेत्रीय नेता-वर्ग के लिए उपलब्ध हुई। देश में चाहे मिट्टी के तेल की कमी रही हो या चीनी या गेहूँ या चावल की, पर इस वर्ग को कभी दिक्कत में नहीं देखा गया ... कहने का मतलब यह है कि आजादी के सारे लाभ वही उठाता है।"[9]

आर्थिक विषमताओं के कारण जीवन-निर्वाह कठिन से कठिनतर होता चला जा रहा है। धनार्जन हेतु व्यक्ति किसी भी हद को पार कर सकता है, एवं गलत हथकंडे अपनाकर समाज में शीघ्र ही धनाढ्यों की श्रेणी में जगह बना लेने में सफल हो जाता है। धन, सम्पत्ति, सत्ता, सुख एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए मानव सदा दौड़ लगाता है जिसके चलते उसका नैतिक पतन होने लगता है और वह भ्रष्टाचार, बेईमानी, रिश्वतखोरी जैसी कालुष्यपूर्ण मनोवृत्तियों का आदी हो जाता है। धनार्जन की होड़ में उसका जीवन संत्रास, कुंठा, घुटन, बिखराव, अविश्वास, वैमनस्य एवं मृत्यु भय जैसी संगीन समस्याओं से घिर जाता है।

देवेश ठाकुर के अनुसार - "जहाँ तक भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है, उसमें व्यक्ति-व्यक्ति के बीच गहरी खाइयाँ विद्यमान है। उद्योगपतियों, व्यवसायियों और स्वतंत्र रूप से अपनी आजीविका अर्जित

करनेवाले लोगों को छोड़ भी दें, तो केवल नौकरी पेशा लोगों के बीच एक हजार से अधिक विभिन्न वेतनमान लागू हैं अर्थात आर्थिक दृष्टि से भारतीय समाज एक डेढ़ हजार से अधिक भागों में बटा हुआ है और जब पैसा ही सामाजिक प्रतिष्ठा की कसौटी बन जाता है, तब ऐसी स्थिति समाज में विघटन और संघर्ष के अतिरिक्त और क्या ला सकती है ?"(10)

देश के आर्थिक दिवालिएपन का इससे बड़ा और क्या उदाहरण हो सकता है कि जिस किसी भी योजना को कार्यान्वित करने हेतु जो पूंजी लगाई जाती है, उसका दो तिहाई भाग ये नेता, दफ्तर के बाबू, इंजीनियर और ठेकेदार आदि ही मिलकर खा जाते हैं। देश की सम्पत्ति का काफी बड़ा भाग चुनाव आदि में ही व्यय हो जाता है। आये दिन साम्प्रदायिक दंगों और हडतालों के कारण राष्ट्रीय संस्थानों और उद्योग केन्द्रों को जला दिया जाता है जिसके कारण उत्पादन गिरता जा रहा है। यहीं नहीं मध्यावधि चुनावों और आतंकवादी गतिविधियों के कारण देश का आर्थिक ढांचा चरमरा गया है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी स्थिति खराब हुई है। विदेशी कर्ज से भारत का प्रत्येक नागरिक दबा है। फलतः अमीर और अमीर हो रहा है और गरीब निरन्तर गरीब।

कमलेश्वर जैसा सजग कथाकार इस आर्थिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। उन्होंने अपनी कृतियों में समाज के आर्थिक पक्षों का चित्रण स्पष्ट रूप से किया और इसके माध्यम से वर्तमान अर्थतंत्र, चुनाव और लोकतंत्र, राजनीतिक स्वार्थतंत्र को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में देश के आर्थिक संकट का यथार्थ चित्रण हुआ है। विशेषकर कमलेश्वर की कहानियों में क्योंकि वे तटस्थ दर्शक मात्र नहीं रहे बल्कि देश के सर्वव्यापी संकट की घड़ी को उन्होंने देखा और भोगा है। आर्थिक युगबोध को व्यक्त करनेवाली विभिन्न समस्याओं को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में उभारा है। इनमें प्रमुख है - बेरोजगारी, महंगाई, आवास की समस्या आदि। शिक्षित युवावर्ग की नौकरी की तलाश एवं उनकी हताशा पर प्रकाश ड़ालने वाली कहानियाँ हैं **-'बेकार आदमी', 'नंगा आदमी', 'आसक्ति', 'नौकरी पेशा', 'शरीफ आदमी'** आदि।

कमलेश्वर की 'आसक्ति' कहानी में एक ऐसे बेरोजगार, मजबूर युवक का चित्रण किया गया है जो अपनी बहन की आर्थिक सहायता पर जी रहा है। 'आसक्ति' में सुजाता और विनोद भाई-बहन है। दोनों शहर में एक ही घर में रहते हैं। सुजाता शहर के कार्यालय में नौकरी करती है और विनोद घर पर बेकार बैठा हुआ है। विनोद को अपनी असहायता एवं मजबूरी का तीव्र एहसास पड़ोसियों के कथनों से होता है। -"लड़की कमाती है और यह आदमी खाता है।"(11) विनोद अपनी बहन सुजाता से अपनी मजबूरी प्रकट करता है -"लेकिन समझ में नहीं आता क्या करूँ ? कहीं कैसी भी नौकरी मुझे मिल जाए, सुजाता, तो मैं कम-से-कम तुम्हें तो काम न करने दूँ। यह बोझ मन पर बहुत भारी पड़ता है। लगता है, जैसी मेरी जिन्दगी बेमान होकर रह गई है ... गली में निकलते भी शरम आती है।" (12) बेकार युवक की निःसहायता यहाँ प्रकट हुई है।

जब से सुजाता ने वीरेन्द्र के साथ रिश्ता जोड़ दिया तब से घर में उसकी उपेक्षा शुरू हो गई। बेचारा विनोद बेकार रहकर समाज और अपनों के दुत्कार एवं तिरस्कार का कड़वा घूँट पीता रहा क्योंकि उसके आगे और कोई चारा नहीं था। यह विनोद जैसे हजारों युवकों की नियति बन गई है।

कमलेश्वर ने कहानी के अलावा आर्थिक परिवेश का चित्रण जिन उपन्यासों में किया है उनमें –**'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'आगामी अतीत'** आदि महत्त्वपूर्ण है। इन रचनाओं में मध्यवर्गीय समाज की परिवर्तित आर्थिक स्थितियों और जीवन मूल्यों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। मध्यवर्ग को भीतर से खोखला करने वाली भीषण आर्थिक समस्याओं की परिणति किस प्रकार होती है, यह कमलेश्वर के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

2.2 धार्मिक–सांस्कृतिक परिवेश

धर्म मानवीय हृदय की उच्चता एवं पवित्रता की भावना का संचार करता है। धार्मिक भावना के माध्यम से मनुष्य में सात्विक प्रवृत्तियाँ विकसित होती है। धर्म की व्याख्या करते हुए डॉ.राधाकृष्णन ने सच ही कहा है –"धर्म वह अनुशासन है जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई व कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है, काम–क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने के लिए साहस प्रदान करता है।"[13] डॉ.विश्वम्भर दयाल गुप्त धर्म की व्याख्या इस प्रकार करते हैं–"धर्म की अवधारणा अलौकिक शक्तियों के प्रति आस्था से सम्बन्धित रही है। धर्म कुछ निश्चित प्रकार के तथ्यों तथा विश्वासों,व्यवहारों, भावनाओं, संवेगों आदि से सम्बन्धित है।"[14]

भारत पाकिस्तान विभाजन के कारण ही देश में साम्प्रदायिक दंगों की शुरूआत हो गई। आजादी के पश्चात काँग्रेस सरकार की नीति भी मुसलमानों को संरक्षण में लेने की रही। हिन्दुओं के मन में इससे विद्वेष की भावना दिन–प्रतिदिन प्रबल होती गई। विभाजन के पश्चात के दंगे, हत्याएँ, आगजनी आदि की घटनाएँ इस साम्प्रदायिकता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। सीमाओं पर आये दिन तनाव होते हैं। मुसलमानों और हिन्दुओं की धार्मिक मदान्धता के कारण देश में घृणा, हिंसा और विद्वेष का वातावरण फैल गया।

देश में मुस्लिम लीग, जमायते–इस्लामी, हिन्दू महासभा, विश्व हिन्दू परिषद, आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ आदि के कार्यकर्ताओं में परस्पर मतभेद होने के कारण आये–दिन साम्प्रादायिक झगड़े, तनाव और हिंसा की वारदातें होती रहती हैं। धार्मिक मदान्धता इतनी बढ़ गई है कि हिन्दू और मुस्लिम परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते रहते हैं। कश्मीर, हैदराबाद, सम्भल, अलीगढ़ आदि मुस्लिम क्षेत्रों में आए दिन ये दंगे होते रहते हैं। देश की करोड़ों रूपयों की सम्पत्ति का विनाश इन झगड़ों में हो जाता है और हजारों लोगों की जाने जाती हैं।

धर्म को धारण करनेवाले अल्पज्ञानी या अन्धविश्वासी धर्मांध व्यक्ति धर्म के नाम पर कट्टरता या कायरतापूर्ण कार्य कर अपनी महानता एवं अपने धर्म

की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने की कोशिश कर रहे हैं। वे समाज के ठेकेदार बनने का रूतबा हासिल करने का यत्न कर रहे हैं। लेकिन यह कटु सत्य है कि जब-जब धर्म के नाम पर कट्टरता, अन्धविश्वास या सामाजिक संकीर्णता का उदय होता है तो धर्म अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असक्षम हो जाता है।

आधुनिकता और नवीनता के समावेश से परिपूर्ण आज का समाज अपने परम्परागत रूपों से एकदम भिन्न है। आज के जीवन मूल्य प्राचीन जीवन मूल्य से एकदम अलग हैं। आज की नैतिकता प्राचीन नैतिकता के बिल्कुल विपरीत है। भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता की वकालत की गई है। देश के संविधान विशेषज्ञ इस बात से परिचित है कि देश के विभिन्न राज्य, भाषा, धर्म तथा जाति के आधार पर विभाजित हैं। क्योंकि भारत में विभिन्न धर्मों में विश्वास रखने वाले लोग हैं अतः भारतीय संविधान में किसी एक धर्म को प्रधानता नहीं दी गई है। इसीलिए हमारे देश को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की संज्ञा दी गई है।

जाति-पाँति के बन्धनों में आई शिथिलता स्वातंत्र्योत्तर कालीन बहुत बड़ी उपलब्धि है। इन सबके बावजूद हम देखते हैं कि हमारा देश उन्माद से अब तक छुटकारा नहीं प्राप्त कर सका है। पाश्चात्य जीवन पद्धति का प्रभाव भी इसका कारण बना। इस संबंध में लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय का कथन है -"आज का भारतीय एक लम्बी दासता के बाद स्वातंत्र्योत्तर काल में जीवन जीने के बावजूद दास मनोवृति का ही शिकार है और पश्चिमी आचार-व्यवहार को अधिक गर्व से देखता है अपनी उपयोगी भारतीय परंपराएँ भी उसे अपमानजनक प्रतीत होती हैं।"(15)

पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दुओं की धर्म में अनास्था होती जा रही है। धार्मिक अनास्था के कारण जहाँ मानवीय गुणों का ह्रास होने लगा है वहीं व्यक्ति में घुटन,कुंठा, वेदना,संत्रास, अकेलेपन, अजनबीपन, व्यथा एवं शून्यता आदि विसंगतियों का आधिक्य दिखाई दे रहा है। धर्म का मानव जीवन में अत्याधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसके द्वारा मानव की सामाजिक क्रियाएँ ही नहीं अपितु आर्थिक, सामाजिक क्रियाएँ भी समयानुसार प्रभावित होती हैं।

भौतिकवादी दृष्टि की प्रधानता ने व्यक्ति के विचार मूल्यों को अर्थ केन्द्रित बना दिया। धर्म निष्ठा समाज में जमे-जमाए आध्यात्मिक मूल्य आधुनिक तर्कजाल में उखड़ते रहे। धर्म की शक्ति क्षीण हो गई। इस तथ्य को युगानुरूप कमलेश्वर की 'ब्रांच लाइन का सफर' कहानी में उभारा गया है। इसमें धर्म की आड़ में होने वाले भ्रष्टाचार, अत्याचार, अन्याय, व्यभिचार आदि को बेपर्दा कर दिया गया है। कड़ी सर्दी में भी मात्र लंगोटी पहने हुए स्वामी जी की पोटली से गांजा, अफीम तथा सोने चाँदी के गहने बरामद होते हैं और लड़की का बयान कि -"इस साधु ने हमें तीन सौ में खरीदकर आठ सौ में बेच दिया है।"(16) यह साबित होता है कि असल में आधुनिक समाज में हमारे धार्मिक मूल्यों की च्युति हो गई है। इस पर लेखक का मन्तव्य विचारणीय है -"इन ब्रम्हचारियों ने इन्हें जिन्दा रखा है और इन ब्रम्हचारियों तथा व्यभिचारियों के कई स्तर तथा दर्जे हैं।"(17)

देश विभाजन से जुड़ी धर्मान्धता का चित्रण 'धूल उड़ जाती है' और कितने पाकिस्तान' कहानियों में देख सकते हैं। इसी प्रकार कमलेश्वर के 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में श्रद्धालु एवं परम भक्त गेंदा कवि व्यभिचार एवं नारियों की बिक्री का धन्धा करता है। पहले लोग धर्मात्मा को ईश्वर का प्रतिरूप मानते थे। उनका न घर होता है, न जाति होती है, न धर्म होता है, न धन-दौलत अर्थात भौतिक सुखों की चिन्ता उनमें न होती थी। वे सदा सबकी भलाई चाहते थे। लेकिन आज धर्मात्मा सुख-लोलुप एवं विषय सुखों में आसक्त दिखाई देता है। साथ ही जातीय भेद-भाव से मन भरा हुआ भी। आज-कल के धर्मात्माओं के पोल खोलने का प्रयास कमलेश्वर के कुछ अन्य उपन्यासों में भी हुआ है जैसे 'लौटे हुए मुसाफिर', 'कितने पाकिस्तान' आदि।

<u>सांस्कृतिक परिवेश</u> : संस्कृति का अर्थ है सभ्यता, संस्कार या मानसिक विकास। रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि - "संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य के स्वभाव में उसी प्रकार प्राप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन, इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग युगान्तर में होता है। जिस प्रकार संस्कृति जन्य गुणों का निर्माण कठिन है उसी प्रकार इसका नष्ट होना भी। संस्कार हजारों सालों में निर्मित होते हैं, अतएव प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है।"[18] इसी प्रकार डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार -"मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है, उसको संस्कृति कहते हैं।"[19]

आजादी के पश्चात् जहाँ भारत में सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन हुए हैं, वहीं सांस्कृतिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। डॉ. देवेश ठाकुर का मत है -" आजादी के बाद की भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी जीवन-दर्शन और संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। एक तरह से स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय जीवन में भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के समन्वयात्मक चित्र उभरे हैं।"[20] संस्कृति ने मानव समाज को अर्थ प्रधान एवं आत्मकेन्द्रित बनाने में कोई भी कोताही नहीं छोड़ी। जिसका परिणाम यह हुआ कि मानव का आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन एवं जीवन दर्शन पूर्णतः परिवर्तित हो गया।

भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय संस्कृति में अंधविश्वास, परम्परागत रूढ़ियाँ, अन्धी आस्था, धार्मिक आडम्बर, जाति का प्राबल्य एवं बौद्धिक चिंतन का अभाव आदि विशेषताएँ दिखाई देती थीं। क्योंकि भारतीय संस्कृति की पहचान जाति प्रथा, रीति-रिवाज, खान-पान, वैवाहिक प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति आदि से जुड़ी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देशवासियों में जहाँ एक ओर सांस्कृतिक महत्व स्वर्णिम भविष्य सुखद जीवन निर्वहण करने का स्वप्न, आशा एवं मन में दृढ़ संकल्प था वहीं दूसरी ओर सत्ता, स्वार्थलोलुपता तथा सिद्धांत विहीनता का अभ्युदय

हुआ। इससे आस्था, सदाचार जीवन मूल्य तथा नैतिकता के मानदण्ड पूर्णतः खण्डित हो गए।

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का अमिट प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप ही सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आया है, अतः अब पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता, गुरू-शिष्य, और प्रेमी-प्रेमिका आदि के संबंधों में परिवर्तन हुआ है। साथ ही साथ हमारे समाज में पाश्चात्य शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार एवं पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के बावजूद भी अनेक समाज सुधारकों का जन्म लेना एक सुखद संयोग था। जिन्होंने नारी के उत्थान के लिए प्रशंसनीय योगदान दिया। उन्होंने बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा का जमकर विरोध किया, तथा इन समस्याओं का समाधान हेतु अनेकों नियम कानून निर्मित कराने में वे पूर्णतः सफल हुए। विधवा-विवाह, प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, स्त्रियों को समान अधिकार एवं उनकी स्वतंत्रता की व्यवस्था पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

आज की नारी प्राचीन नारी की अपेक्षा हर दृष्टि से स्वतंत्र है। उसे पुरूष के समान ही समानता के सभी अधिकार प्राप्त हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में वह पुरूष से पीछे नहीं है। अब उसका वैधव्य समाप्त हो गया है। आज नारी ने कई क्षेत्रों में पुरूष से भी आगे बढ़कर सराहनीय कार्य किए हैं। यह उसने भली-भाँति दर्शाया है कि वह पुरूष से किसी भी कार्य में पीछे नही है।

औद्योगिक विकास, महंगाई, बढ़ती हुई आबादी और जीवन की अन्य समस्याओं का प्रभाव सांस्कृतिक त्योहारों और रीति-रिवाजों पर पड़ने लगा। जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक और धार्मिक त्योहार कृत्रिम और नीरस लगने लगे। इसका असर मानवीय रिश्तों के विघटन पर भी पड़ा है। इतना ही नहीं दूरदर्शन के कारण भी हमारी संस्कृति पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। अहिंसा, प्रेम, त्याग आदि को महत्व देने वाले हम दूरदर्शन के सीरियलों में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित सिनेमाओं में हिंसा, बलात्कार, सेक्स, फैशन शो, धोखाधडी, पारिवारिक विघटन आदि सन्दर्भो को देखकर कृत्रिम मानसिकता के शिकार हो रहे हैं। सही ढंग से सोचने-समझने की बुद्धि मन्द पड़ने से सांस्कृतिक मूल्यों में भी अस्थिरता, अस्पष्टता और भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो गई।

स्वातंत्र्योत्तर बदली परिस्थितियों के कारण हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास की युगानुरूप अभिव्यक्ति कमलेश्वर की 'तलाश', 'चार महानगरों का तापमान', 'दुःखो के रास्ते' आदि कहानियों में देख सकते हैं। साथ-ही-साथ कमलेश्वर के 'डाक बंगला', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' आदि उपन्यासों में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।

2.3 राजनैतिक परिवेश

समाज के निर्माण में तथा मानव के उत्थान-पतन हेतु राजनीति सर्वांगीण एवं चहुँमुखी भूमिका का निर्वहण करती है। युगीन राजनीति मनुष्य जीवन के विविध पहलुओं पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ रही है, जिससे

समाज का राजनीतिक जीवन तथा प्रशासनिक व्यवस्था में युगांतकारी परिवर्तन हम देख रहे हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिलना तथा भारत-पाकिस्तान का विभाजन होना है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की कुत्सित नीतियों के कारण हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य को प्रोत्साहन मिला जिसकी परिणति भारत-पाकिस्तान के विभाजन के रूप में हुई, साथ ही जम्मू और कश्मीर का झगड़ा भी पैदा हो गया। विभाजन की विभीषिका सम्बन्धी नरेन्द्र मोहन का कथन यहाँ सार्थक लगता है -"भारत विभाजन इस उपमहाद्वीप के जीवन की सबसे भयंकर त्रासदी है। इसके अप्रत्यशित आघात ने सदियों से अर्जित संस्कृति, जातीयता, भाषा और प्रकृति तथा मानवीय संबंधों को एक झटके से नष्ट कर डाला। इस त्रासदी की मिसाल इस दुनिया में दूसरी नहीं है। इतना बड़ा नरसंहार सम्भव है पहले भी हुआ किन्तु एक ही भूभाग में निवास करने वाली समान जातीय भावों एवं संस्कृति से बंधी जातियों का ऐसा देशान्तरण अभूतपूर्व है। इस एक घटना ने भारतीय राजनीति और संस्कृति के स्वरूप को जितना प्रभावित किया उतना शायद ही किसी अन्य ने किया हो।"[21]

26 जनवरी, 1950 को नवनिर्मित भारतीय संविधान लागू हुआ और इसी दिन से भारत एक **'सर्वप्रभुता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'** बना। जिसमें विभिन्न भाषा-भाषी, धर्मावलम्बी, धर्म निरपेक्ष तथा समाजवाद को मानने वाले लोग रहते हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है अनेकता में एकता की भावना को अक्षुण्ण बनाये रखने में भारत सरकार को महत्त्वपूर्ण कामयाबी मिली है। हमारे देश के संविधान में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि स्त्री-पुरूष, सम्पन्न एवं विपन्न विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग एक समान है और सबको समान रूप से आदर मिलना चाहिए क्योंकि देश की एकता अखण्डता, समानता एवं सौहार्द्र के लिए यह आवश्यक है। हर नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने राजनीतिक अधिकारों का सदुपयोग करें।

स्वतंत्रता से पूर्व विभिन्न राजनीतिक दलों का लक्ष्य केवल एक ही था। वे देश को परतंत्रता से मुक्ति दिलाने हेतु संघर्षरत थे। परतन्त्रता की बेडियों से मुक्त होने के पश्चात देश में कई राजनीतिक पार्टियाँ जनतंत्रात्मक शासन प्रणाली को कायम रखने के निमित्त अपना वर्चस्व बढ़ाने लगी। राजनीतिक पार्टियों की धारणा अब मात्र देश की बागडोर अपने हाथों में धारण करना तथा सत्ता हासिल करने की पुरजोर कोशिश करना रहा।

नेताओं को अधिकार मिला तो आम जनता से उनकी दूरी भी बढ़ी। आजादी के बाद प्रगति तो अवश्य हुई परन्तु सामान्य जनता का उसमें हिस्सा नहीं के बराबर था। प्रभुत्व सम्पन्न लोगों की खोटी नियत बेनकाब होने लगी। स्वतंत्रता से देश के मानस ने सुखद-सुंदर स्वप्न, आशाएँ और अभिलाषाएँ बाँध रखी थी वे पूरी नहीं हुई। गरीबों के दोहन में, शोषण में कुछ तेजी आ गई। देश के उभरे नेतागण, सरकारी तंत्र चलाने वाले प्रशासक एवं उच्च पदों पर आसीन, खरीददार, ठेकेदार व व्यापारी-वर्ग अपनी नीति या अनीति से

देश के कर्ता-धर्ता बन खड़े हुए। ग्राम्य स्तर पर पटवारी, तहसीलदार, सिपाही, थानेदार, पंच, सरपंच, ग्रामसेवक, जिलाधीश सब मिल-जुलकर छीना झपटी एवं अवसरवादिता पर उतर आये।

भारत-पाकिस्तान विभाजन के पश्चात निर्मम हत्याकांड, आगजनी, निर्वासन व दंगे देखकर वैसे भी भारतीयों के मन में निराशा छाई हुई थी। साथ ही विभाजन के दुष्परिणाम आँखों के आगे क्रूरता एवं नृशंसता का नंगा नाच दिखाने लगे। शील भंग, मारकाट, लूट-पाट, सांप्रादायिक वैमनस्य ने आजादी के तत्पश्चात एक विकृत एवं भौंडा चित्रण प्रस्तुत किया। साथ-ही-साथ देश में विभिन्न समस्याएँ समयानुसार दृष्टिगत होती रही है जैसे कि 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण जिसने केन्द्रीय अर्थव्यवस्था, सेना के मनोबल एवं प्रजातंत्र को धक्का पहुंचाया। अर्न्तराष्ट्रीयता के प्रति जनता का मोह भंग हुआ। इसी प्रकार 1965 में कश्मीर को लेकर भारत-पाकिस्तान में युद्ध हुआ और 1975 में राजनीतिक अव्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई जब पहली बार आपातकाल की घोषणा की गई।

वर्तमान राजनीतिक परिवेश इतना दूषित हो गया है जिसमें नैतिक मूल्यों का पतन के कारण भाई-भतीजावाद, दलबन्दी, आपसी फूट तथा भ्रष्टाचार जैसी बातें सर्वत्र दर्शित हो रही हैं। नेतागण आज सिद्धांत विहीन राजनीति कर रहे हैं। वे अपने आपको कृषक, मजदूर, दीन-दुखियों के परम हितैषी एवं शुभ चिंतक बनने का ढोंग कर रहे हैं। वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में आतंकवाद विश्व की सबसे जटिल एवं चुनौतीपूर्ण समस्या है। आतंकवादी अपनी गतिविधियों को अंतिम रूप देने के लिए कश्मीर समस्या, तालिबान नक्सलवाद, नागा समस्या आदि को अपना मुख्य आधार मानकर आतंक के दहशत में लोगों को जीने हेतु मजबूर कर रहे हैं।

मानचन्द खण्डेला ने आतंकवाद के मूल कारणों को इस प्रकार प्रकट करने की कोशिश की है -"व्यापक दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाए तो आतंकवाद के मूल कारण हैं असहनीय शोषण, असामान्य भेदभाव केवल मैं ही सही हूँ तथा सामने वाला कुछ नहीं, दर्दनाक गरीबी, अज्ञानता, धर्मान्धता की अति तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अधिकांश के राजनैतिक अधिकारों का हनन एवं कुछ की व्यक्तिगत उच्चाकांक्षाएँ।"(22)

इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि देश के राजनीतिक वातावरण का स्वरूप इतना परिवर्तित हो गया है कि हर जगह दल बदलू, अवसरवादिता, स्वार्थीपन विद्यमान है। देश के नेतृत्व के प्रति जनमानस में दिग्भ्रम, निराशा, कुंठा, भय, पीड़ा तथा विद्रोह की भावना घर कर गयी है।

स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षितिज पर हुए व्यापक मूल्य संक्रमण को अभिव्यक्त करने का प्रयास समकालीन रचनाकारों ने विशेषकर कमलेश्वर ने किया है। कमलेस्वर की कई कहानी और उपन्यासों में राजनीति से जुड़े विविध मामलों की अभिव्यक्ति होती है। कमलेश्वर की कहानियों में राजनीति से संबंधित दो कोण देख सकते हैं। उनकी **'लाश', 'लड़ाई', 'रातें', 'अपने अजनबी देश में', 'जार्ज पंचम की नाक',** आदि कहानियाँ प्रत्यक्ष राजनीतिक सन्दर्भों की कहानियाँ है जिनमें शासन तंत्र के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है।

आम आदमी की जिन्दगी पर राजनीतिक प्रभाव उद्घाटित करने वाली कहानियाँ हैं –**'बयान', 'लाश', 'अपने देश के लोग', 'इन्सान और हैवान', 'दालचीनी के जंगल' 'जिन्दा मुर्दे'** आदि।

कमलेश्वर के राजनीतिक उपन्यास हैं –**'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'काली आँधी', 'रेगिस्तान', 'सुबह दोपहर शाम' और 'कितने पाकिस्तान'** आदि। कमलेश्वर के राजनीतिक परिवेश को लेकर चित्रित करने वाले उपन्यासों में **'कितने पाकिस्तान'** प्रमुख उपन्यास है। भारत विभाजन के मूल में आंतरिक कारण तो थे, किन्तु बाह्य रूप से विभाजन के राजनीतिक कारणों से राजनीतिक समस्या भी उत्पन्न हुई और उसके प्रति कमलेश्वर जी का दृष्टिकोण इस प्रकार है। कमलेश्वर ने जिन्ना की महत्वाकांक्षा, कांग्रेस की भूलें, अंग्रेजों की कूटनीति के साथ, औरंगजेब द्वारा बनाए गए पाकिस्तान, इन राजनैतिक कारणों से जुड़ी समस्याओं को पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है।

2.4 साहित्यिक परिवेश

भारत-विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बदली। जिसके परिणाम स्वरूप परंपरागत रूढ़ियों की जड़े हिलने लगी। युग की सारी विशेषताओं को अपने में समेटकर साहित्य की सभी धाराएँ नए रूप में उपस्थित होने लगीं। स्वतंत्रता के पश्चात के साहित्यकारों ने साहित्य के स्वरूप का परिमार्जन और परिष्कार किया है। यही नहीं, साहित्य को जीवन के अधिक निकट यथार्थ की भूमि पर ला दिया है। कमलेश्वर का कथन है कि –"साहित्य जब तक आम आदमी की आत्मा का लिबास नहीं बनता, तब तक उसकी नियति 'निष्क्रिय प्रतिबिम्ब' बने रहने की ही है या ज्यादा से ज्यादा 'बौद्धिक विचार बन जाने की।... श्रममूलक विचार और विचारमूलक श्रम से अभिषेकित सामान्य जन को जो पूरे सम्मान और न्याय के साथ प्रतिष्ठित कर सके और हर सदी में बार-बार झूठी पड़ गई शपथों-संकल्पों को साकार कर सके वही अपने युग का युवा जन-साहित्य होगा।"[23]

हिन्दी कथा-साहित्य पर पाश्चात्य संस्कृति एवं साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। मार्क्स, फ्रायड आदि पाश्चात्य विद्वानों की विचारधाराओं का प्रभाव स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। फ्रायड की यौनवादी प्रवृति से आकर्षित एवं प्रभावित होकर स्त्री-पुरूष के यौन संबंधों का जितना खुला चित्रण स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में हुआ, उतना स्वतंत्रता से पूर्व के साहित्य में नहीं मिलता। कहना न होगा कि कमलेश्वर के कथा-साहित्य में युगीन परिवेश का सटीक चित्रण पाया जाता है। कमलेश्वर के संबंध में विमल मिश्र का कथन है कि – "मैं कमलेश्वर को साहित्य का विद्रोही लेखक मानता हूँ। अंग्रेजी में जिसे कहते है 'Voice of Dissent' तो कमलेश्वर साहित्य में एक 'Voice of Dissent' हैं। कमलेश्वर परंपरा के शत्रु है। यह साहित्य का शुभ लक्षण भी है... कमलेश्वर का लेखन कभी एक आयडिया लेकर नहीं चलता। साहित्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि

कमलेश्वर सचमुच सिर्फ हिन्दी साहित्यकार नहीं, विश्व साहित्यकार हैं। कमलेश्वर के किसी भी लेखन में पुनरावृत्ति नहीं पायी जाती। सूर्य एक होने पर भी हर रोज प्रत्येक सुबह नव-जन्म लेता है। कमलेश्वर एक लेखक होने पर भी हर लेखन में नव-जन्म लेता है।"[24]

विमल मित्र का एक प्रकार से यह अतिशयोक्तिपूर्ण स्टेटमेण्ट है। कमलेश्वर एक संघर्षशील लेखक और मानवीय संवेदना से परिपूर्ण मनस्वी व्यक्ति रहे हैं। उन्होंने कस्बाई, ग्रामीण शहरी और महानगरीय जीवन की आपाधापी को विभिन्न ब्यौरों और प्रसंगों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से रूपायित किया है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नरेन्द्र मोहन	: आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ	पृ.76
2. हेतु भारद्वाज	: परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य	पृ.10
3. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.137
4. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.124
5. विश्वम्भर दयाल गुप्त	: ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य परिप्रेक्ष्य में	पृ.65
6. कृष्णा अग्निहोत्री	: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी	पृ.21
7. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास (डाक बंगला)	पृ.239
8. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास (डाक बंगला)	पृ.239
9. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.118
10. देवेश ठाकुर	: हिन्दी कहानी का विकास	पृ.95-96
11. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ (आसक्ति)	पृ.476
12. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ (आसक्ति)	पृ.476
13. एस.राधाकृष्णन	: धर्म और समाज	पृ.123
14. विश्वम्भर दयाल गुप्त	: ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य परिप्रेक्ष्य में	पृ.68
15. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	: आधुनिक हिन्दी कहानी परिपार्श्व	पृ.19
16. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ (ब्रांच लाइन का सफर)	पृ.153
17. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ (ब्रांच लाइन का सफर)	पृ.153
18. रामधारी सिंह दिनकर	: संस्कृति के चार अध्याय	पृ.35
19. एस.एल	: नागोरी भारतीय संस्कृति	पृ. 2

20. देवेश ठाकुर : हिन्दी कहानी का विकास पृ.95

21. नरेन्द्र मोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ पृ.76

22. मानचन्द खण्डेला : अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पृ.22

23. मधुकर सिंह (संपादक) : कमलेश्वर पृ.284

24. विमल मित्र(सं) मधुकर सिंह : साहित्यकार कमलेश्वर पृ.366

****

3. कमलेश्वर का कहानी संसार : कथ्य संबंधी विवेचन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी को समसामयिकता के अनुकूल नया मोड़ देकर प्रगति और विकास के पथ पर अग्रसर करने वाले कहानीकारों में कमलेश्वर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। कमलेश्वर की कहानियों के संबंध में गंगा प्रसाद विमल का कथन है कि -"कमलेश्वर की कहानियों की विशेषता है कि आप किसी भी कसौटी से, किसी भी आलोचनात्मक परिपाटी से उन्हें आंक सकते हैं। 'कथा सरित्सागर' हो या 'बृहद्कथा' सभी मूल्योंधारों या पैमानों से उन्हें परख सकते हैं। बल्कि, एक कदम आगे जाकर कहा जा सकता है कि 'कथा सरित्सागर' या 'वृहद्कथा' ने कथाओं के या गल्पों के जितने चौखटे निर्मित किए हों, उनके आधारभूत सैद्धांतिक आधार पर भी कमलेश्वर की कथाओं को परख सकते हैं।"[1]

कमलेश्वर की कहानियों का प्रकाशन पहले पहल महज पत्र-पत्रिकाओं में ही होता रहा, पर बाद में प्रायः सभी कहानियों का पुस्तकाकार प्रकाशन भी हुआ। वैसे तो कमलेश्वर के विभिन्न कहानी संग्रहों जैसे **'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'माँस का दरिया', 'जिन्दा मुर्दे', 'इतने अच्छे दिन', 'कस्बे का आदमी', 'कथा-प्रस्थान', 'बयान', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' 'कोहरा',** आदि में उनके द्वारा रचित लगभग 100 से भी अधिक कहानियाँ संकलित हैं, पर सन् 2002 में 'समग्र कहानियाँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें कमलेश्वर की समस्त कहानियाँ कालक्रमानुसार संग्रहित हैं। नयी कहानी

के प्रमुख हस्ताक्षर कमलेश्वर का कहानी संसार अत्यंत व्यापक है। उनके लेखन की अन्यतम उपलब्धि है-कहानी चाहे प्रारंभिक दौर, नई कहानी, समांतर कहानी या अद्यतन दौर की हो, उनकी दृष्टि मानवीय ही रही है। इसी लोकमंगल व मानवीय दृष्टि ने उन्हें युगधर्मी व सफल कहानीकार के रूप में उभारा।

कमलेश्वर की कहानियों के संबंध में धनंजय वर्मा के विचार इस प्रकार हैं -"कमलेश्वर की कहानियाँ विकास और रूपान्तरण दोनों को साथ-साथ समेटते चलने की कोशिशें हैं। कमलेश्वर की सभी कहानियों का जायजा लिया जाए तो यह बात साफ हो सकती है कि उनका कथ्य और उनकी अभिव्यक्ति कभी एक सी नहीं रही। उनमें लगातार परिवर्तन होता चला है। यह निरन्तर गतिशीलता एक ओर जहाँ लेखक की रचनात्मक जीवन्तता का सबूत है वहीं आधुनिकता के संतरण की शर्त भी है।"(2)

'नयी कहानी' के दौर की 'कथ्य' के प्रति सजगता कमलेश्वर के लेखन की भी विशेषता बन पड़ी है। जीवन 'जैसा है वैसा' ही चित्रित करना उनका अभिप्रेय रहा है। उनकी कहानियाँ भावुकता के भीनेपन का स्पर्श कराती है। उनका लेखन धर्म 'यथार्थ चित्रण' ही रहा है। दुष्यंत कुमार ने कहा है कि - "कमलेश्वर की हर कहानी जीवन के संदर्भों से जुड़ी हुई है। उसकी शायद ही कोई ऐसी कहानी हो जिसके सूत्र जिन्दगी में न हों क्योंकि वह बहुत खूबी से अन्तर्विरोधों को पकड़ता है। उसकी लगभग हर कहानी का एक वास्तविक स्थल है जहाँ से वह उसे उठाता है और अपने कथ्य की कल्पना अपेक्षाओं के साथ अभिव्यक्त कर देता है।"(3)

3.1 कमलेश्वर की कहानियाँ : गाँव कस्बे का जीवन

कहानीकार कमलेश्वर को कस्बे की जिन्दगी का सबसे मुखर कहानीकार कहा जा सकता है। यद्यपि उन्होंने गाँव, नगर, महानगर सभी को अपनी कहानियों का विषय बनाया है पर क्योंकि उनकी आत्मा में कस्बे का आदमी बसा था, अतः उनकी अधिकांश कहानियाँ कस्बे में रहने वाले मध्यवर्गीय व्यक्तियों और उनकी समस्याओं से ही सम्बद्ध हैं। उत्तर प्रदेश के एक छोटे से कस्बे 'मैनपुरी' में जन्मे कमलेश्वर ने जो भी और जितना भी आयुष्य पाया उसके एक-एक लम्हें को उसकी पूरी सार्थकता में जिया। कमलेश्वर की कहानियों में कस्बाई जीवन के उनके अपने अनुभव तथा अछूते जीवन संदर्भ उभरे हैं।

मैनपुरी के जीवन का उनके लेखन में क्या और कितना महत्त्व है इसके बारे में स्वयं उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है -"हाँ ! मैनपुरी का जीवन था, निस्पंद और ठहरा हुआ जिसने मुझे प्रेरित किया। मैं छुट्टियों में इलाहाबाद से जब घर आता तो प्रायः यूँ ही घूमा करता। उस शहर की जीवन-शैली में, भावनाओं में या सोचने विचारने के ढर्रे में कोई परिवर्तन या विकास नहीं होता। लोग अपनी पीड़ाओं से सर्वथा अनभिज्ञ जान पड़ते। यहाँ तक कि एक बाग, जहाँ मैं अक्सर जाया करता, वहाँ पौधों का बढ़ना भी रूक गया था। उन्हें पानी देने वाला या उनकी देखभाल करने वाला कोई

नहीं था। वही जड़ता से भरा और रूका हुआ जीवन और उसका वातावरण था जिसने मुझे लिखने की तरफ उन्मुख किया।"(4)

कमलेश्वर की सम्पूर्ण चेतना कस्बे से सम्बद्ध है। कस्बे के जीवन की त्रासदी, विसंगतियाँ, मानसिक पीड़ा, मनोवृत्ति, संस्कारबद्धता, भोलापन, विद्रूपता, भाईचारा, सादगी, अपनापन आदि भावों को कमलेश्वर ने संवेदनात्मक धरातल से जोड़कर अपनी कहानियों में बखूबी व्यक्त किया है। प्रस्तुत अध्याय में कमलेश्वर के मध्यवर्गीय कस्बाई मानसिकता की कहानियों का विश्लेषण किया जा रहा है। कमलेश्वर के कहानी संग्रह -'राजा निरबंसिया' एवं 'कस्बे का आदमी' का कथ्य कस्बे जीवन और पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है। कहानियों में मैनपुरी के जीवन की प्राण प्रतिष्ठा हुई है। कमलेश्वर का मानना रहा है कि -"आज की कहानियाँ कल्पना के पंखों पर नहीं उड़ती बल्कि दुनिया की व्यावहारिक और वास्तविक जिन्दगी से उनका सीधा सम्बन्ध है।"(5)

<u>कस्बे का आदमी</u> : 'कस्बे का आदमी' कस्बे के एक आदमी के छोटे-मोटे अन्तर्विरोधों के साथ उसकी सहृदयता और संस्कार को अंकित करने वाली कहानी है। इस कहानी में स्वतंत्रता के बाद के नगरीकरण से कस्बे में हुए मूल्य परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है।

'कस्बे का आदमी' कहानी का मुख्य पात्र छोटे महाराज है। वह निहायत सीधे सरल स्वभाव का व्यक्ति है। उसमें वहीं सादगी और विश्वास है जो कस्बे की अपनी विशेषता है। पेट के लिए उन्होंने परम्परागत पेशे को छोड़ दिया। उन्होंने जीवन यापन करने के लिए कई पापड़ बेले,सब काम किए लेकिन सारी कोशिशें विफल रहीं। अन्त में लोगों को पानी पिलाने का परोपकारपूर्ण काम करने से उन्हें महाराज की पदवी मिल गई। वे अब बूढ़े बन गए हैं। बुढ़ापे में कोई काम न कर सकने के कारण उन्होंने एक तोते को पाला। उनकी मिट्ठू तोते के प्रति ममता भी अनोखी है। जीवन में ममता और माया इन्होंने एक तोते से लगाई है। लेकिन जब उसकी (तोते की) देखभाल भार-सा लगा तो उन्होंने उसे अपने पड़ोसी शिवराज को दिया। तीन-चार दिन बाद तोते की कातर आवाज से वे सिहर उठे। उनकी हालत खराब थी फिर भी वे पता लगाने गए। शिवराज के बेटे ने राजा बनने के लिए तोते की पूँछ पकड़ कर दो-तीन पंख नुच लिए। वे अत्यन्त दुखी होकर तोते को वापस ले आये। वे उसे अपने सिरहाने रखकर मृत्यु की प्रतिक्षा करते रहे। उन्होंने सोचा होगा कि जब तक वे जिन्दा रहेंगे तब तक वह भी सुरक्षित रहेगा। इस प्रकार की आस्था, धर्म के प्रति निष्ठा का प्रतीक है।

शहरी सभ्यता के प्रभाव से कस्बे के लोगों में आए परिवर्तन की ओर कहानीकार ने इशारा किया है। शहरी सभ्यता ने लोगों को स्वार्थी, अमानवीय एवं संवेदन शून्य बना दिया है। शिवराज का तोते के प्रति जो व्यवहार था वह तो इसका प्रमाण है। इस सम्बन्ध में डॉ. अरूणा गुप्त की मान्यता है -"भारतीय संस्कृति के यह आत्मीय मूल्य और स्नेह सम्बन्ध ही व्यक्ति के प्रति आस्था बनाए हुए हैं। जीवन के प्रत्येक क्षण में अस्थिरता का सामना करने वाले 'छोटे महाराज' इसी कारण शिवराज के प्रति आस्थावान है और

अपने प्राणप्रिय तोते की सुरक्षा का भार सौंप देते हैं। ...शिवराज की स्वार्थता उसकी आस्था भंग कर देती है और वह इस आघात से संत्रस्त अपने प्राण ही त्याग देते हैं।"[6] अर्थात् जीवन मूल्यों के इसी संक्रमण का चित्रण करना ही कमलेश्वर का उद्देश्य रहा होगा। इस प्रकार आदर्शों और मूल्य विघटन दोनों ही स्थितियों का उद्‌घाटन कर कहानीकार ने कस्बाई जीवन के समग्र परिवेश को उभारा है।

गर्मियों के दिन : इस कहानी में एक कस्बे के शहरी वातावरण में परिवर्तित होने, साथ ही परम्परागत काम धन्धों पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ने की कहानी का एक वैद्य की विवशता के माध्यम से वर्णन किया गया है।

कस्बे के वैद्यजी, दुकानों पर लगा साइनबोर्ड अब व्यवसाय में उन्नति का साधन मानकर एक गर्मी के दिन अपनी वैद्यशाला में भी 'साइन बोर्ड' लगाने की तैयारी कर रहे थे। अब कस्बे में 'साइन बोर्ड' लगाने का मतलब है 'औकात बढ़ाना'। कस्बे के नए शिक्षित डाक्टरों को वे पसन्द नहीं करते हैं। वे सदा एम.बी.बी.एस डाक्टरों की निंदा करते हुए कहते हैं -"अंग्रेजी आले लगाकर मरीज की आधी जान पहले सुखा ड़ालते हैं। आयुर्वेदी नब्ज देखना तो दूर, चेहरा देख के रोग बता दे.. डाक्टरी तो तमाशा बन गई है।"[7] परम्परागत मूल्य स्थितियों में आस्था रखने वाले वैद्यजी नई मूल्य स्थितियों में जरा भी विश्वास नहीं रखते। उनके अनुसार वैद्य का बेटा ही वैद्य होता है। वैद्यजी की असहमति का मुख्य कारण यह है कि नए शिक्षित डाक्टरों के आगमन से वे अपनी रोजी खो बैठे हैं। परम्परागत पेशे के नष्ट होने से उसका जीवन दूभर बन गया है।

वैद्यजी आर्थिक अभाव से पीड़ित है लेकिन औरों के सामने खुलकर कहने में हिचकते हैं। आजकल मरीज अंग्रेजी डाक्टरों के पास ही जाते हैं। वैद्यशाला में कभी-कभी एक दो मरीज आ जाते तो वे खुश दिखते, फिर भी थोड़ा रोब जरूर दिखाते जैसे फुरसत ही नहीं मिलती हो। कभी ढोंग करते हैं -"एक मरीज आने को कह गया था उसी के इन्तजार में बैठे हैं।"[8] दोपहर को एक खलासी डॉक्टरी सर्टिफिकेट के लिए आ गया। उन्होंने थोड़ा रोब-दाब दिखाया तो वह चला गया। पास-पड़ोस के दुकानदार भोजन करने गए और खाना खाकर वापस भी आ गए। तब भी वैद्यजी उस खलासी के वापस आ जाने की प्रतीक्षा में बैठे थे कि शायद उससे चार रूपये मिलें।

इस कहानी में कस्बे के लोगों की आर्थिक तंगी व दिन-ब-दिन खस्ता होती स्थिति का चित्रण हुआ है। कस्बे का वैद्य आर्थिक परेशानियों से त्रस्त है। उनकी विवशता व मजबूरी कहानी को सशक्त बनाती है। कथानक सामाजिक जीवन के पक्ष को उजागर करने वाला है। विशेषकर परम्परागत चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद और इस पद्धति द्वारा जीविका अर्जन करने वालों के प्रति अस्वीकार और अपहचान का जो वातावरण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इस देश में बन गया है, कथानक के नाम पर उसी सब को पूर्णतया यथार्थवादी दृष्टि से स्वरूपाकार दिया गया है। कहानी में जो कुछ भी कहा या चितारा गया है, वह सब हम अपने आस-पास के जीवन, समाज और

वातावरण में कहीं भी घटित होता हुआ देख सकते हैं। यही एक प्रमुख बात विशेषता के रूप में रेखांकित की जा सकती है।

मुरदों की दुनिया : 'मुरदों की दुनिया' एक नये माहौल में आदमी की करूणा और घृणा को रूपायित करने वाली एक सशक्त कहानी है। डॉ. रामदरश मिश्र का कहना है कि -"माहौल या परिवेश से कमलेश्वर जुड़े हुए हैं। वे एक ओर तो व्यक्ति की संवेदना को परिवेश में मूर्त करते हैं, दूसरी ओर परिवेश की संवेदना को व्यक्ति में केन्द्रित करते हैं।"(9) 'मुरदों की दुनिया' कहानी में केन्द्रीय पात्र निसार है। वह अपने बकरे नूर को बेहद प्यार करता है। एटा कुरावली के अड्डे पर बस से उतरी ठेकेदार की बेटी साबित्तरी को देखकर वह मोहित हो जाता है। एक मुसलमान का साबित्तरी के प्रति आकर्षण गोरख को नहीं सुहाता। निसार प्राइवेट बस का ड्राइवर था लेकिन सरकारी बसों के आगमन से निसार की रोजी खत्म हो जाती है और वह अपना मोटा ताजा बकरा ठेकेदार की विधवा लड़की साबित्तरी के यहाँ रखकर कोई नौकरी खोजने चला जाता है। वह सात दिन बाद लौटता है तो पाता है कि साबित्तरी उसके बकरे को बेचकर गोरख के साथ भाग गई। और बकरे को कसाई ने काट दिया। उसे लगता है कि दुनिया आदमियों की नहीं, मुरदों की है। इन मुर्दों की दुनिया से सदा के लिए वह मुक्त होना चाहता है। इसलिए उसने बस्ती छोड़ने का निश्चय किया। "इन मुरदों की दुनिया में वह नहीं रहेगा...उसे जिन्दा रहने के लिए जोश-खरोश और भीड़-भब्बड़ चाहिए।"(10) शहरीकरण से कस्बा मुर्दों की दुनिया बन गई है। इस कारण निसार जिन्दा रहने के लिए बस्ती छोड़कर चला जाता है। वह पड़ोस के गाँव में जाकर ताजिए बनायेगा क्योंकि जीवित 'मुरदों की दुनिया' उसे रास नहीं आती। वह मुरदों की दुनिया में लौट जायेगा क्योंकि वहाँ कम से कम रिश्तों को, मानवीय सम्बन्धों को कत्ल तो नहीं किया जाता।

निसार का भ्रमभंग और मोहभंग कहानी का मुख्य अंश है। कमलेश्वर ने इस कहानी में इंसान में पनप रहे बेगानेपन व स्वार्थ को व्यक्त किया है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने आज की दुनिया से मानवीयता, स्नेह, कोमलता, विश्वास के खो जाने एवं जीवन-मूल्यों के तहस-नहस होने की सच्चाई को पाठकों के सामने रखा है। कमलेश्वर के दोस्त दुष्यंत कुमार ने इस कहानी लेखन के सम्बन्ध में कहा है -"वह अपने छोटे-से कस्बे मैनपुरी से मानसिक रूप से इतना जुड़ा हुआ था। इलाहाबाद में रहते हुए भी वह वहीं की बातें सोचा करता था। हर महीने भागकर मैनपुरी जाया करता था और तीन-चार बोरे प्लॉट लाया करता था। उसी समय उसने 'मुर्दे की दुनिया' कहानी लिखी थी। वह कहानी कमलेश्वर ही लिख सकता था, क्योंकि वह अपने कथा क्षेत्र से संवेदन और समझदारी के स्तर पर जुड़ा था।"(11)

इंसान और हैवान : इस कहानी में पुलिस की नीचता और एक बेकार युवक की यातना और इंसानियत का चित्र है। कमलेश्वर ने पुलिस वर्ग के

अत्याचारों के शिकार आम-आदमी की दुःस्थिति को उद्घाटित करते हुए कस्बे और महानगर के लोगों की सोच के अन्तर को भी व्यक्त किया है।

कथावाचक अन्धेरी रात में नदी की ओर चल रहा था तो ड्यूटी पर खड़े पुलिस कॉन्सटेबिल ने उसे रोक लिया, क्योंकि उन्होंने सोचा कि वह आत्महत्या करने जा रहा है। कथावाचक को शान्त देखकर कॉन्सटेबिल ने उसे छोड़ दिया। वह वहाँ टहलने आया था। कस्बे से आए उस व्यक्ति पर पुलिस कॉन्स्टेबिल के रौब का कोई असर न पड़ा। उसकी कमीज पर खून का दाग देखकर पुलिस को सन्देह हुआ तो उसने बताया -"रास्ते में आते वक्त एक बच्चा दौड़ता गाड़ी से टकराकर गिर पड़ा था, उसे उठाने में यह लग गया।"[12] यह तो कस्बे के लोगों के भोलेपन का सूचक है। उनकी ड्यूटी खत्म होने वाली थी। उन्होंने उसे घर जाने के लिए पैसा देना चाहा और जेब से पर्स निकाला। इतने में उन्हें ले जाने के लिए पुलिस की गाड़ी आ गयी। जल्दबाजी में उन्होंने उससे पर्स से अठन्नी लेने को कहा और फिर मिलने की बात कहकर चले गए।

उनके जाने के बाद ही उसने नीचे पड़े सौ रूपये का नोट देखा। कथानक ने सोचा कि वे जरूर पैसे की तलाशी में आ जाएँगे। इसलिए उसने रूपया लेकर वहाँ उनका इन्तजार किया। कुछ देर बाद पुलिसवालों की गाड़ी वापस आ गई। उसने देने के लिए नोट जेब से निकालकर हाथ में रख लिया। लेकिन नोट लेने के बदले उसके कानों में कॉन्सटेबिल की आवाज गूँज उठी "यही है बदमाश ! पकड़ लो।"[13] उन्होंने उसे सफाई देने का अवसर भी नहीं दिया। पुलिसवाले की साँस में जीत का गर्व था। कथावाचक को अपनी इन्सानियत के बदले हैवानियत ही मिली।

इस प्रकार पुलिसवालों की बेदर्दी, बेरहमी, क्रूरता का चित्रण इस कहानी में हुआ है। कमलेश्वर ने कस्बे के लोगों की इन्सानियत और महानगर के लोगों की (पुलिस वर्ग के) हैवानियत का खुलकर वर्णन किया है। साथ ही साथ निरपराध लोगों को अपराधी करने की पुलिस व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी किया गया है। इसमें कस्बे के लोगों के भोलेपन और शहरी लोगों की कपटता का उल्लेख भी हुआ है।

गाय की चोरी : कमलेश्वर की यह कहानी कस्बाई मनोवृत्ति को चित्रित करती है। यह एक साधारण सी कहानी है। इसमे कस्बे के पुराने जमींदार प्यारेलाल जो अब मुंशी के नाम से बुलाये जाते हैं व लोगों पर अपनी धाक जमाना चाहते हैं। आत्म प्रदर्शन की वृत्ति कुछ लोगों में अधिक होती है। मुंशी जी उनमें से एक हैं। पड़ोसन बुढ़िया की गाय चोरी होने पर वे लोगों को विश्वास दिलाते हैं कि रात उन्होंने खुटर-पुटर सुनी थी। परन्तु जब पुलिस बयान लेने आती है तो उनके होश आवास उड़ जाते हैं। कमलेश्वर ने कहानी के माध्यम से ऐसे कस्बाई व्यक्ति को उठाया है जो स्वयं जिन्दगी में कुछ अधिक नहीं कर सकता। वह शेखी ही मार सकता है। परन्तु अपना महत्त्व सिद्ध करने के लिए वह अंततः लाठियाँ खाकर भी बुढ़िया की चुराई गाय ले आता है। ताकि अपनी खोई प्रतिष्ठा वापस पा सके।

नौकरीपेशा : यह कहानी भी कस्बे के दो परिवारवालों की स्पर्धा व होड़ का चित्रण करती है। बाबू राधेलाल जो अधिक पढ़े लिखे नहीं अपने को लाला की जगह 'बाबू' या नौकरीपेशा व्यक्ति कहलाना पसंद करते हैं। उनके पास स्थिर नौकरी नहीं है। इसलिए किसी भी दफ्तर में कहीं भी किसी की एवज में कहीं 15 दिन तो कहीं 25। इस प्रकार फिट हो जाते हैं।

रामभरोसे राधेलाल का सम्बन्धी है जो स्थिर नौकरी करता है। कमलेश्वर ने कहानी के माध्यम से कुछ मूल्यों में परिवर्तन न आने का चित्रण किया है। कस्बे के लोगों में चाहे शहरी चालाकी व होशियारी आ जाये पर भीतर से वे अब भी भाईबंद के रिश्ते से जुड़े हैं। रामभरोसे में अब भी गाँव का भाईचारा व अपने गाँव का आदमी है -यह भाव ऊपर उठता है।

कहानी कस्बे की होड़ के साथ कस्बे के लोगों की ममता, एकता को व्यंजित करती है। कहानी का अन्त आदर्श को छूता है जब रामभरोसे मरते-मरते अपनी जगह राधेलाल को रखने के लिए कह जाते हैं। कहना न होगा कि कमलेश्वर की कहानियों में कस्बे से जुड़ा साधारण व निम्न मध्यवर्ग का चित्रण है। कस्बे की स्थानीय रंगत, आचार-विचार, टैक्चर मुखरित हुआ है। कमलेश्वर ने अंचल विशेष को न पकड़ कस्बे के जीवन की विसंगतियों को यथार्थ के साथ मानवीयता का संस्पर्श देकर प्रस्तुत किया है।

3.2 कमलेश्वर की कहानियाँ : प्रमुख पुरूष पात्र

पुराने मूल्यों के खण्डहरों से यथार्थ का नया स्वर मुखरित करते समय कहानीकारों ने ऐसे पात्रो से पाठकों का साक्षात्कार कराया है जो समस्याग्रस्त जीवन से पलायन किये बिना उन समस्याओं के बीच जीवन के अर्थ की खोज करते हैं। आज कहानीकार मनोरंजन हेतु अथवा लोकहिताय कहानियाँ नहीं लिखता, अपितु समाज का यथार्थ चित्रण करता है। अपने अनुभवों को वह कहानी के माध्यम से पाठक तक पहुँचाता है और सत्यान्वेषण, मूल्य निर्माण और दिशा-निर्देश का कार्य करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति कहानीकार के सजीव, स्वाभाविक और यथार्थ पात्र ही कर सकते हैं। "कहानी की सर्वाधिक विशेषता यही होती है कि वे जीवन के स्थानापन्न बनकर आते हैं और मानवीय संवेदनशीलता को यथार्थ अभिव्यक्ति देते हैं।"(14)

कमलेश्वर ने निम्न, निम्नमध्य तथा मध्य वर्ग को ही अपनी कहानियों का पात्र बनाया है। पात्रों का चयन करते समय कहानीकार ने ध्यान रखा है कि व्यवहार जगत के जीवन्त व्यक्ति हो, न कि कठपुतले मात्र या फिर निर्जीव और चेतना-विहीन। कमलेश्वर मानते हैं कि उन्हें पात्रों ने कभी कहानियाँ नहीं दी। बल्कि उनकी स्थितियों ने ही कहानियाँ दी हैं। उनकी कोई कहानी यदि पात्र केन्द्रित या पात्र प्रधान हो गयी है तो इसे वे अपनी लेखन कला की दुर्बलता स्वीकार करते हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यही लगाया जा सकता है कि कहानीकार कमलेश्वर अपनी कहानियों के पात्रों को उनके आस-पास की स्थितियों और परिवेश में रखकर ही देखने एवं चितारने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार उनकी पात्र योजना में चरित्र नायक जैसा कुछ नहीं होता। न ही व्यक्ति शब्द नैतिकता और समाजमूलक आरोपित नैतिकता जैसी किसी बात का

ध्यान ही उनकी कहानियों में विशेष रूप से रखा अथवा रेखांकित किया गया है। वे तो इन दोनों की मूल्यगत चेतना में फँसे पात्रों की मानसिकता को विशुद्ध मानवीय दृष्टि से उभारकर सामने लाते रहे।

जीवन संघर्ष के सही रूप को दर्शाने के लिए रचनाकार को सत-असत्, अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, हानिकर-प्रीतिकर चरित्रों के विरोध एवं अन्तर्विरोधों को दर्शाना जरूरी होता है। कमलेश्वर ने अपनी विभिन्न कहानियों में पुरूष पात्रों के संघर्ष और प्रतिबद्ध भाव को कलात्मक रूप से दर्शाया है। कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' का प्रमुख पुरूष 'जगपती' एकमात्र ऐसा पात्र है, जिसे हम गतिशील चरित्र वाला कह सकते हैं। वह इसलिए कि उसके व्यक्तित्व में सहज मानवीय दुर्बलताएँ-सबलताएँ बड़े अच्छे एवम् यथार्थ ढंग से उभारी गई है। मरकर या आत्महत्या करके जहाँ वह दुर्बलता का परिचय देता है, वही उसकी मृत्यु पूर्व की घोषणाएँ आन्तरिक स्तर पर उसे सबल एवं उदात्त मानवीयता का धरातल प्रदान कर देती है।

यह जानते हुए भी कि चन्दा ने जिस बच्चे को जन्म दिया है, वह उसके कर्जदाता अर्थात बच्चन सिंह कम्पाउण्डर के नियोग का परिणाम है, दूसरे चन्दा किसी अन्य पुरूष के साथ रहना चाहती है; फिर भी जगपती द्वारा बच्चे को लेकर उससे लौट आने तथा बच्चे के हाथ से अग्नि दिलाने का आग्रह उसके चरित्र को गतिशील एवं प्रेरणादायक बना देती है।

इसी प्रकार 'खाई हुई दिशाएँ' कहानी का नायक 'चन्दर' अपनी दिशाहीनता में भी एक पूरे युग की मानसिकता को, स्थितियों की विडम्बनाओं को संत्रास और जन-मानस में अपरिचित एवं अजनबीपन की समग्र चेतना को यहाँ तक कि अपने अस्तित्व से अपरिचित होते जाने की प्रक्रिया को उजागर कर जाता है। व्यक्ति के स्तर पर निरन्तर आ रही सम्बन्धहीनता का भी परिचायक है। कमलेश्वर ने 'चन्दर' के माध्यम से इस तथ्य को उजागर करने का प्रयत्न किया है कि गाँव-कस्बों से नौकरी की तलाश में नगर-महानगर में आने वाला व्यक्ति पूर्णतः शहरी न बन पाता है क्योंकि उसके मन में खोई हुई दिशाओं की यादें बनी रहती हैं। इतने विशाल महानगर में वह अकेला रह जाता है उसे लगता है -"यह राजधानी है, जहाँ सब अपना है, अपने देश का है। लेकिन सच तो यह है पर कुछ भी अपना नहीं है, अपने देश का नहीं है।"[15] इस प्रकार कहानी में 'अकेलेपन' की प्रखर अनुभूति अभिव्यक्त है।

वैद्य कविराज पं. नित्यानंद तिवारी 'गर्मियों के दिन' कहानी का प्रमुख प्रधान पुरूष पात्र या नायक है। डॉक्टरी प्रगति ने उनको अपने आप में कुण्ठित करके रख दिया है। यही कारण है कि वे जो नहीं है या नहीं हो सकते, अपने आप को सभी के सामने वैसा ही प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। वे सदा एम.बी.बी.एस डॉक्टरों की निन्दा करते रहते हैं। "अंग्रेजी वाले लगाकर मरीज की आधीजान पहले सुखा ड़ालते हैं। आयुर्वेदी नब्ज देखना तो दूर, चेहरा देख के रोग बता दे ... डॉक्टरी तो तमाशा बन गई है।"[16]

उनका साइनबोर्ड लिखना-लिखवाना, ठाकुर द्वारा भेजी गई कनस्तरी रखते समय 'हकीम वैद्यों' की दुकाने दिन भर नहीं खुली रहती, कहना और

फिर रखने को तैयार भी हो जाना, रेलवे खलासी से बीमारी का प्रमाण पत्र बनाने के चार रूपये मांगना और फिर दिनभर भूखे पेट पसीना बहाते हुए उसके वापिस लौट आने की प्रतीक्षा करना जैसी सभी बातें अपनी वास्तविकता से अपरिचय, अपहचान और कुण्ठा की ही परिचायक हैं। इसी सब में कहानी के इस मुख्य पुरूष पात्र के चरित्र की सफलता सार्थकता भी रेखांकित की जा सकती है।

कमलेश्वर की 'नीली झील' कहानी में महेसा या महेश पाण्डे प्रमुख पुरूष पात्र है। वह नायक है, समूचे घटनाक्रम के निर्माण और विकास का, चरम परिणति का भी केन्द्र एवं फलभोक्ता है। आरम्भ से ही उसे रोमानी चरित्र एवं स्वभाव वाला चितारा गया है। वह प्रकृति के सौन्दर्य और नारी के सौन्दर्य दोनों का स्वभाव से ही पारखी और प्रशंसक है ,उसकी इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि जो वह एक मेम को देखकर कहता है -"कितनी खूबसूरत है मेम ! इसकी आँखे नीली झील की तरह काली है।"[17] और पक्की सड़क बनाने की मजदूरी करते हुए वह हर उस सैलानी औरत को छूना और उसके किसी काम आना चाहता है जो खूबसूरत है।

वह नीली झील और वहाँ विहार करने वाले हर पक्षी के गुण, स्वभाव और स्वर से परिचित होता है। उन सबसे हार्दिक स्तर पर प्यार भी करता है। यही उसकी रोमानियत भी है, जो उसे अपने से बड़ी आयु वाली पण्डिताइन पारवती का प्रेमी और बाद में गांठदार चोटी वाला पाण्डे बना देता है। उसकी रोमानियत न तो प्रेमिका पारवती का किसी भी कारणवश छीजना सहन कर पाती है और न नीली झील, वहाँ विहार करने वाले पक्षियों के माध्यम से प्रकृति की सुन्दरता का छीजना। अपनी पार्वती को तो वह छीजन से नहीं बचा पाता; पर प्रकृति का वातावरण बचाए रखने के लिए वह झील ही खरीद लेता है। इसी दृष्टि से कहानी के इस सामान्य से लगने वाले केन्द्रीय पक्ष की चरित्रगत रेखाओं को सार्थकता के साथ अब देखा और समझा-परखा जा सकता है।

गाँधीयुग के ध्येयनिष्ठ हिन्दी प्रचारकों की जो दुर्गति आज की प्रस्थापित व्यवस्था ने की हैं उसकी सही अभिव्यक्ति कमलेश्वर ने 'नागमणि' कहानी में 'विश्वनाथ' के माध्यम से की है। विश्वनाथ का चरित्र पहले-पहल आदर्शवादी दिखाई देता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए घर-परिवार से दूर दक्षिण भारत में मारे-मारे फिरना, अपने घर-द्वार के अस्तित्व तक को भूलकर एक निष्ठा के प्रति समर्पित हो जाना आदर्शवादिता ही प्रतीत होती है। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को जिस प्रकार केवल आदर्श न कहकर एक जीवन्त यथार्थ कहा जा सकता है, उसी प्रकार विश्वनाथ जैसे हिन्दी के प्रति समर्पित लोग भी एक आदर्श यथार्थ हैं। उसका मोहभंग होना हिन्दी-उर्दू के स्थान पर अंग्रेजी को अपना लेना भी एक त्रासद यथार्थ ही है : रतनलाल की पत्नी सुशीला के सम्पर्क में आकर विश्वनाथ का रोमांचित एवं विषय विमुग्ध होना भी चारित्रिक यथार्थ है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखक ने नायक विश्वनाथ के चरित्रांकन द्वारा उन हजारों-लाखों के मोहभंग की कहानी कही है जो आज

हिन्दी को त्याग कर अंग्रेजी की दिशा में अग्रसर हो गये या हो रहे हैं। इसी दृष्टि से इस मुख्य पात्र के चरित्र की सफलता रेखांकित की जानी चाहिए।

आधुनिक मनुष्य की नियति है जीवन के विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष करना और आगे बढ़ने के लिए स्वयं रास्ता भी तैयार करना। स्वतंत्रता के पश्चात संक्रमीण कालीन स्थितियों के फलस्वरूप भारत की मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों के बीच जकड़ती जा रही थी। एक ओर परिस्थितियाँ उसे आहत एवं मजबूर बना रही थी तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित थी। इस संबंध में माधुरी शाह का कथन है -"चूँकि पूरा देश लूट रहा है, इसलिए आज का मनुष्य सही जगह की तलाश में परेशान है। वह अपनी धुरी को नहीं खोज पा रहा है, ऐसी धुरी जो उसकी प्रतिभा, कार्यकुशलता और सृजन शक्ति को अंगीकार कर सके।"[18]

'बेकार आदमी' कहानी का 'प्रकाश' शिक्षित और योग्य होते हुए भी बेकार है। प्रकाश का शिक्षित, विद्वान एवं योग्य होना ही अभिशाप बन गया है। विशेष योग्यता के बावजूद भी वह अपने आर्थिक संकट से न मुक्त हो सका न अस्तित्व संकट से। साथ ही साथ न किसी राष्ट्रीय या सामाजिक निर्माण में उसकी प्रतिभा और योग्यता का योगदान हो सका। हर स्तर पर सार्थक बन पाने की शक्ति होते हुए भी निरर्थकता के सिवा उसके लिए कुछ नहीं है। यही आज की शिक्षित एवं सुयोग्य मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी की नियति बन गई है।

इसी प्रकार 'आसक्ति' कहानी में 'विनोद' का चरित्र बेकारी और पराक्रम के कारण आरम्भ से ही घुटा-घुटा दिखाई देता है। विनोद को अपनी असहायता एवं मजबूरी का तीव्र एहसास पड़ोसियों के कथनों से होता है "लड़की कमाती है और यह आदमी खाता है।"[19] अपनी असमर्थता का ज्ञान उसे है, तभी तो एक बार सुजाता को नौकरी छोड़ देने की बात कहने के तत्काल बाद सोचने लगता है कि यदि वह नौकरी छोड़ देगी, तो गुजारा कैसे चलेगा ? वह स्थितियों की नजाकत को समझता है। तभी तो वीरेन्द्र के यहाँ रहने आते ही वह अपनी चारपाई लाकर गली में बिछा लेता है। इसे उसकी विवशता ही कहा जा सकता है। वस्तुतः विनोद के पात्र को आद्यन्त विवश ही चितारा गया है। उसकी इस विवशता का मूल कारण बेकार होना ही है। उसका हर कदम वस्तुतः बेरोजगारी सम्बन्धी विवशता का ही प्रतीक एवं परिचायक कहा जा सकता है।

कहना न होगा कि कमलेश्वर की कहानियों के पुरूष पात्र मुख्यतया मध्य, निम्नमध्य और निम्नवर्गीय हैं। उनके पात्र अधिकतर गतिशील चरित्र वाले चितारे गए हैं। पात्रों के चरित्रों का निर्माण जीवन की यथार्थ घटित स्थितियों के द्वारा किया गया है। कहानी और पात्र की आत्मा की आवश्यकतानुसार चरित्र-चित्रण की विशिष्ट प्रविधा का सहारा लिया गया है। इस दृष्टि से सभी कहानियाँ अपने आप में पूर्ण सफल हैं।

3.3 कमलेश्वर की कहानियाँ : राजनैतिक चेतना

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राजनीति में भी विशाल परिवर्तन हुए। स्वतंत्रता के कुछ वर्षों के अन्दर ही राजनीति के रंगमंच पर सत्ताकांक्षी नेताओं की स्वार्थता के कारण जन-विश्वास डगमगाने लगा। स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षितिज पर हुए व्यापक मूल्य संक्रमण को अभिव्यक्त करने का प्रयास समकालीन कहानीकारों जैसे राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, धर्मवीर भारती ने विशेषकर कमलेश्वर ने किया है।

देश की गंदी राजनीति के सम्बन्ध में कमलेश्वर का विचार है कि - "आज व्यक्तिहित परिवार, राष्ट्र और समाज-हित से ऊपर माना जाने लगा है। परिणामस्वरूप पारिवारिक सामुदायिक और राष्ट्रीय ढांचे चरमराकर टूट गए हैं, बिखर गए हैं और यह टूटना तथा बिखरना निरंतर जारी है। व्यक्ति सम्बन्धों का विघटन बड़े पैमाने पर होने के कारण आज आदमी के सामने सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि न तो वह किसी का बन सका है और न किसी को अपना बना सका है।"[20] अतः भारतीय राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव नई कहानियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। डॉ. बच्चन सिंह ने स्पष्ट लिखा है -" इस बोध को लेकर लिखे जाने वाली कहानियाँ युगीन संक्रमण की कहानियाँ है। इनमें आँकने वाला जीवन, जीवन की 'ट्रेजडी' नहीं है, बल्कि 'ट्रेजिक' जीवन है। यहाँ समाज का बोध नहीं बल्कि व्यक्ति का बोध है। ये 'ट्रेजिक विजन' और 'ट्रेजिक तनाव' की कहानियाँ हैं।"[21]

कमलेश्वर की कहानियों में राजनीति से सम्बन्धित दो कोण देख सकते हैं। उनकी लाश, लड़ाई, रातें अपने अजनबी देश में, जार्ज पंचम की नाक, आदि कहानियाँ प्रत्यक्ष राजनीतिक सन्दर्भो की कहानियाँ है जिनमें शासन तन्त्र के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है। आम आदमी की जिन्दगी पर राजनीतिक प्रभाव उद्घाटिन करने वाली कहानियाँ हैं - बयान, लाश, अपने देश के लोग, इंसान और हैवान, दालचीनी के जंगल, नागमणि, मानसरोवर के हँस, स्टोरी, जिन्दा मुर्दे आदि। प्रस्तुत अध्याय में इन कहानियों का विस्तृत विश्लेषण किया जा रहा है।

लाश : 'लाश' कहानी इस देश के तमाम राजनीतिक प्रपंच को बेनकाब कर देने में समर्थ है। आजकल सत्ताधारी और विरोधी पार्टियों के संघर्षो के फलस्वरूप जनतंत्र की मृत्यु हो रही है। इस यथार्थ का उल्लेख 'लाश' कहानी में किया गया है अर्थात जनतंत्र धीरे-धीरे लाश में परिवर्तित होता जा रहा है।

प्रस्तुत कहानी में सत्ता के विरूद्ध जनता जुलूस निकालती है, लेकिन जुलूस के कार्यक्रम का आयोजन एवं संचालन विरोधी पक्ष के नेता कान्तिलाल करते हैं। जनतांत्रिक देश में जुलूस और नारे अपने-आप में जनशक्ति का प्रदर्शन तथा सत्ताधारियों के लिए चेतावनी भी होती है। लेकिन आजकल इस जुलूस और नारों का सही अर्थ में उपयोग नही हो रहा है। आज भी अधिकारियों को सचेत करने के लिए जुलूस निकालते हैं। नारे लगाए जाते

हैं। लेकिन अधिकारों के लिए होने वाले ये शक्ति प्रदर्शन असल में नेताओं के अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए किए जाने वाले आयोजन होते हैं। जुलूस निकालते वक्त दंगे हो जाते हैं और कोई न कोई व्यक्ति शहीद हो जाता है।

'लाश' कहानी में भी जुलूस के दौरान दंगा हुआ। दंगा न होने देने के लिए सारा प्रबंध किया गया था फिर भी दंगा हुआ। पुलिस ने गोली चलाई। एक लाश गिर पड़ती है। लोगों को लगा कि विपक्ष के नेता कान्तिलाल की मृत्यु हो गई है। खबर पाकर विपक्ष के नेता कान्तिलाल फौरन वहाँ पहुँच गए और लाश को देखते ही कान्तिलाल ने जोश से भरे स्वर में कहा -"यह मुख्यमंत्री जी की लाश है।"(22) मुख्यमंत्री भी घटित हुए हादसे का मुआयना करने के लिए पहुँच गए। वे खबर पाकर सक-पका गए। उन्होंने गौर से लाश की ओर देखा और मुस्कुराते हुए बोले "यह मेरी नहीं।"(23) फिर पाया कि दोनो एकदम सही-सलामत है। मजाक की बात यह है कि दोनों एक दूसरे को मृत और स्वयं को जीवित घोषित कर रहे थे। असल में दोनो जीवित हैं अर्थात् न सत्ता खत्म होती है न विरोधी।

जनतंत्र के नाम पर जनतंत्र की हत्या हो रही है। यहाँ न सत्ता सुव्यवस्थित है न विरोध। दोनों अपने स्वार्थ लाभ के लिए जनतंत्र का शोषण एवं हत्या कर रहे हैं। यहाँ रामराज बन जाए या रावण राज बन जाए सामान्य जन का जीवन तो दुःखपूर्ण ही होगा। कहानी में लोकतंत्र प्रणाली पर प्रहार है। कमलेश्वर ने राजनीति की अवसरवादिता को प्रमुख रूप से उभारा है। चुनावी क्षेत्र का हर नेता जनता को लूटना चाहता है। लोकशाही प्रणाली में तंत्र की भ्रष्टता, अवसरवादिता, चालाकी का पर्दाफाश हुआ है।

<u>लड़ाई</u> : यह कहानी कमलेश्वर द्वार सन् 1969 में लिखी गई। यह कहानी देश की उस चारित्रिक भ्रष्टता को उजागर करती है। देश की सक्रिय राजनीति में हिस्सेदार दो भाईयों के जरिए व्यापी भ्रष्टाचार का उल्लेख यहाँ हुआ है।

लड़ाई के दो मोर्चे हैं। एक मोर्चा बाहर का दूसरा भीतर का। पहला मोर्चा युद्ध का, जहाँ औसत तीस हजार गोलियों से एक सिपाही मरता है। लेखक युद्ध के मोर्चे की बात करते-करते युद्ध में तैनात डॉक्टर के परिवार की बात करने लगता है। डॉक्टर का बड़ा भाई और छोटा भाई देश सेवा में लगे हैं। बड़ा भाई किसी सरकार में मंत्री बना तो छोटा ठेकेदार बन गया। आखिर जन सेवा, लोकसेवा में ही तो लगा है यह पूरा परिवार।

कहानी में रोचकता बढ़ जाती है जब बड़ा भाई मंत्री नहीं रहता फिर भी बड़ा छोटा मिलकर सरकारी खजाने को रोज थोड़ा कम करते रहते हैं। लेखक ने सत्ता के इस पक्ष को पकड़ना चाहा है। जहाँ कुछ लोग कुर्सी से हटकर देश को धीरे-धीरे खोखला करते जाते हैं। ये नेता लोग चोरी-चोरी जनता का कोष रिक्त कर रहे हैं। देश का अर्थतंत्र खोखला हो रहा है। ट्रेजडी तो यह है कि ऐसे नेता और मंत्री पकड़े भी जाते हैं तो बेनकाब होने पर भी वे एक समान दिखते हैं। धोती पहने या बिना पहने ये सभी नग्नता

व्यक्त करते हैं। इन भ्रष्ट लोगो को गिरफ्त में भी नहीं लाया जा सकता। इन सबके चेहरे एक जैसे हैं।

कमलेश्वर ने आम आदमी की जिन्दगी की बुनियादी लड़ाई को केन्द्र में लाकर रखा है। उन्होंने यह व्यक्त किया कि देश के शासक वर्ग एवं अन्य अधिकारी गण जन सेवा का पर्दा ओढ़कर जनद्रोह कर रहे हैं तथा हर दिन नए-नए अवसरों के इंतजार में ऐशोआराम से बैठे हुए हैं। लेकिन बेवकूफ जनता लड़ाई के मैदान में जान की बाजी लगाके देश के लिए लड़ने वाले सिपाहियों के समान जीवन जीने की लड़ाई में लगी हुई है।

कहानी में रिश्वतखोरी, घूसखोरी, चोरी, तंत्र में घोटाला आदि दिखलाया है। युद्ध के मोर्चे से दूसरा मोर्चा कठिन है जोकि भीतरी है। यह भीतरी लड़ाई गोली और बंदूके से सुलझने वाली नहीं।

रातें : 'राते' शीर्षक कहानी कमलेश्वर की सशक्त रचनाओं में से एक है, जिसमें लेखक कमलेश्वर ने उस पूँजीवाद की नंगी तस्वीर पेश की है जो अर्थ या पूँजी के बल पर तीन-तीन पीढ़ियों का सौंदर्य खरीदकर भोगने में समर्थ है। यह कहानी पूँजीवाद की कमजोरियों को ही रेखांकित नहीं करती वरन् फ़ासिस्ट ताकतों की मंशा और मंसूबों से भी आगाह कराती है।

यह कहानी चार वेश्याओं की व चार पीढ़ियों का चित्रण करती है। एक ही कहानी में चार खण्डों की कहानी समेटना तो कमलेश्वर की विशेषता है। प्रस्तुत कहानी में सेठ एम.सी. दारूवाला ने अपनी शक्ति और अर्थ के बल पर शारदाबाई के घराने की चार पीढ़ियों की पहली रातें खरीदकर अपनी तानाशाही का परिचय दिया है। हर एक बार संसार भर में कई ऐतिहासिक परिवर्तन आ जाते हैं फिर भी सेठ एम.सी दारूवाला हर बार जीतता रहा। जब शारदाबाई सर्व गुणों से सम्पन्न हो गई तब उसकी पहली रात की विधिवत् घोषणा की गई। देश के जाने माने लोग युवक और अधेड़ की कोशिशें बेकार रही। उनकी जगह अठारह साल के मगनलाल छगनलाल दारूवाले ने बाजी मार ली, जो अपने करोड़पति पिता के पैसे से घमंड़ी था।

उसके बाद अठारह वर्ष के अन्दर दुनिया में अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ घटी। इस अन्तराल में शारदाबाई की लड़की सुन्दरीबाई जवान बन गई और उसकी पहली रात की घोषणा की गई। तब सबकी कोशिशों को व्यर्थ साबित करते हुए पैंतीस साल के सेठ मगनलाल छगनलाल दारूवाला ने पहली रात खरीद ली। फिर कई साल बीत गए और लोक इतिहास में असंख्य हेर-फेर हुए। लोग सुन्दरीबाई की पुत्री ताराबाई की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच भारत स्वतंत्र हो गया। इसलिए राजा महाराजा के बदले बड़े-बड़े उद्योगपति तथा ठेकेदार आदि पहली रात की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन सब की आशाओं पर पानी फेरकर इस बार भी इक्यावन साल के एम.सी दारूवाला ने बाजी मार ली। लोक इतिहास में घटित घटनाओं के बीच ही ताराबाई की बेटी बड़ी हुई। उसकी पहली रात की घोषणा की गई लेकिन "इस बार लोगों ने बहुत रूचि नहीं ली। उन्हें पता था कि क्या होने वाला है कि यह रात कहाँ और किसके साथ गुजरने वाली है।"[24]

'माँस का दरिया' कहानी में जर्जर जुगनू चित्रित थी परन्तु इस कहानी में स्वर पूँजीपति की रंगीन रातों का ही उभरता है। वेश्या जीवन अब तक तलघर के अँधेरों में छटपटा रहा है। परन्तु लेखक का अभिप्रेय यहाँ पूँजीपति वर्ग की शक्ति का चित्रण करता है। तानाशाही में एक शासक की मृत्यु के बाद उसका ही वंशज उत्तराधिकारी बन जाता है। लेकिन जनतंत्र में स्थिति तो उल्टी है, क्योंकि जनता को शासक बदलने का अधिकार है। फिर भी लोग शासकों के अत्याचारों एवं भ्रष्टाचारों के विरूद्ध आवाज उठाने के बदले आँखे मूँदकर चुप रह जाते हैं। शासन के लिए 'आयु' कोई बड़ी बात नहीं। हर बार देश में चुनाव के वक्त लोग एक ही नाम सुनते रहे हैं लेकिन हर बार सत्ता बदलते वक्त लोग किसी और का नाम सुनना चाहते हैं और हर बार उन्हें निराश होना पड़ता है। इसलिए लोग तटस्थ हो जाते है क्योंकि उन्हें मालूम है सत्ताधारी या खरीददार कौन होगा ?

हमारे देश में सेठ एम.सी दारूवाला जैसा नेता हर बार सत्ताधारी बन जाता है। हर काल को अपना काल बनाने में कुशल है। संसार में हुए अनेक क्रांतिकारी परिवर्तनों के लम्बे अरसे के बाद भी सत्ता की कुर्सी और उस कुर्सी पर बैठने वाला एक ही रहा अर्थात पद एवं कुर्सी (सत्ता) हासिल करने की होड़ में हर बार दारूवाला जैसा नेता ही अव्वल आ गया और उससे सिद्ध हर सुखों को भोगता है। आम आदमी केवल दृष्टा एवं निष्क्रिय होकर अपनी नियति को सहते रहे। अतः कमलेश्वर ने इसी तथ्य को अत्यंत रोचक पूर्ण ढंग से व्यंग्य का पुट देकर इस कहानी में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

<u>जार्ज पंचम की नाक</u> : यह कहानी कमलेश्वर के दिल्ली आवास के समय की कहानी है। सरकारी नौकरी (टी.वी) करते हुए उन्हें व्यवस्था की सडांध का भीतरी चित्र मिला था। उसी भ्रष्ट राजनीति को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। सरकार व राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, चमचागीरी, घूँसखोरी, ब्रिटिशों की मानसिक गुलामी आदि को इस कहानी का कथ्य बनाया है। भारत आजाद हुआ, अंग्रेज चले गये और देश में जनतंत्र की स्थापना हुई। औद्योगिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से हम किसी से पीछे नहीं है। लेकिन सब कुछ हथियाने पर भी अब भी हम अंग्रेजों के गुलाम हैं। अब भी मानसिक रूप से हम उन्हें ही शासक मानते रहते हैं। इस सत्य का पर्दाफाश कमलेश्वर की इस कहानी में हुआ।

देशभर में विशेषकर दिल्ली में रानी एलिजाबेथ द्वितीय के स्वागत सत्कार की तैयारियाँ धूम-धाम से हो रही हैं। अब रानी तो हमारे मित्र है, मालिक नहीं। फिर भी मालिक के तौर पर ही स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध हो रहा था। सब कुछ तैयार हो गया लेकिन जार्ज पंचम की नाक की बड़ी मुसिबत थी। दिल्ली में हुए आन्दोलन के दौरान नाक काट दी गई, पर दूसरी नाक अब तक न लगवा सके। सत्ताधारी परेशान हो गए। नाक लगवाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन किया गया। मूर्तिकार ने नाक के लिए उचित पत्थर की खोज-बीन सम्पूर्ण भारत में की। लेकिन पत्थर न मिला। फिर

उसने नाक के लिए देश भर के नेताओं की मूर्तियों की जांच की। लेकिन निराशा ही हाथ आई क्योंकि "जार्ज पंचम की नाक से सब बड़ी निकली।"[25] अर्थात हमारे देश के सब नेता महान एवं मान-सम्मान के रहे इसलिए उनकी नाक बड़ी निकली। सभापद गहरी सोच में पड़ गए "जार्ज पंचम की नाक न लग पाई तो फिर रानी का स्वागत करने का मतलब ? यह तो अपनी नाक काटने वाली बात हुई।"[26]

चालाक मूर्तिकार ने फिर योजना बनाई "चालीस करोड में से कोई एक जिन्दा नाक काटकर लगा ही जाए।"[27] सभापद ने इसके लिए अनुमति दी अर्थात् अंग्रेजों के मान-सम्मान के लिए अपनी भाई की हत्या भी बड़ी बात नहीं और उनकी जान का कोई मूल्य भी नहीं। मूर्तिकार ने किसी हिन्दुस्तानी की नाक लगाकर समस्या का हल किया। प्रस्तुत कहानी स्वातंत्र्योत्तर भारत सरकार के देश को चलाने की प्रणाली पर एवं उनकी देश के प्रति उपेक्षा को चित्रित करती है।

कमलेश्वर ने दिल्ली शहर और जार्ज पंचम की नाक दोनों का चुनाव अकारण ही नहीं किया है। दिल्ली (केन्द्र) में अर्थात समस्त भारत में भ्रष्टाचार व्याप्त है, इसका संकेत है। दूसरा मसला नाक का है। देश की जनता भूखी रहे, लाचार रहे, उसकी चिन्ता देश के नेतागणों को नहीं है। बल्कि विगत सत्ताधारी राजकुमार की मूर्ति की नाक की फिक्र में वे दुबले होते जा रहे हैं। नेताओं द्वारा देश की असल समस्या की चर्चा न कर, दिखावे के पीछे विदेशी सरकार को प्रसन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। नेताओं द्वारा जनता को रोटी नहीं दी जा रही। नाक की रक्षा की जा रही है। कहानी में कमलेश्वर ने व्यंग्य का नश्तर चुभाया है। यह कमलेश्वर की एक सशक्त कहानी है।

अपने देश के लोग : यह 'जिन्दा मुर्दे' संकलन की एक प्रभावशाली कहानी है। कहानी में दीनदयाल, सदानंद, इब्राहीम, एस.सुब्रमण्यम, सुब्रतो घोष, सुबोध पकडासी जैसे कई क्लर्क कतार बाँध कर बैठे हैं। कोई ज्यादा तनख्वाह माँगता है तो कोई अपने अफसर से अधिक काबिल है। अफसरनुमा कम्पाउण्डर उनके मुँह में गोली रखता है। स्वैर कल्पना यही से प्रारंभ होती है कि "भारत में जनतंत्र को स्थापित करने के लिए नए आदमियों की जरूरत है, जो सिर्फ मन लगाकर अपना काम करें.. अनुशासन को समझें। जो सपने न देखा करें। बुद्धि का ज्यादा इस्तेमाल न करें।"[28]

दीनदयाल नामक क्लर्क जोकि आम आदमी का प्रतिनिधि है, उसकी सर्जरी होती है। उसका जुर्म है ज्यादा तनख्वाह माँगना और सलाम न करना। अफसरों ने इस पर क्रुद्ध होकर उसकी आत्मा, दिल, दिमाग, आँख और पेट को चीर ड़ाला। उन्होंने पहले उसकी पहचान 'आत्मा' को निकाला। फिर उसके दिमाग की जाँच की तो उसमें उसके जीवन का हिसाब अंकित था। उन्होंने उसको निकाला। फिर उसकी आँखों को चीर ड़ाला, जिसमें उसके अनन्त स्वप्नों की तस्वीरे अंकित थीं। उसके बाद उसके पेट का आपरेशन हुआ तो वहाँ से उसके दारूण गरीबी का पता चला। फिर उसका सीना चीर

ड़ाला तो वहाँ एक जिन्दा मकडी और जालों के सिवा कुछ नजर नहीं आया। अब मनुष्य दिल होते हुए भी दिलवाला नहीं है। फिर उसके सर्जन अफसरों ने उसके दिमाग, दिल, आँखे और पेट अच्छी तरह साफ करके अपनी मर्जी के अनुसार सामान भर-भर कर उसकी सिलाई की। उसे मेज से उठाने के पहले उन्होंने दो टाँके उसकी जुबान में भी लगा दिए और पीठ थपथपाकर उसे बैठा दिया। दीनदयाल ने ऑपरेशन के बाद चुस्ती से खड़ा होकर झुक-झुककर अपने अफसरों को सलाम किया।

आजादी के बाद भविष्य के सुखद सुन्दर स्वप्न की चाह में डूबी जनता को शासन एवं अधिकारियों के क्रूर दमन का शिकार होना पड़ा अर्थात् भारत के संवेदनशील, बुद्धिमान आदमी को सत्ताधारियों के आगे यंत्रवत् गुलाम बनकर रहना पड़ा। आम आदमी की इस दारूण नियति का सशक्त चित्रण कमलेश्वर ने इस कहानी में किया है। जनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में अफसरों एवं अधिकारियों द्वारा आम जनता के दिल-दिमाग का और यहाँ तक कहे तो शरीर भर का नियंत्रण अपने हाथों में लेकर उन्हें उनके हाथ का खिलौना मात्र बनाने की जो कूटनीति एवं रीति है उसकी पोल खोलने का प्रयास कहानीकार ने किया है। आज कल देश की स्थिति तथा जनतंत्र की हालत इतनी दूषित हो गयी है कि जिसके पास सत्ता और धन है वह कुछ भी कर सकता है अर्थात् सत्ता के विरूद्ध आवाज उठाने वालों की जुबान खींचने की प्रणाली लागू हो रही है। अतः आम आदमी का जीवन दिन-ब-दिन दीन-हीन स्थिति की ओर बढ़ता जा रहा है।

<u>अपने अजनबी देश में</u> : कहानी में देश की भ्रष्ट व्यवस्था और शासन प्रणाली पर व्यंग्य है। कहानीकार ने लोकतंत्र के रखवालों पर तीखा व्यंग्य बाण छोड़ा है। साथ ही साथ जनतांत्रिक मूल्यों के घोर पतन को अपनी आँखो के सामने देखकर भी अचेत पड़े हुए सामान्य लोग की निष्क्रियता का खुलकर वर्णन भी किया है।

कहानी का 'मैं' अजनबी देश हिन्दुस्तान के एक शहर की सड़क पर सवार था। वहाँ सड़क की मरम्मत हो रही थी। टैक्सी ड्राइवर ने बताया "अजी पहले कहाँ ! यह सब तो आजादी के बाद शुरू हुआ है। पहले तो रातों-रात सड़कों की मरम्मत हो जाती थी, जनता को पता तक नहीं चलता था... आजादी के बाद जबसे जनता का राज हुआ है, सब काम जनता के आँखों के सामने होते हैं। इसलिए सड़के खोद दी गई हैं।"(29)

एक सामान्य ड्राइवर से जनतंत्र की बातें सुनकर कथावाचक संतुष्ट हो गया। कथावाचक लोकसेवा के नाम से विख्यात एक परिवार का परिचय करता है। उस परिवार के बड़े भाई दीवानचन्द एक फैक्टरी के मालिक थे। उनका छोटा भाई भगवानचन्द जी कोर्पोरेशन के सदस्य थे। दीवानचन्द का इकलौता बेटा फौज में सेकिण्ड लैफ्टिनेंट था। दीवानचन्द जी देश की खाद्य सामग्रियों की कमी दूर करने के लिए फैक्टरी में नेलपॉलिश और रेफ्रीजरेटर बनाते हैं, क्योंकि औरतें फैशनेबल बन जाएँ तथा लोगों की खाने की आदतें बदल जाएँ। लोकसेवा के नाम पर भौतिक सुख-सुविधाओं के साधन बनाकर

पूँजी कमाना ही उनका लक्ष्य रहा अर्थात लोकसेवा से अमीर और अमीर बनता जाता है तथा बेवकूफ जन उनका मुँह ताकने को विवश बनता जाता है।

दीवानचन्द जी का फौजी बेटा देश की सेवा में इसलिए रत है "भारतीय लोकतंत्र की फौज तो लड़ाई के लिए बनाई ही नहीं गयी थी।"(30) यहाँ फौजी अफसरों की कर्त्तव्यहीनता पर तीखा व्यंग्य किया गया है। दीवानचन्द जी का छोटा भाई भगवानचन्द जी कोर्परेशन के मकान बनवाने वाली समिति के अध्यक्ष हैं। इसलिए उन्होंने अत्यंत ईमानदारी के साथ अपना फर्ज निभाया ताकि कार्परेशन की ओर से बनवाने वाली रिहायशी इमारतों को बनवाने के बीच ही मैंने उसी के पैसे से अपने दो मकान बनवा लिए हैं। यहीं तो सच्ची लोकसेवा है। जब इस मामले में इन्क्वायरी हुई लोकतंत्री रास्ते से ही वह खुद उससे बच गया और औरों को बचाया।

हिन्दुस्तानी लोकतंत्र ने सरकारी कर्मचारियों का जीवन दूभर बनाया है। हिन्दुस्तानी लोकतंत्र में बड़ी मुश्किल से वक्त काटने वाले सरकारी दफ्तर के क्लर्क को अपना दुख दूर करने के लिए शराब चाहिए थी लेकिन सरकार ने शराब बन्दी कर रखी थी। उसने सीधे जनता की जान-सम्पत्ती के रक्षक तथा शांति और व्यवस्था की स्थापना करने वाले पुलिस वाले की हथेली में दों रूपये रखते हुए पूछा -"हवलदार साहब ! यहाँ कहीं मसाला मिल जाएगा ? तुरन्त पुलिसवाले ने उसे शराब लाकर दी और बदले में कुछ रूपये भी पाये। उस क्लर्क ने कथावाचक से कहा -"यह अपने अजनबी देश की पुलिस है भाईजान। जनता की सेवा करती है...लोकतंत्र की रक्षा करती है।"(31)

पुलिस ने नहीं उसकी गरीबी ने उससे यह काम करवाया, क्योंकि गरीबी लोकतंत्र की एक बड़ी शर्त है। क्लर्क के अनुसार " सच्चा लोकतंत्र वही है, जहाँ जनता और सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। सरकार सोचने का काम करती है और जनता अपना काम करती है...इस सोचने और काम करने में कोई तालमेल नहीं होता ... जब तक यह हालात रहते हैं लोकतंत्र बना रहता है।"(32) हिन्दुस्तान में दो तरह के तबकें हैं...अमीरों और गरीबों के। सोचने वालों और काम करनेवालों के, जो सोचता है वह काम नहीं करता और जो काम करता है वह सोचता नहीं।

आजकल जनतंत्र का स्वरूप अत्यन्त विकृत एवं जर्जर होता जा रहा है। एक ओर देश व्यापी भ्रष्टाचार, व्यक्तिगत स्वार्थ, पदलिप्सा और दूसरी ओर गरीबी, निराशा एवं उसकी मजबूरियाँ जनतंत्र की नींव हिला रही है। सिर्फ शासक एवं नेता ही नहीं बल्कि सरकारी अधिकारी, व्यापारी, फौजी और आम जनता भी अपने अनुसार जनतंत्र की व्याख्या एवं परिभाषा प्रस्तुत करने के प्रयास में हैं। राजनीति के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार से किसी प्रकार जनतंत्र खोखला पड़ता जा रहा है। यही कहानी का कथ्य है और इसी तथ्य को उद्घाटित करने का प्रयास कमलेश्वर ने इस कहानी में किया है।

बयान : बयान (धर्मयुग : 21 जून 1969) कमलेश्वर की ऐसी कहानी है जो अपने कथ्य, शिल्प, संवेदना और परिवेश की जागरूकता के कारण वर्षों तक याद रखने योग्य है। यह एक बहुत सशक्त कहानी है जो न्यायतंत्र के खोखलेपन को उद्घाटित करती है।

'बयान' निजी और बाहरी दुनिया के ऐसे ही दारूण रिश्ते की कहानी है। देश यहाँ भी है, आजादी के बाद का देश, जिसमें लहलहाती खेती, बाँध, बीजलीघर, फैक्टरियों, मिलों, वनमहोत्सवों और नयी रेलवे लाइनों के उद्घाटनों की ख़ालिस तस्वीरें ही तस्वीरें हैं। शायद यही आजादी का सुख है। लेकिन सच्चाई का कही भान नहीं। वह केवल नारों और विज्ञापनों की वस्तु होकर रह गई है।आज भी यदि कोई उसमें निष्ठा रखता है तो फिर उसका जीना मुहाल हो जाता है। आदमी को उसकी जिन्दगी की सच्चाई से काट देने का क्या हश्र हो सकता है ? यही कि या तो वह आत्महत्या कर ले या फिर खुद को नकारता हुआ खुद से कटकर जिए। अपने प्रति ईमानदार आदमी की नियति शायद यही है कि 'आँखों से खून की धार रिसने लगे और जब तक जिन्दा रहे तब तक लगातार खून टपकता रहे। इस मायने में 'बयान' एक तस्वीर है, एक आईना है, ऐसे ईमानदार आदमी के निजत्व और उसके अस्तित्व की सार्थकता की मौत का।

'बयान' कहानी गलत व्यवस्था के हाथों षडयंत्र के शिकार एक आदमी की मार्मिक कहानी है, जो झिझोड़ती ही नहीं, बुरी तरह त्रस्त करती है। दिल्ली में एक फोटोग्राफर ने आत्महत्या की जिसके इल्जाम में उसकी पत्नी को अपराधी मानकर कटघरे में खड़ा कर दिया। उसके पति की आत्महत्या के कारणों की खोज के बदले कानून उसकी पत्नी पर आरोप लगा रहा है। इसके विरूद्ध पत्नी अदालत के सामने खुलकर बयान देती है। उसके पति ने पहले सरकार के प्रेस इन्फोरमेशन ब्यूरों में, फिर एक सरकारी पत्रिका में और विज्ञापन कंपनी में काम किया। एक मशहूर फोटोग्राफर बनना ही उसके जीवन का मकसद था। लेकिन सत्ताधारी ने उन्हें काट कर कुचल दिया था। अब तक उसने जिस कैमरे पर विश्वास रखा, उसने उसे धोखा दिया। पहले 'गलत' तस्वीर खींचे हुए उसका पतन हो गया अब जीने के लिए अपनी पत्नी का अधनंगी उद्दीपक तस्वीरें खींचकर बेचते हुए उसकी मौत हो जाती है अर्थात् अब वह आत्महीन शरीर का अधिकारी मात्र रह गया है।

उसकी पत्नी की ऐसी तस्वीरें पत्रिका में देखकर स्कूल मैनेजर ने उसे नौकरी से निकाल दिया। इन तस्वीरों के छप कर आने के कुछ ही दिनों बाद आत्महत्या की। फोटोग्राफर की आत्महत्या के सही मुजरिम भ्रष्ट व्यवस्था एवं सत्ताधारी के होते हुए भी उन्हें संरक्षण देने को कानून मजबूर बन गया है अर्थात् अपराधियों का उल्लेख तक न करके निरपराध उसकी पत्नी को सलीब पर चढ़ाते हैं। पत्नी ने कानून की हँसी उड़ाई है –"गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुँचेंगे।...आप का अन्धा और बहरा कानून किसी नतीजे तक पहुंच जाए।'[33] कानून अंधा और बहरा होने की वजह से ही निरपराधियों को सलीब पर चढ़ाया जाता है।

असल में यह 'बयान' देश की क्रूर प्रस्थापित व्यवस्था के विरूद्ध दिया गया बयान ही है। कमलेश्वर ने उस क्रूर, अदृश्य व्यवस्था का पर्दाफाश किया है, जिसके कारण इस प्रकार देश के प्रतिभा सम्पन्न लोगों को आत्महत्या करनी पड़ती है। देश की असलियत तथा पवित्रता को दूषित करने वाली व्यवस्था पर कटु प्रहार भी किया गया है। आधुनिक भारतीय जीवन संदर्भ का यह तीखा, सही और बेलाग बयान है साथ ही साथ हमारे भ्रष्ट राजनीतिक जीवन का सही बयान भी।

जिन्दा मुर्दे : सन् 1969 ई. में लिखी यह कहानी किसी न किसी रूप में समकालीन सामाजिक विसंगतियों का पर्दा-फाश करती है और यह एहसास दिलाती है कि कमलेश्वर अपने परिवेश के प्रति निरन्तर सचेत रहे। यह कहानी भारत-पकिस्तान के युद्ध को पृष्ठभूमि में लेकर लिखी गई कहानी है। कहानी में सच को झूठ और झूठ को सच कर दिखलाने की वृत्ति पर व्यंग्य है।

भारत-पकिस्तान के बीच हुए भीषण युद्ध का जीता-जागता चित्र इस कहानी में प्रस्तुत है। इच्छोगिल नहर के किनारे भारत और पकिस्तानी फौजों के बीच घमासान युद्ध हुआ। सुबह होते ही सब कुछ शांत हो गया था। नहर का किनारा लाशों से भरा हुआ था। टैंकों, मशीनगनों और गोलों के टुकड़े सब कही बिखरे पड़े थे। पाकिस्तानी सिपाही ट्रकें और जीपे लेकर आए और खास-खास मुर्दों को उठा ले गए। लेकिन इस हडबडी में ब्रिगेडियर को पहचाने तो वे अदब से उनकी लाश उठाकर अपनी तरफ ले आए।

भारतीय फील्ड कमाण्डर और सारे सिपाहियों ने पाकिस्तानी ब्रिगेडियर साहब की लाश के सामने एक मिनट खामोश खड़े होकर अपना आदर प्रकट किया। भारतीय फील्ड कमाण्डर ने सिपाहियों से कहा -उन्हें फौजी सम्मान के साथ दफनाया जाए ? मौलवी साहब को बुलाकर इन्हें दफनाने का इन्तजाम कर दिया जाए।... एक फोटोग्राफर इनका फोटो ले ले तो ! इनकी फैमिली को भिजवा देंगे।

ब्रिगेडियर साहब की फोटो खींचने के लिए मुहम्मद असगर खाँ को बुलाया गया जो पहले हवलदार थे और अब उस कस्बे के एकमात्र फोटोग्राफर थे। असगर मियाँ ने लाश को ठीक कर दिया। कैमरे को देखा और बोले -"रेडी...रेडी स्माइल प्लीज...वन...टू...थ्री ! शुक्रिया...।"[34] एक ओर इसमें दोनों देशों की भयानकता दर्शाई गई तो दूसरी ओर भाई-चारे की भावना भी दिखाई गयी है। लाश चाहे हिन्दू ब्रिगेडियर की हो या पाकिस्तानी, उसके सम्मान एवं आदर प्रकट करने तथा ठीक-ठीक दाह संस्कार का प्रबन्ध करना यह तो भारतीय संस्कृति की विशेषता है। क्योंकि वहाँ साम्प्रदायिकता के भेद-भाव से परे उठकर सब मानव मात्र बन गए हैं। फोटोग्राफर का रवैया तो यह प्रकट करता है कि जीवन मूल्यों का महत्त्व घट गया है क्योंकि जिन्दा और मुर्दा दोनों फोटोग्राफर के कैमरे के आगे एक जैसा ही है।

प्रारंभिक कहानियों में जहाँ कमलेश्वर का मूल्यों के प्रति झुकाव परिलक्षित होता था बाद में मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त न कर उन्होंने उनको

'जस का तस' स्वीकार कर लिया। यहाँ कस्बाई चित्रण के स्थान पर नगर से जुड़कर कहानियों ने नई दिशाओं की ओर कदम रखा। व्यापक धरातल पर कहानियाँ केन्द्रीय पात्र की जगह स्थिति को केन्द्र में रखती हैं और यह कार्य 'कथ्य' के द्वारा सम्भव हुआ। आधुनिकता का प्रभाव इन कहानियों में पढ़ा जा सकता है। दिल्ली नगर के परिवेश में विभिन्न 'कथ्य' उठाये हैं। जिसे कमलेश्वर ने यादव, निर्मल वर्मा एवं राकेश, मन्नू भण्डारी की भाँति दारूण संदर्भो में चित्रित किया।

मानसरोवर के हंस : 'मानसरोवर के हंस' कहानी सारिका 1973 अप्रैल अंक में छपी थी। यह कहानी ठोस कथ्यात्मकता को प्रस्तुत करती है। कथ्य कहानीकार के परिवार एवं गाँव मैनपुरी से जुड़ा है। उस समय की राजनैतिक खोखलेपन की ओर भी इसमें संकेत है। अन्ना के सम्बोधन में लिखित कहानी है 'मानसरोवर के हंस'।

कहानी में दो कथाएँ पिरोई गई हैं। एक कथा सेनापति चाचा की और उनके समय की है। यह स्वतंत्रतापूर्व समय के भारत की स्थिति चित्रित करती है। दूसरी कथा आज के विकट वर्तमान की भयंकर स्थितियों को चित्रित करती हुई स्वतंत्रता के पश्चात् के भारत के भ्रष्ट तंत्र को प्रस्तुत करती है।

आजादी के पहले कथावाचक का मैनपुरी कस्बा एक छोटी-सी रियासत था। वह क्रांतिकारियों का शरण स्थल था। उस समय सेनापति चाचा रियासत की फौज में हवलदार थे। कथावाचक के बाबा राजा साहब के अंगरक्षकों में एक था। वे राजा साहब की रक्षा करते समय मारे गए। अंग्रेजों ने किला घेर कर राजा साहब को गिरफ्तार कर लिया। रानी साहिबा ने हवा की चाल देखकर अंग्रेजों से समझौता कर लिया। इस कार्य में उनका सहायक था सेनापति चाचा। फिर वे अंग्रेजों के साथ मिल गए। वे रानी साहिबा के सैनिकों के सेनापति एवं उनके अघोषित पति बन गए। सेनापति चाचा ने अंग्रेजों का साथ देकर अपने की कस्बे के क्रांतिकारियों को मारा था।

कुछ साल बाद रानी साहिबा को गठिया की बीमारी लग गई। रियासत के राजवैद्य ने रोग मुक्ति पाने के लिए मानसरोवर के हंस का माँस खाने का निर्देश दिया। सेनापति चाचा छः सैनिकों के साथ हंस पकड़ने के लिए मानसरोवर पहुँच गये। सैनिकों को देखते ही हंस घबराकर तट से सरोवर के बीच में इकट्ठे हो जाते थे। इस प्रकार चार दिन बीत गए। पाँचवे दिन सेनापति चाचा के निर्देशानुसार वे सब वेश बदलकर साधुओं के वल्कल पहनकर गए तो उन्होंने उन्हें पकड़ लिया। इस प्रकार उन्होंने भोले निरीह हंसों को छला था। उस घटना के बाद सेनापति चाचा अत्यंत व्याकुल बन गए। इस कपटता ने सेनापति चाचा की आत्मा को प्रताड़ित किया। वे देश छोड़कर चले गये।

इस कहानी का स्वातंत्र्योत्तर भारत के साथ साम्य है। आज भी एक नहीं कई सेनापति चाचा हैं जो भोली जनता (हंसों) का शोषण कर रहे हैं। अवसरवादिता, चालाकी जैसे हथकंडे तो इनकी रग-रग में है। जनता लुट

रही है। भ्रष्ट हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। कहानी आम आदमी का चित्रण करती है।

सेनापति चाचा तिब्बत पहुँचकर बौद्ध बन गये। सालो बाद वे भी तिब्बत में उन्ही हंसो की तरह छले गए थे, "वहाँ चीनी लोग नहीं, चीनी सैनिक सांस्कृतिक क्रांति की वर्दी पहनकर आये थे और हम उन्हें पहचान नहीं पाये थे...जब पहचाना तब हम बोधिसत्व दलाईलामा के साथ भारत की ओर भागे थे।"(35) उन्हें अपना कस्बा और घर याद आया तो चले आए। वे तीस साल बाद कथावाचक के घर आए थे। धोखेबाज देवर को सामने पाकर कथावाचक की माँ बिगड़ गई। उन्होंने देवर को बहुत डांटा। लेकिन वे मौन रहे। अब तो शासन एवं शासक बदल गए हैं फिर भी देश की आम जनता शासकों द्वारा मानसरोवर के हंसों के समान छला जा रहा है।

'मानसरोवर के हंसों' को निरापद जीने देने के लिए पूँजीवादी, अवसरवादी नेताओं का सफाया आवश्यक है। कहानी का कथ्य लेखक के उपन्यास 'सुबह...दोपहर...शाम' पर भी प्रभाव छोड़ता है। कमलेश्वर का यह प्रिय विषय है। कहानी गहरा प्रभाव छोड़ती है। लेखक की कलम से लोक मंगल का भाव निसृत हुआ है।

इस प्रकार कहानियों में 'मामूली आदमी', 'आम आदमी' का चित्रण हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र में खपता हुआ, पिसता हुआ, शोषित, दबा हुआ, विवश, लाचार रूप में चित्रित हुआ है। कमलेश्वर अपने कहानी संग्रह 'बयान' तथा 'अन्य कहानियाँ' की कहानियों के बारे में मितभाषी रहे। उनका कहना था कि –"अपनी कहानियों के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है, सिवा इसके कि यही मेरा बयान है।"(36) इस तरह कमलेश्वर ने बिना कहे ही अपनी कहानियों के माध्यम से वह 'बयान' दे डाला जो आज का सही लेखक दे सकता है। वास्तव में कमलेश्वर प्रेमचन्द की तरह एक पैदाइशी किस्सागों रहे हैं और उन्होंने सदैव अपनी कहानियों के माध्यम से 'सामान्य-जन' की सही अभिव्यक्ति दी तथा उसे यथार्थ बोध तथा तात्कालिकता से जोड़ा।

दालचीनी के जंगल : तीन दिसंबर की रात को भोपाल गैस कांड में चहकते और महकते हुए परिवार किस प्रकार दालचीनी के जंगल की तरह जलकर नष्ट हो गये। कहानी उसी संदर्भ का चित्रण करती है। कहानी में इसी ट्रेजेडी का शिकार एक परिवार चित्रित है।

मुश्ताक नाम का व्यक्ति यूनियन कारबाईड कांड के दुर्घटना से प्रभावित होता है। वह अपनी यादशक्ति खो बैठता है। यहाँ तक कि अपना नाम भी। वह मुर्दाघर में छिपकर ठंडी जगह बैठता है। उसकी जिन्दगी खुद मुर्दे से बेहतर नहीं। दुर्घटना में वह अपनी पत्नी शबनम को खो बैठता है। परन्तु त्रासदी तब बढ़ जाती है जब मुश्ताक की यादशक्ति तीन साल बाद लौट आती है। शबनम भी उसे मरा समझ कर देह का व्यापार करने लगी है। कमलेश्वर ने भोपाल गैस कांड विषय के माध्यम से बेकसूर एवं बेगुनाह लोगों के जीवन को व्यक्त किया है। रासायनिक कारखानों के विस्फोट जानलेवा नहीं जिन्दगी लेवा साबित हुए हैं।

देश की भौतिक सुख-समृद्धि व उन्नति के कगार पर लाने को उत्सुक लोग भूल जाते हैं कि ये कितने जीवन बरबाद करते हैं। सरकारी व अंर्तराष्ट्रीय मुआवजा मिलने पर भी इन लोगों की जिन्दगी व खुशियाँ तो लौट नहीं सकती। लेखक ने यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि इन्सान की विस्मृति उसकी स्मृति से बेहतर होती है।

स्टोरी : 'स्टोरी' कहानी स्टोरी की तलाश में भटकते हुए पत्रकार व रिपोर्टर की स्वार्थपरता को चित्रित करती है। कहानीकार ने राजनैतिक उथल-पुथल, भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था पर प्रकाश ड़ाला है। उसी प्रकार भारत के पिछड़े गाँव के निरीह भोले एवं गरीब लोगों के प्रति सभ्य शहरी लोगों का रोब-दाव, वहाँ के पीड़ित लोगों के प्रति उनकी घृणा भरी आदत का दिग्दर्शन कराया है।

कथावाचक नैयानल डैली का ब्यूरो चीफ था। भारत के पिछड़े गाँव पड़रिया में घटित सामूहिक बलात्कार की स्टोरी एक लोकल साप्ताहिकमेंछपकर आई थी। इसलिए कथावाचक भी उस स्टोरी के बारे में लिखने को मजबूर हो गए। असल में नेशनल महत्त्व की बात न होने के कारण उन्हें इसमें दिलचस्पी न थी। फिर भी इसके बारे में जानने के लिए वे पूरी तैयारी के साथ पटरिया की ओर रवाना हुए। रास्तें में उन्होंने लोकल पत्रकार पंचानन को गाँव का रास्ता दिखाने के लिए साथ ले लिया। पंचानन को एम.ए पोलिटिकल साईंस की उपाधि प्राप्त थी। लेकिन कथावाचको को इस बात पर विश्वास न हुआ। तब पंचानन ने अपनी मैली कुचैली पेंट की जेब से एम.ए डिग्री सर्टीफिकेट की अटैस्टैट कॉपी दिखाई।

कुछ समय बाद वे सब पडरिया गाँव पहुँच गए। उस गाँव का वातावरण ग्रामीण नहीं था। वहाँ सामूहिक बलात्कार का कोई निशान भी कहीं नहीं था। गाँव के सारे लोग गरीबी के कारण कंकाल बन गए थे तथा औरतें गन्दी मैली-कुचैली एवं बदसूरत थी। लोकल साप्ताहिक के अनुसार पुलिस वालों ने वहाँ की औरतों को रेप किया था। मगर वहाँ की औरतों को देखकर लेखक के मुँह से निकल पड़ा "इन्हें कोई रेप करेगा।"(37) असमंजस में खड़े कथावाचक से पंचानन ने कहा कि इनमें सबसे गरीब घर की औरतों के साथ ही यह अन्याय एवं अत्याचार हुआ था। फिर वे भगवतिया की झोपड़ी में गए, जो रेप की विक्टिम थी। पंचानन ने भगवतिया को बुलाया। वह उनके सामने नहीं आई, घर के अन्दर से 'हूँ' की आवाज आई। लेकिन कथावाचक ने असलियत जानने के लिए उससे मिलने का हठ किया। तब पंचानन ने चीखकर कहा -" उसकी एक ही धोती थी और वह धोती जाँच के लिए गई है ...भगवतिया नंगी है।...अगर भगवतिया बेशर्म होकर बाहर निकल आएगी तो बाबू...तुम्हारी...तुम्हारी दुनिया की इज्जत धूल में मिल जाएगी....सब की इज्जत नंगी हो जाएगी।"(38)

इस प्रकार सत्ताधारियों द्वारा निरीह एवं गरीब लोगों पर किए जाने वाले अत्याचारों का खुलकर वर्णन किया है।

नागमणि : नागमणि स्वतंत्र भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके उपासकों की निष्ठा सम्बन्धी त्रासदी को आधार बनाकर रची गयी कहानी है। आजीवन दक्षिण भारत या अहिन्दी प्रदेशों में रहकर हिन्दी भाषा का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार-प्रसार करने वाले समर्पित व्यक्ति के मोहभंग की यह एक मार्मिक कहानी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा यह निर्णय ले लिया गया था कि स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसी कारण लोगों ने बड़े उत्साह से हिन्दी पढ़ना लिखना-सीखना आरम्भ कर दिया था। अहिन्दी भाषी प्रांतो में भी इसका प्रचार और शिक्षा जोर-शोर से चलने लगे थे। सन् 1950 में जब भारत का अपना स्वतंत्र संविधान लागू हुआ, तब भी हिन्दी को राष्ट्र और राज्यों की सम्पर्क भाषा घोषित किया गया। इसे अंग्रेजी के स्थान पर पारस्परिक सम्पर्क भाषा बनाने की घोषणा ही नहीं हुई करोड़ो रूपये खर्च करके तैयार भी हुई। पर संविधान में जुड़ी एक बात ने और अंग्रेजों के समस्त पुत्रों की मानसिक गुलामी ने वह बात पूरी न होने दी। हिन्दी के लागू न होने के मूल में उतना दोष अहिन्दी भाषी प्रान्तों का नहीं जितना कि स्वयं हिन्दी भाषी प्रान्तों और लोगों का है, इसी व्यथा-कथा को आधार बनाकर यह कहानी रची गई है।

विश्वनाथ उत्तर भारत के निवासी है। स्वतंत्रता के पूर्व गांधीजी से प्रेरित होकर वह राष्ट्रभाषा प्रचारक बन गया। वह प्रचारक बनकर दक्षिण भारत के दूर-दूर गाँवों और देहातों में घूमता रहा। पिछले कई सालों से वह अत्यन्त निष्ठा के साथ यह काम कर रहा है। सालों बाद अब उसे एहसास हुआ कि 'अपनी भाषा', 'अपना देश', 'अपना राज', 'अपना वेश' ये सब नारे खोखले हो गये हैं। आजादी ने देश के नक्शे को ही बदल दिया है। इस परिवर्तन से वह हताश हो गया। अब पहली बार उसे घर की याद आई। इसलिए अपने कस्बे की हालत जानने के लिए वह वापस आया।

विश्वनाथ अपने कस्बे की हालत देखकर हैरान हो गया। क्योंकि अब हिन्दी कही नहीं थी। वहाँ उसने हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी मंदिर' खोलने का निश्चय किया। हिन्दी मन्दिर तैयार हुआ तो उसका उद्घाटन उसने एक 'बड़े आदमी' से करवाना चाहा। उसके लिए उसने बड़ी मुश्किल से गांधीजी की तस्वीर का इन्तजाम किया लेकिन भारत माता की तस्वीर न मिली क्योंकि अब उन तस्वीरों से क्या लेना देना। दुनिया तो बदल गई है।

विश्वनाथ अपने कस्बे की बदली परिस्थिति, हिन्दी के प्रति उपेक्षा भाव, कमिश्नर ऑफिस में हुई घटना, जीवन का अकेलापन, लोगों के अंग्रेजी की ओर लगाव आदि बातों से अत्यंत परेशान हो जाता है। दिन-ब-दिन वह भीतर से टूटता रहा। आजाद देश के जो सुखद-सुन्दर स्वप्न उसने देखे वे सब अपनी ही आँखों के सामने चकनाचूर होते देखकर वह तड़प उठा। अब उसके आगे मरण का वरण के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। आदर्शहीन एवं मूल्य हीन देश में ध्येयनिष्ठ व्यक्ति की त्रासदी होती रहती है। विश्वनाथ ने अपना सुनहरा भविष्य, सब कुछ हिन्दी प्रचार के लिए ही खो दिया। चाहे तो वह भी अन्य प्रचारकों की भाँति घर बसा सकता था लेकिन वह अपने

काम में एकनिष्ठ रहा। रिश्ते के भाई की शादी के दिन उसे नवविवाहित भाभी सुशीला के साथ रेल में बैठना पड़ा और उससे मालूम हो गया कि सुशीला के बाबूजी ने पहले विश्वनाथ के लिए उसकी बात की थी।

विश्वनाथ ने बहुत सम्भलकर कहा "सच, मुझे बिलकुल पता नहीं, बड़ी भाभी ने यही सोचकर मना कर दिया होगा कि मेरा क्या ठिकाना, आज यहाँ, कल वहाँ...कोई काम-धाम तो है नहीं...कहाँ से खिलाऊँगा, किसी को मेरे भविष्य पर भरोसा नहीं है ...।"[39] खेद की बात यह है कि एक ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के परिवार को उसके भविष्य पर विश्वास नहीं है। अगर विश्वनाथ वह जान लेता तो शायद वह कुछ और बन जाता। समाज का हर व्यक्ति ऐसे ध्येयनिष्ठ व्यक्तियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। भाभी को बचाने के लिए उसने कहा -"हम गांधीजी के वालिंटियर है...शहर-शहर गाँव-गाँव भटकते हैं।"[40] उस रेल के सफर में सुशीला भाभी ने नागमणि की दंतकथा उसे सुनाई थी। विश्वनाथ के व्यक्तित्व को उजागर करना उनका लक्ष्य रहा होगा।

विश्वनाथ की हालत भी अब उस सर्प जैसी हो गई है। साँप अपनी मणि के बिना नहीं रह सकता है उसी प्रकार विश्वनाथ भी सुशीला भाभी से मिलने के बाद वह कई साल तक घर न गया। जीवनभर वह अकेला ही रहा। उसके जीवन के आदि और अंत में यही भेद रहा है कि आदि में देश के प्रति सुन्दर नए सपने थे, मन में उत्साह था, लगन थी और साथ ही साथ देश के लिए आत्म समर्पण की भावना थी। लेकिन अंत में केवल मोहभंग, निराशा, पीड़ा एवं उपेक्षा पीड़ित रहा।

प्रस्तुत कहानी में एक ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक पतन के द्वारा कहानीकार ने आज की प्रस्थापित शासन व्यवस्था के खोखलेपन का पर्दाफाश किया है। विश्वनाथ जैसे लोगों की इस दुर्दशा के लिए आज की राजनीति ही जिम्मेदार है।

3.4 स्त्री-पुरूष जीवन के परिवर्तित संबंध

आधुनिकता पाश्चात्य संस्कृति एवं अस्तित्वादी चिंतकों की देन है। इसके कारण सबसे बड़ा तूफान स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों को लेकर आया है। दाम्पत्य जीवन की प्राचीन मान्यताएँ समाप्त हो गई हैं। पाश्चात्य प्रभाव के कारण अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि जिससे प्रेम किया जाए उसी से विवाह भी हो और जिससे विवाह हो उससे प्रेम भी हो। आज प्रेम, करूणा, स्नेह, दया, सेवा जैसे भावात्मक पक्षों में दिखावा और कृत्रिमता आ गई है। आधुनिक जीवन परिवेश में आए हेर-फेर के फलस्वरूप पति-पत्नी के बीच संबंधों में दरकन, टूटन और अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

भौतिक मूल्य प्रधान आधुनिक युग में आर्थिक अभाव के कारण पारिवारिक सम्बन्धों में विघटन आ गया है। इस सम्बन्ध में डॉ.पुष्पपाल सिंह का कथन संगत है "मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक सम्बन्धों को बेमानी या बेमतलब का बोझ देने की रस्म भी बना रहा है।"[41] वर्तमान युग में स्त्री-पुरूष के पारिवारिक सम्बन्धों में बड़ा

परिवर्तन आ गया है। जीवन परिस्थितियाँ, मूल्य-दृष्टि और नैतिकता बोध के बदलने से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। यह परिवर्तन विवाह पूर्व और विवाहोत्तर प्रेम सम्बन्ध दोनों में दिखाई देता है।

कमलेश्वर की कहानियों में पारिवारिक रिश्तों के बदलाव को यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। कमलेश्वर ने स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों को लेकर कहानियों की रचना की हैं। इन कहानियों में प्रेम, विरक्ति, उदासीनता, घुटन, टीस, अकेलेपन, अजनबीपन, कुंठा, वेदना, आदि की अभिव्यक्ति स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के संदर्भ में हुई है। साथ ही अनैतिकता-नैतिकता, अशुभ-शुभ, विगर्हणीय-उदात्त, आदि की चिन्ता नहीं की गई है। नए कहानीकारों की कहानियों में नैतिक पक्षों का पूर्णतः विरोध हुआ है। नैतिकता का ह्रास स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में सबसे अधिक हुआ है। प्राचीन कहानी में पत्नी, रखैल एवं वैश्या आदि के रूप में स्त्री का चित्रण हुआ है। आज की कहानी में नारी पुरूष की सहगामिनी तो है ही परन्तु मित्र पहले है। उसके इसी मैत्री भाव के कारण प्राचीन नैतिक पक्ष में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है।

स्त्री-पुरूष के परिवर्तित सम्बन्धों से समाज और जीवन में बिखराव की स्थिति उत्पन्न हुई है। कमलेश्वर की कहानियों जैसे **'तलाश', 'जो लिखा नहीं जाता', 'राजा निरबंसिया', 'अच्छा थीक है', 'माँस का दरिया', 'नीली झील', 'दुःखो के रास्ते', 'ऊपर उठता हुआ मकान'** आदि में इस तथ्य को प्रामाणिक रूप से देखा जा सकता है।

राजा निरबंसिया : यह कहानी कमलेश्वर के समग्र कथा-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख रचना है। जीवन के निमर्म यथार्थ को अपनी कहानी का वर्ण्य-विषय बनाने के लिए कहानीकार ने बचपन में माँ से सुनी एक लोक-कथा का आश्रय लिया है। इस दृष्टि से मुख्य कहानी का सारांश जानने एवं प्रस्तुत करने से पहले उस प्रचलित लोक-कथा का सार-रूप जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

लोक-कथा का सारांश : एक थे 'राजा'। उनकी सन्तान न होने के कारण उन्हें 'निरबंसिया' कहा जाता था। यों उनके राज में चारों तरफ खुशहाली थी। सभी जातियों-वर्गों के लोग अपने-अपने काम-धन्धों में व्यस्त हर प्रकार से सुखी रहा करते थे। राजा अपनी रानी से बहुत प्रेम करते थे। राजा जब भी शिकार खेलने जाते, सातवें दिन अवश्य वापिस राजमहल में लौट आते। परन्तु उस बार जाकर जब सातवें दिन भी नहीं लौटे, तो चिन्तित रानी एक मंत्री को साथ लेकर उनकी खोज में निकल पड़ी। राजा को कहीं न पाकर मंत्री के साथ निराश रानी जब वापिस लौटी, तब तक राजा वापिस अपने राजमहल में पहुँच चुके थे। रानी बहुत खुश हुई, परन्तु मंत्री के साथ अकेली जाने के कारण राजा रानी से प्रसन्न न हुए। जो हो, राजा-रानी परस्पर बहुत प्रेम करते थे। बस एक ही दुःख कारण बनकर दोनों के मनों में गढ़ता रहता कि वे निसन्तान थे। वंश-नाश एवं मर्यादा-विनाश की शंका ने दोनों को बहुत व्याकुल कर रखा था।

दिन बीतते गए। एक दिन की बात है, राजा सैर के लिए सड़क पर आए। वहाँ एक मेहतरानी झाड़ू दे रही थी। राजा को देखते ही उसने यह कहते हुए झाड़ू फेंक कर, माथा पीट लिया कि "हाय ! आज निरबंसिया का मुँह देखा है, न जाने रोटी भी नसीब होगी कि नहीं !..न जाने कौन-सी विपत टूट पड़े।"[42] यह बात सुनते ही दुःखी हो राजा ने महल लौटकर मंत्री को आज्ञा दी कि मेहतरानी का घर अनाज से भर दे। फिर अपने राजसी वस्त्र ठाठ-बाट त्याग वन की तरफ चले गए। वन में जाते ही रानी को रात में सपना आया कि अगली रात उसकी मनोकामना पूरी होने वाली है। इसमें राजा के चले जाने पर रानी को बड़ा पछतावा हो रहा था। सेवा करने वाली लटियारिन का वेश बदल कर रानी राजा को खोजती हुई उस सराय में जा पहुँची, जहाँ गृहत्यागी राजा टिके थे। उसने वह रात राजा के साथ बिता उनकी हर तरह से सेवा की। अगली सुबह राजा के जागने से पहले ही वह वहाँ से चलकर वापिस अपने महल में आ गई। जागने के बाद राजा भी कहीं और चले गए। दो दिन में ही सारे राज्य में राजा के कहीं चले जाने का समाचार फैल गया।

कई साल बीत गए। परदेश से बहुत सारा धन कमा, उसे गाड़ी में लादे राजा अपने देश में लौट आए। इससे पहले कि राजा महल में पहुँच पाते, उनकी गाड़ी का पहिया एक झाड़ी में फँस गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब पहिया झाड़ी से निकल न सका, तो एक पण्डित ने राजा को बताया कि 'संकट' के दिन में पैदा हुआ बालक अगर अपने घर से सुपारी लाकर गाड़ी को छुआ दे, तो पहिया झाड़ी से निकल आएगा, अन्यथा नहीं। वहाँ खेल रहे दों बालकों ने जब यह बात सुनी तो कूदकर वहाँ पहुँच कर कहने लगे - अगर आधा धन हमें देने का वचन दो, तो 'संकट' के दिन पैदा होने के कारण हम घर से सुपारी लाकर तुम्हारी गाड़ी को छुआ कर उसे झाड़ी से निकाल देंगे।"[43] राजा के स्वीकार कर लेने पर लड़के घर से सुपारी ले आए और गाड़ी को छुआ दी। फिर अपने घर की राह बताते हुए गाड़ी को महल तक ले आए। अपने महल में दों बालकों के होने की बात से चकित राजा जब भीतर पहुँचे, तो उन्हें देखकर रानी बहुत प्रसन्न हुई। जब राजा को बताया गया कि वे उनकी सन्तानें हैं तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। दुःखी और निराश रानी ने अपने कुलदेवता के मन्दिर में पहुँचकर घोर तपस्या शुरू कर दी। ताकि अपने सती होने का प्रमाण दे सके।

राजा ने देखा कि रानी की तपस्या से प्रसन्न होकर कुल देवता ने उन बालकों को पुनः नवजात शिशुओं के रूप में बदल दिया। यह सब देखकर विश्वास और श्रद्धा से भर कर राजा ने रानी के चरण पकड़कर कहा -"तुम देवी हो ! ये दोनों मेरे ही पुत्र हैं।"[44] उसके बाद पुनः राजकाज सम्भालकर राजा-रानी सुख चैन से रहने लगे। राजा ने रानी के नाम से सुन्दर भव्य मंदिर बनवाया, दूसरे राज्य के सिक्कों पर बड़े राजकुमार का नाम अंकित करवाकर वे राज्य भर में प्रचलित करवाए, ताकि सभी को पता चल सके कि राजा का उत्तराधिकारी जन्म ले चुका है। अब वह 'निरबंसिया' नहीं रह गया है।

इस लोक-कथा के अंशो का बीच-बीच में पृष्ठभूमि या आधार के रूप में प्रयोग करके कहानीकार कमलेश्वर ने जो जीवन के यथार्थ पर आधारित आज की कहानी रची है, उसका सारांश कुछ इस प्रकार है -"कहानी 'राजा निरबंसिया' के जगपती और चंदा का वैवाहिक जीवन पर-पुरूष बचन सिंह की आर्थिक सहायता लेने की वजह से टूट जाता है। रिश्ते के भाई की शादी में कस्बे गए, जगपति वहाँ घटित ड़कैती में बुरी तरह घायल होकर अस्पताल पहुँच जाता है। 'अर्थ' की तंगी के कारण चन्दा अस्पताल में उसका इलाज ठीक तरह से न कर सकी। चन्दा के यौवन से आकृष्ट बचनसिंह जगपती का ठीक-ठाक इलाज करने लगा। जगपती ने शक के कारण बचनसिंह की सहायता में रोक लगाना चाहा तो चन्दा ने कहा -"ये दवाईयाँ किसी की मेहरबानी नहीं है, मैंने हाथ का कड़ा बेचने को दिया। उसी से आई हैं।"(45) चन्दा ने पति को बचाने के लिए पहली बार झूठ कहा। लेकिन फिर अपने बचाव के लिए झूठ कहना पड़ा। बचनसिंह ने जगपती की आर्थिक लाचारी का लाभ चन्दा के यौवन से उठाया। चन्दा को अपने पति की दवाइयों के बदले भारी कीमत चुकानी पड़ी। जगपती सब कुछ जानते हुए भी अनजान बना रहा। यों दोनों के बीच अनजाने ही दरारे पड़ने लगीं।

जगपती ठीक होकर गाँव आ गया तो घर में तेल नहीं होने पर वह जल उठा "तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा... न तेल...न।"(46) जगपती ने आज पहली बार उसके व्यर्थ मातृत्व पर गहरी चोट कर दी। बचनसिंह भी तबादला होकर मैनपुरी आ गया था। खबर पाकर जगपती एक ओर संतुष्ट था तो दूसरी ओर चन्दा को लेकर असन्तुष्ट था। उसी दिन, रात जगपती को पता चला कि चन्दा ने दवाइयों का इन्तजाम कड़े बेचकर नहीं किया है। उसने असलियत जानने के बदले उसी कड़े के सहारे जीना चाहा क्योंकि उसकी नौकरी छूट गई थी अर्थात् 'अर्थ' के सामने वह हार गया। यह तो उसकी पहली हार थी, फिर लगातार हारता रहा। पर जगपती पर 'अर्थ' हावी हो गया था। उसे केवल अर्थ चाहिए था। यह चन्दा के कड़े या शरीर बेचकर वह हासिल करना चाहता था। चन्दा को बचनसिंह से केवल जगपती ही बचा सकता था लेकिन उसने ऐसा न किया। असल में चन्दा के जीवन की बरबादी तथा वैश्या सा बनाने का जिम्मेदार जगपती ही था। यह तो जगपती की मजबूरी ही है, क्योंकि विवाहित व्यक्ति अगर बेकार, असहाय और गरीब है तो वह कर भी क्या सकता है ? दो ही राह हैं, एक तो पत्नी के संग खुद-खुशी करना, दूसरा पत्नी को बेचना या किसी के साथ सौदा करना। जगपती ने विवशता के कारण दूसरी राह अपनाई।

बचनसिंह की आर्थिक सहायता से जगपती ने लकड़ी का टाल खोल दिया। एक दिन उसे पता चला कि चन्दा गर्भवती बन गई है। उसने बचनसिंह को घर में जो खुली छूट दी थी उसका यही परिणाम निकला। आज उसे पहली बार अपनी गलती का एहसास हुआ। चन्दा ने घर छोड़कर गाँव जाने का निश्चय किया। चन्दा के जाने के बाद जगपती बिलकुल टूट गया। वह अपने जीवन की बरबादी पर पछताने लगा। इस बीच उसे खबर मिली कि चन्दा माँ बन गई तथा वह किसी दूसरे के घर बैठने वाली है।

'कर्ज' का विरोध करने वाला जगपती अन्त में कर्जों के जाल में फँस गया - तन से, मन से, पैसे से और इज्जत से।

अंत में जगपती आत्महत्या करने का निश्चय करता है। उसने मरने से पहले दो पत्र लिखें। एक पत्र चन्दा के नाम लिखा -"चन्दा, मेरी अंतिम चाह यही है कि तुम बच्चे को लेकर चली आना...अभी एक दो दिन मेरी लाश की दुर्गति होगी, तब तक तुम आ सकोगी। चन्दा, आदमी को पाप नहीं पश्चाताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना।"[47] दूसरे पत्र में उसने कानून के लिए लिखा -"किसी ने मुझे मारा नहीं ...किसी आदमी ने नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरे जहर की पहचान करने के लिए मेरा सीना चीरा जाएगा। उसमें जहर है। मैंने अफीम नहीं, रूपये खाए हैं। उन रूपयों में कर्ज का जहर था, उसी ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलाई जाए , जब तक चन्दा बच्चे को लेकर न आ जाए। आग बच्चे से दिलवाई जाए। बस ।"[48] इस प्रकार 'राजा निरबंसिया' कहानी समाप्त हो जाती है।

'नई कहानी' समाज व व्यक्ति को भिन्न कोणों से परखती है। इसी प्रकार 'राजा निरबंसिया' कहानी का कथ्य भी समाज में आये परिवर्तन का व्यक्ति के जीवन पर और व्यक्ति के जीवन में आये परिवर्तन को समाज के सत्य के साथ व्यंजित करता है। जगपती और चन्दा की कहानी कथ्य के विभिन्न कोणों को रेखांकित करती है। दोनों के दाम्पत्य जीवन में आई दरार, आर्थिक समस्याओं के कारण आया तनाव, समाज का तिरस्कार और स्वयं जगपती के मन में घर कर गई ग्रन्थियाँ व्यक्त हैं। बेकारी की समस्या से भविष्य तो अंधकारमय होता ही है, वर्तमान भी विकट हो उठता है। परिवार वाले भी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। बाद में जिस कीमत पर जगपती को बचन कम्पाउण्डर से कर्ज मिलता है वहीं उसके दुर्भाग्य का कारण बन जाता है। दूसरा चित्र चन्दा का भी है। उसके द्वारा लेखक ने नारी में आये आधुनिक मध्यवर्गीय परिवर्तित मूल्यों को उठाया है। चन्दा व्यवहारिक पक्ष में प्रबल हो उठती है। जिस पुरूष से उसे न पैसा मिलता है न ही पुत्र, उसे वह छोड़ देती है। यहाँ जगपती परित्यक्त होने की पीड़ा झेलता है। चन्दा को आदर्शमयी, गरिमामयी चित्रित करने का लेखक का किंचित भी प्रयास नहीं है। बल्कि चन्दा द्वारा परिवर्तनकामी नारी प्रस्तुत हुई है। प्राचीन कहानी (लोक कथा) पर आधृत राजा की कहानी अविश्वसनीय तथा अति तत्वों से संबलित है। राजा की कहानी का अंत संगत नहीं लगता। कहानी का ध्यान उद्धिष्ट पर था। वहीं जगपती की कहानी का झुकाव सामयिक यथार्थ के प्रस्तुतीकरण पर केन्द्रीत है। संश्लिष्ट कथा नये और पुराने जीवन के समानान्तर सत्य की साक्षी है। 'राजा निरबंसिया' कहानी के संबंध में 'सुभाष पन्त' का कथन है -"राजा निरबंसिया' ने जहाँ एक ओर शिल्प के स्तर पर नया कीर्तिमान स्थापित किया है वहीं कथ्य के स्तर पर भी यह एक शाश्वत रचना है। इसे मात्र पारिवारिक टूटन की कहानी मानकर इसका मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। 'राजा निरबंसिया' के जगपती की टूटन के पीछे व्यवस्था-जन्य सांस्कृतिक और आर्थिक कारण मौजूद हैं। दरअसल यह कहानी

अपनी सीमा और संभावना में एक जनवादी कृति है जिसमें आर्थिक स्तर पर टूटते आदमी की सच्ची तस्वीर है, न कि दाम्पत्य के बिखराव की एकांगी और निजी कहानी।"[49]

देवा की माँ : यह कहानी कमलेश्वर की बहुचर्चित कहानियों में से एक है। 'देवा की माँ' परम्परागत रूढ़ियों से असंपृक्त होकर अपने अस्तित्व को अपनी निगाहों से समझने का प्रयास करने वाली पत्नी की कहानी है। देवा की माँ एक परित्यक्ता नारी है। उसके पति ने उसे छोड़कर किसी दूसरी स्त्री के साथ शादी कर ली है। अभी तक उसने पति के प्रति न कोई आक्रोश प्रकट किया और न उसका विरोध किया। वह पति से अलग रह कर दरियाँ बुनकर जीवन निर्वाह करती है। माँ अपना पेट काटकर देवा का पालन-पोषण करती रही। साल गुजरते रहे और देवा जवान बनता गया।

एक दिन माँ को पता लगा कि देवा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हो गया है। सजा तो एक साल की है। लेकिन दो सौ रूपये जुर्माना लगाएँ तो आधी सजा कट सकती है। देवा की माँ ने तुरन्त ही अपने पति को चिट्ठी लिखी। चिट्ठी ले जाने वाले से उन्होंने केवल इतना ही कहा -" मुझसे पूछकर और मेरी मरजी से देवा चलता होता तो मैं अपना सिर भी रोपता; उसका क्या ठिकाना, आज छुड़ाया कल फिर चला जाएगा।"[50] पिता की इस उपेक्षा से माँ का कलेजा टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। उसे अब असलियत मालूम हो गई तो उस पुरूष के प्रति उसके दिल में घोर विरक्ति हो गई। इस छल का प्रतिशोध उसने अपना सुहाग तुलसी के बिरवे पर चढ़ाकर किया। "उसने डिबिया खोली थी और सारा सिन्दूर तुलसी की नीली-नीली पत्तियों पर बिखेर कर अपना सुहाग उसे सौंप, सजल नयनों से उस बिरवे को ताकती रही थी।"[51] उसने अपने बूते पर जीने का निश्चय किया। अब तक वह भावनावश पति से जुड़ी हुई थी और उसकी यादों के सहारे जीवन बिताती रही थी।

साल भर बाद देवा वापस घर आ गया। माँ उसे पाकर अत्यंत खुश थी। देवा ने माँ में भारी परिवर्तन महसूस किया। देवा से पिता की बीमारी की खबर पाकर वह चुप रही। उसने कभी पति को देखने का आग्रह न प्रकट किया या बेटे को न जाने दिया। उसकी बातों में उसके दृढ़ निश्चय का आभास होता है "मैं नहीं जाऊँगी...। तो मैं चला जाऊँ ? देवा सहसा कह गया। नहीं....माँ ने उसी दृढ़ता से कहा।"[52] अन्त में उसे अपने अस्तित्व का एहसास हुआ। इसलिए ही वह अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर परिवेश के साथ समझौता करके जीवन बिताने का निश्चय कर लेती है।

इस कहानी का केन्द्रीय पात्र देवा की माँ है। इस पात्र ने कहानी में उभरकर स्वातंत्र्योत्तर नारी के संघर्ष व अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। बिखरे हुए दाम्पत्य जीवन और परित्यक्ता की व्यथा झेलती हुई, हाथों में घड़ी लिए उज्जवल भविष्य के प्रति प्रतीक्षारता रहती है। पति द्वारा उपेक्षिता होने पर वह अपने नारीत्व का संतोष पत्नीत्व में न पाकर मातृत्व में ढूँढ़ती है।

कमलेश्वर ने इस कहानी में नई कहानी में उल्लेखित मूल्यों के संक्रमण के दौर का खूबसूरती से चित्रण किया है। देवा की माँ का स्वनियन्त्रित मूल्यों को तोड़ने का फैसला ही कहानी का अंत है। 'देवा की माँ' चाहे द्वन्द्व को प्रस्तुत करती है, परन्तु उसका बीमार पति को न देखने जाना एक प्रकार से भारतीय नारी का विरोध या विद्रोह ही बनकर उभरा है। कहानी का अंत एक निर्णायक संकेत है। इस कहानी का कथ्य स्वातंत्र्योत्तर नारी के मूल्य-संक्रमण का चित्र प्रस्तुत करता है।

तलाश : कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी का कथ्य नारी के परिवर्तित रूप को चित्रित करता है। आज-कल माँ-बेटी के परम्परागत सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं तथा इन्हें नए सम्बन्धों की तलाश है। इस कहानी में कमलेश्वर ने एक विधवा के जरिए पारिवारिक, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों में आए बदलाव को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सुमी बीस साल की एक शिक्षित युवती है और ममी उन्तालीस साल की है। सुमी टेलीफोन में काम करती है और ममी कॉलेज में पढ़ाती है। आठ वर्ष पूर्व पति की मृत्यु हो गई थी। अब ममी आठ बरस के अकेलेपन से छुटकारा पाने की कोशिश में लगी हुई हैं। सुमी की ममी को अपनी अस्मिता की तलाश है। वह वैधव्य को दुर्भाग्य मानकर देह और मन की कामनाओं का दमन नहीं करती। बल्कि नारी की प्राचीन परम्परा से मुक्त छवि प्रस्तुत करती है। ममी में आए परिवर्तन के संकेतों से कहानी शुरू होती है। मिस्टर चन्द्रा के साथ उसका दैहिक सम्बन्ध सांकेतिक ढ़ंग से व्यक्त हुआ है। सुमी की मम्मी के रूप में एक पढ़ी लिखी नारी (प्राध्यापिका) के रूप में भारतीय नारी के रूप को दो कदम समाज में आगे बढ़ा हुआ दिखलाया गया है। व्यक्ति स्वतंत्रता के मूल्य की स्थापना से पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों में अन्तर आ गया है। मुक्ति की कामना का प्रभाव सम्बन्धों में बिखराव व फैलाव को जन्म देता है। मम्मी और सुमी के साथ-साथ रहते हुए भी सम्बन्धों में पानी का रेला आ जाता है। परिवार के साथ और बीच रहकर भी कट जाना पड़ता है। सुमी भी आधुनिक मूल्य का आधुनिक रास्ता अपनाती है। वह है हॉस्टेल में जाकर रहना। सुमी उसे स्वीकार कर लेती है। और यहीं पर परिवर्तित कहानी रेखांकित है - मनुष्य अपने लिए स्थिति का चयन करता है। अकेलेपन की यातना का स्वर ममी और सुमी दोनों में समान रूप से ध्वनित होता है।

कमलेश्वर की यह रचना मानव-मानव के पारस्परिक खो चुके या खो रहे सम्बन्धों को तलाशने, उन्हें फिर से प्रतिष्ठित करने के प्रयास की कहानी है। पारस्परिक सम्बन्धों को जोड़ने वाले कुछ सूत्र हुआ करते हैं। उनके टूट जाने पर रिश्ते भी यदि टूट बिखर नहीं जाते तो इन स्थितियों तक पहुँचते हुए अवश्य दिखाई देने लगते हैं। सम्बन्धों के बिखराव का कारण कई बार आयु, व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक आवश्यकताएँ उन्हें पूरा करने के लिए बीच में विद्यमान पारिवारिक-सामाजिक वर्जनाएँ आदि भी बन जाया करते हैं।

आलोच्य कहानी सम्बन्धविहीनता और पुनः उसकी तलाश की इसी प्रकार की स्थितियों विशेष करके दुराव भरी मानसिकताओं को आधार बनाकर रची गई है।

उपर उठता हुआ मकान : प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर ने पति-पत्नी के बीच के झगड़े एवं मिलन का अत्यंत रोचक चित्र खींचा है। कमलेश्वर ने तनाव का केन्द्र वृद्ध दम्पत्ति को चुना है। मुरारी बाबू की शादी गौरी के साथ हुई थी। लेकिन यह तो मुरारी बाबू की मर्जी के अनुसार नहीं था। इसलिए शादी के बाद वह रूठकर अकेला जसवंतपुर चला गया। आखिर विवश होकर उसके पिता जाकर जसवंतपुर से मुरारी बाबू को जबरदस्ती ले आया। उसके बाद सब कुछ धीरे से बदलने लगा। जब वह वहाँ से आ गया तब उसके साथ वैद्य भी सपरिवार गाँव आ गया। अब पैंतालीस वर्ष बीत चुके हैं। फिर भी वैद्य की पत्नी की शंका गौरी के दिल को उकसाती है।

मुरारी बाबू और गौरी का इकलौता बेटा था किशन। वह सपरिवार कानपुर में रहता था। मुरारी और गौरी हर माह अपने बेटे के भेजे मनीऑर्डर का इंतजार करते हैं। मुरारी अपने बेटे की गैरजिम्मेदारी पर सदा बिगड़ता था क्योंकि वह केवल रूपया भेजता था कभी हाल-चाल पूछने के लिए न आता था। एक दिन मुरारी और गौरी के बीच गंभीर झगड़ा हो जाता है। जिसके चलते गौरी किशन के पास कानपुर चली जाती है।

गौरी के जाने के बाद मुरारी उदास रहने लगा। पिता ने सोचा कि बेटा उन्हें भी वहाँ बुला लेगा लेकिन ऐसा नहीं होता। एक दिन अचानक गौरी , बेटे और परिवार के साथ आ गई तो वह स्तब्ध रह गया। वे दोनों अत्यंत सन्तुष्ट दिखाई पड़े। अपने पति के पास वापस आने से गौरी बहुत खुश होती है और रात में वह अपने पति से इतना ही पूछ पाई "कोई तकलीफ तो नहीं हुई।"(53)

दुःखों के रास्ते : आलोच्य कहानी तीसरे व्यक्ति के आगमन से पति-पत्नी सम्बन्ध में आए विघटन को प्रस्तुत करती है। इस कहानी में बलराज और ललिता के दाम्पत्य जीवन का बिखराव अंकित है। बिखराव का कारण है बलराज का मित्र वीरेन्द्र। कमलेश्वर ने इसी बोध को लेकर 'तीसरा आदमी' और 'वही बात' उपन्यास की रचना भी की है। कहानी बलराज, वीरेन्द्र एवं ललिता के त्रिकोण को प्रस्तुत करती है।

ललिता ने बलराज के साथ जिन्दगी का लंबा सफर तय किया। फिर भी वह उस से पूर्णरूप से जुड़ नहीं पाई। ललिता बलराज से तलाक लेकर वीरेन्द्र से विवाह कर लेती है। किन्तु वीरेन्द्र से जुड़कर भी ललिता अधूरेपन के एहसास से पीड़ित है क्योंकि वह अपने अतीत से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती। इस सम्बन्ध में श्रीकांत वर्मा ने अपने लेख में लिखा है -"अपने को स्वीकार करते हुए दूसरों को स्वीकार न कर पाना ही सबसे बड़ी विडम्बना है। मगर इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि हम दूसरे को न तो पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं न पूरी तरह अस्वीकार। इस स्वीकार और अस्वीकार के

बीच एक भयानक छटपटाहट है और यही आज के स्त्री-पुरूष की नियति है।"[54]

जो लिखा नहीं जाता : इस कहानी में भी कमलेश्वर ने तीसरे व्यक्ति के आगमन से पति-पत्नी सम्बन्ध में आए विघटन को प्रस्तुत किया है। इसमें तीसरे व्यक्ति की बातों से शक के धरातल पर सम्बन्ध विच्छेद होता है।

कहानी में सुदर्शना और महेन्द्र पति-पत्नी है। दोनो का दाम्पत्य जीवन सुख-सन्तोषपूर्ण था। महेन्द्र को जब सुदर्शना के पूर्व प्रेमी का पता चलता है तब से सुदर्शना के प्रति उसका भावात्मक सम्बन्ध मन्द पड़ने लगा। सुदर्शना पति के ऐसे व्यवहार और विचार को स्वीकार नहीं कर पाती क्योंकि वह परम्परागत धारणा या मान्यता नहीं मानती कि जीवन भर पति के साथ जुड़कर जिन्दगी जिए। इसलिए वह पति का घर छोड़कर पिता के घर वापस आ गई।

पाँच साल बीत जाते हैं, वह फिर भी कभी वापस नहीं गई। उसका कथन है -"कोई खास वजह तो नहीं...यही समझ लो कि हम दोनों बहुत अच्छे हैं और एक-दूसरे को तकलीफ नहीं दे सकते।"[55] पिता की मृत्यु की खबर पाकर महेन्द्र और चन्दर दोनों आए। दोनों से वह अच्छी तरह पेश आती है, लेकिन इन में से किसी को भी पाना वह नहीं चाहती क्योंकि वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहती है।

लेखक ने सुदर्शना के माध्यम से आधुनिक नारी का चित्रण किया है। और उसकी जटिल स्थिति को भी उजागर किया है। इस कहानी में द्वन्द्व, सम्बन्धों को जबरदस्ती ओढ़ने का प्रतिवाद भी व्यंजित हुआ है। इस कहानी के सम्बन्ध में कमलेश्वर जी लिखते है "स्पन्दित जीवन खण्ड़ के रूप में यह कहानी आज भी धड़क रही है।"[56]

दूसरे : कमलेश्वर की सामाजिक यथार्थ का गहरा स्पर्श करती हुई एक और कहानी है 'दूसरे'। इस कहानी में सुनीता के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विवशता व्यक्त हुई है। आर्थिक विवशता के कारण सम्पूर्ण परिवार के 'बेचारे' बन जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण भी हुआ है।

कहानी के आरंभ में ही घर की बड़ी सुनीता की बेकारी का उल्लेख है। कठिनाई में उसने बी.ए कर लिया। नौकरी मिल जाने पर घर की हालत सुधारना तथा औरों के निर्णयों से मुक्त हो जाना भी वह चाहती है लेकिन इसकी सम्भावना तो नहीं है। उसकी तत्कालिक नौकरी खत्म होते ही घर वाले उसकी शादी की बात सोचते हैं। सुनीता जल्दी शादी नहीं करना चाहती क्योंकि "सपने बहुत से हैं...सर्विस मिल जाए तो धीरे-धीरे सब पूरे जाएँगे।.. वह अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी को अपनी तरह ढाल सकें। भाई बहनों को भी मर्जी के मुताबिक सम्मानित जिन्दगी दे सकें। ..भाई-बहन पूरी फीस लेकर स्कूल जा सके और माँ मुहल्ले की औरतों से जी खोलकर बात कर सके, दु:ख-सुख में खुले दिल से शामिल हो सके।"[57]

सुनीता के मन की चाह में मध्यवर्गीय परिवार के अभावों एवं विवशताओं का यथार्थ झलकता है। विडम्बना यह है कि ये तो केवल सपना देखने को विवश है। बेकारी की वजह से जिन्दगी का भरोसा छूट गया। इन अभावों से उसे लगता है कि घर में कोई अनजान 'दूसरा' दाखिल हो गया है और उन्हीं के इशारे पर सब कुछ होता है। अपनी आजादी एवं व्यक्तित्व के सिवा कुछ हासिल होने लगा कि अदृश्य दूसरे ने घर मात्र में नहीं उस पर भी अधिकार जमा लिया है। अन्त में बेचारी सुनीता को अपनी शादी के मामले में भी औरों के फैसले को मानना पड़ता है। "उसने जैसे किसी दूसरे की आवाज में कहा था -जैसा आप लोग ठीक समझे।"(58)

आर्थिक मजबूरियाँ सुनीता जैसी स्वतंत्र नारी के हक को चूर करती है। इस कहानी में नारी की परमुखापेक्षित की स्थिति का चित्रण है। उस सामाजिक व्यवस्था को क्या कहा जाए जहाँ एक डिग्रीधारी सुशिक्षित नारी का दो-सवा-दो सौ रूपये की पक्की नौकरी पाने का सपना भी पूरा नहीं हो पाता और इसीलिए अपनी जिन्दगी का फैसला करने का अधिकार भी उसके पास नहीं रह जाता। आर्थिक विपन्नता के कारण किस प्रकार अदृश्य रूप से परिवार में दूसरे लोग घुस आते हैं और उसके सारे फैसले अपने हाथ में ले लेते हैं। आर्थिक अनिश्चिंतता की स्थिति में किस प्रकार घर 'और बेचारा' होता है, किस प्रकार उस पर दबाव बढ़ते जाते हैं और किस प्रकार ये दबाव परिवार के सदस्यों को संत्रस्त करते हैं - इस सबका मार्मिक चित्रण सामाजिक चेतना के स्तर पर 'दूसरे' में अपनी सम्पूर्ण प्रभावशालिता और सहजता के साथ सम्पन्न हुआ है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

या कुछ और (अक्तूबर 1969) : आज के युग में व्यक्ति के पास भरा-पूरा परिवार, पत्नी, बच्चे, सब होने पर भी उसे अपनी सार्थकता महसूस नहीं होती। उसे लगता है कि क्या वह यह सब चाहता है ?..या कुछ और ? पति जब पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से बंधता है तो इसके कई कारण हो सकते हैं। लेकिन स्वतंत्रता के बाद में पति के विवाहोत्तर सम्बन्धों को आधार बनाकर जो कहानियाँ लिखी गई हैं उनमें अधिकांशतः पति अपनी ऊब को मिटाने के लिए तथा मन पर व्याप्त निरर्थकता बोध से छुटकारा पाने के लिए ही विवाहोत्तर सम्बन्ध रखते हैं। दो व्यक्ति लम्बे अरसे तक परस्पर मिलते रहें तो उनमें मोह हो जाना स्वाभाविक ही है। लेकिन जब व्यक्ति इस 'मोह' को अर्थ देने की कोशिश करता है तब यह अस्वाभाविक लगने लगता है। कमलेश्वर की 'या कुछ और' कहानी में इस स्थिति का एहसास प्रकट होता है।

प्रस्तुत कहानी का रामनाथ पत्नी, ब्याहने योग्य बेटी और जवान पुत्र के समक्ष रहते ही शकुंतला नामक औरत से सम्बन्ध रखता है। पहले वह केस के सिल-सिले में वहाँ आया करता था। फिर वह रोज आने लगा। आने का कोई विशेष मतलब नहीं। "गली से निकलते ही वह शकुन्तला के घर के सामने होता था। सिवा इस ख्याल के कि वह वहाँ आने के लिए तो नहीं निकला था...पर वह हमेशा यही पहुँचता था।"(59)

शकुन्तला का आदमी बारह साल पहले मर गया था। वह अकेली थी। उस अकेलेपन ने रामनाथ को वहाँ रोज आने को मजबूर किया। इस वजह से रामनाथ की पत्नी रोज बड़बड़ाती रहती है जो पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध में अलगाव पैदा करता है। लेकिन उसे करनी में 'गलती' का कोई एहसास न हुआ। इसलिए रामनाथ हर वक्त अपने को बेकसूर साबित करने का प्रयास करता रहा। रामनाथ की बेटी आरती का विवाह है। परन्तु शकुन्तला को नहीं बुलाया जाता है। यही पर कहानी मुड़ती है। रामनाथ विवाह के समय उसी शकुन्तला के पास चला जाता है। एकाएक उसे लगता है कि उसके निजत्व को सार्थकता मिली है, जब झख मारकर रामनाथ की पत्नी शकुन्तला को बुलावा भेजती है और उसी के हाथों कन्यादान की रस्म कराने का संदेशा भेजती है।

कहानी कई आयम खोलती है। शकुन्तला का आरती की शादी में शामिल होना रामनाथ को अपनी सार्थकता का एहसास दिलाती है। आज के व्यक्ति की मन की घबराहट, बाहर भीतर की व्याकुलता व्यक्त हुई है, रामनाथ अकेला ही नहीं है। कई लोग यह यातना झेलते हैं। इस प्रकार 'अनाम सम्बन्ध' के नाम पर दाम्पत्य जीवन में अतृप्ति एवं अलगाव का दर्शन प्रस्तुत कहानी में किया गया है।

"अच्छा, थीक है ..." : 'अच्छा, थीक है ....' में कुछ भी ठीक नहीं है। इस कहानी में कमलेश्वर ने अर्थ के कारण बिगड़ते पति-पत्नी सम्बन्ध को महानगरीय संदर्भ में उभारने का प्रयास किया है। लेखक ने नारी के स्वच्छंद जीवन पर प्रकाश डाला है। 'अर्थ' के आगे सब कुछ अर्थहीन है चाहे वह पति-पत्नी सम्बन्ध हो या अन्य कोई भी सम्बन्ध हो। जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए असली पति को छोड़कर सम्पन्न पुरूष को अपनाने वाली पत्नी का स्वरूप इस कहानी में उद्घाटित हुआ है।

चन्द्रशेखर सिंह कॉलेज की प्राध्यापकीय नौकरी छोड़कर एक प्राइवेट कम्पनी में काम करने लगे। उस कम्पनी के मालिक थे 'खेमराज'। उन्होंने पलक झपकते ही एक सलतनत बनवाया। उनकी सेक्रेटरी थी विभा, जो चन्द्रशेखर सिंह की पत्नी थी। अब चन्द्रशेखर सिंह अपनी पत्नी और पुत्र साहिल के साथ कम्पनी के गेस्ट हाउस में रहते थे। खेमराज ने विभा को अपनाना चाहा। लेकिन एक दोहरी जिन्दगी जीना वह नहीं चाहती थी। खेमराज विभा को किसी भी कीमत पर अपनाने का प्रयत्न करता रहा। अन्त में उन्होंने बाजी जीत ली। विभा ने अपने पति को छोड़कर खेमराज के साथ जीना आरम्भ किया। चन्द्रशेखर सिंह अकेले रह गए और उसे कम्पनी की नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

एक बार चन्द्रशेखर सिंह अपने बच्चे को देखने के लिए हिल स्टेशन के बोर्डिंग स्कूल में पहुँच गए। स्कूल की अध्यापिका से पता चला कि साहिल कल बोर्डिंग स्कूल आ जाएगा। अगले दिन साहिल माँ के साथ वहाँ आ गया तो चन्द्रशेखर ने स्कूल के सामने बस स्टैंड पर खड़े होकर बेटे को देख लिया। उस वक्त साहिल बहुत रो रहा था और उसकी माँ भी रो रही थी।

साहिल अपनी माँ से तुतलाते हुए पूछता ही जा रहा था "मुझे त्यों छोल के जा रही हो ?"[60] बेचारा साहिल अपने माँ-बाप के साथ रहना चाहता है। अगर बाप नहीं है तो माँ को साथ होना चाहिए। पर यहाँ माँ विवश है क्योंकि जिस सुख की खोज में वह सब कुछ, तोड़कर निकल गई थी उसके लिए उसे शायद भारी कीमत चुकानी पड़ी होगी। अब वह जरूर पश्चाताप का अनुभव कर रही होगी। इसलिए ही उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

बेटे की बातें सुनकर माँ ने मजबूर होकर उसे डाँटा -"साहिल ! ज्यादा जिद करेगा तो मार खायेगा। तुझे आण्टी के पास रहना है और यहीं पढ़ना है समझा।"[61] माँ की बातों को सुनकर उसने कहा -"अच्छा थीक है।"[62] वह अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों पर अपने ही आँसू के निशान देखकर खड़ा रह गया। साहिल की मजबूरी और विवशता ही उससे यह कहलवा रही है। जबकि हकीकत यह है कि नन्हे से साढ़े तीन वर्ष के बालक का बाल्यापन उससे लूटा जा रहा है। परन्तु वह यह कहने को विवश है कि सब ठीक है।

माता-पिता द्वारा भोगवादी संस्कृति की गुलामी स्वीकार कर लेने वाले बालक की यह नियति है। नारी के उन्मुक्त जीवन का परिणाम भुगतना पड़ता है उसकी संतान को। आज की सुविधाभोगी एवं ऐशपरस्त जिन्दगी में जीने की आकांक्षी स्त्री के विवाह विच्छेद की त्रासदी झेलनी पड़ती है उसके बच्चे को। अधिक से अधिक पाने की होड़ में स्त्री-पुरूष अपने कर्तव्य से विमुख होने जा रहे हैं। साहिल की माँ विभा साहिल को ढेरों खिलौने दे सकती है, रूपया पैसा दे सकती है, उसके लिए आया रख सकती है, अच्छे होस्टल में रख सकती है। परंतु उसे अपने दूसरे पति के पास नहीं रख सकती। उसे हॉस्टल के कमरे के सूने पलंग पर कोमल आयु में अकेला बिलखने को छोड़ जाती है। बार-बार एक ही वाक्य सालता है -"मम्मी बताओ न, मुझे त्यों छोल के जा रही हो ?"[63] इस सवाल का जवाब न विभा के पास है, न चन्द्रशेखर के, न समाज के पास, न ही नये पिता के पास। बच्चे का प्रश्न झकझोरता है।

पश्चिमी जीवन की चकाचौंध से चमत्कृत, भारतीय समाज भी अब धीरे-धीरे उसी नक्शे कदम पर चल रहा है। प्रश्न है कि क्या यह ठीक है ? जवाब तो किसी के पास नहीं। महाजनी सभ्यता का विकास और दोगली अर्थव्यवस्था अपनी प्रवंचना में नवधनाढ्य वर्ग खींचती है।

यह उल्लेखनीय है कि 'राजा निरबंसिया' (1957) जैसी महत्वपूर्ण कहानी से लेकर अब तक लिखी गई उनकी तीन सौ कहानियों में कहीं कोई रचनात्मक दोहराव नजर नहीं आता। कमलेश्वर की कथायात्रा कभी तालाब के ठहरे पानी की तरह रूकी नहीं रहती थी, बल्कि वह नदी के जल की तरह नये क्षितिजों के अन्वेषण में दौड़ती रही। कमलेश्वर ने खुद स्वीकार किया था -"मेरे लिए कहानी निरन्तर परिवर्तित होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया है।"[64] सामाजिक एवं पारिवारिक संपृक्ति और नए सवालों और सरोकारों से जुड़ी कमलेश्वर की कहानियाँ उनके पाठकों से नजदीकी रिश्ता

इसलिए बना लेती हैं कि इनमें वे अपनी यातना, लड़ाई, कुंठा, और सपनों की मिसमार होती तस्वीरें देखते हैं।

कथ्य के साथ शिल्प भी कमलेश्वर की कहानियों का सशक्त पक्ष रहा है। उनकी भाषा में आया लोकतत्व उन्हें रेणु, मार्कण्डेय के समकक्ष रखता है। कमलेश्वर के कथा साहित्य के शिल्प पक्ष का सम्यक विश्लेषण अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है। कहना न होगा कि प्राचीन नवीन शिल्प का संगम उनकी कहानियों की अन्यतम गुणवत्ता रही जिससे दोहरे, चौहरे साम्यमूलक, वैषम्यमूलक, 'कथ्य' को प्रस्तुत करती कहानियाँ प्रभान्विति में श्रेष्ठ बन पड़ी हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रदीप मांडव (सं)	: विरासत के अलम्बरदार, कमलेश्वर	पृ.195
2. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.107
3. कमलेश्वर	: अपनी निगाह में (लेखक कमलेश्वर : दुष्यंत कुमार की नजर में)	पृ.79
4. प्रदीप मांडव (सं)	: पामेला चीमा को दिए गए साक्षात्कार से	पृ.239
5. कमलेश्वर	: 'राजा निरबंसिया' : भूमिका	
6. अरूणा गुप्त	: छठें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	पृ.145
7. कमलेश्वर	: 'गर्मियों के दिन'	पृ.126
8. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.129
9. रामदरश मिश्र	: कमलेश्वर की कुछ कहानियाँ	पृ.125
10. कमलेश्वर	: 'मुरदों की दुनिया'	पृ.206
11. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.90
12. कमलेश्वर	: 'इन्सान और हैवान'	पृ.72
13. कमलेश्वर	: 'कस्बे का आदमी'	पृ.74
14. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	पृ.73
15. कमलेश्वर	: 'खोई हुई दिशाएँ'	पृ.43
16. कमलेश्वर	: कस्बे का आदमी में संग्रहित 'गर्मियों के दिन'	पृ.31
17. कमलेश्वर	: मेरी प्रिय कहानियाँ 'नीली झील'	पृ.90
18. माधुरी शाह	: कमलेश्वर का कथा साहित्य	पृ.70
19. कमलेश्वर	: 'आसक्ति'	पृ.136
20. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.130
21. बच्चन सिंह	: परंपरा का नया मोड़ : रोमांटिक यथार्थ	पृ.221
22. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.593

23. कमलेश्वर	: 'लाश'	पृ.594
24. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ 'रातें'	पृ.486
25. कमलेश्वर	: 'जार्ज पंचम की नाक'	पृ.290
26. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.292
27. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.294
28. मंजुला देसाई	: कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन	पृ.138
29. कमलेश्वर	: 'अपने अजनबी देश में'	पृ.411
30. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.413
31. कमलेश्वर	: 'अपने अजनबी देश में'	पृ.415
32. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.418
33. कमलेश्वर	: 'बयान'	पृ.428
34. कमलेश्वर	: 'जिन्दा मुर्दे'	पृ.450
35. कमलेश्वर	: 'मानसरोवर के हंस'	पृ.645
36. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.141
37. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.695
38. कमलेश्वर	: 'स्टोरी'	पृ.696
39. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.598
40. कमलेश्वर	: 'नागमणि'	पृ.599
41. पुष्पपाल सिंह	: समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ	पृ.10
42. कमलेश्वर	: 'राजा निरबंसिया'	पृ.140
43. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.143
44. कमलेश्वर	: 'राजा निरबंसिया'	पृ.145
45. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.133
46. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.135
47. कमलेश्वर	: 'राजा निरबंसिया'	पृ.146
48. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.148

49. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.156
50. कमलेश्वर	: 'देवा की माँ'	पृ.159
51. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.160
52. कमलेश्वर	: देवा की माँ	पृ.162
53. कमलेश्वर	: 'ऊपर उठता हुआ मकान'	पृ.263
54. के.पी.जया	: कथाकार कमलेश्वर	पृ.73
55. कमलेश्वर	: 'जो लिखा नहीं जाता'	पृ.94
56. सुभाष पन्त	: कमलेश्वर : तीन कथा दशकों के बीच एक वैचारिक यात्रा	पृ.154
57. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.277
58. कमलेश्वर	: 'जो लिखा नहीं जाता'	पृ.281
59. कमलेश्वर	: 'या कुछ और'	पृ.465
60. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.659
61. कमलेश्वर	: 'अच्छा थीक है'	पृ.602
62. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.648
63. कमलेश्वर	: समग्र कहानियाँ	पृ.659
64. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.160

****

4. कमलेश्वर का उपन्यास साहित्य : विषयवस्तु एवं पात्र

उपन्यास साहित्य की आधुनिक विद्या है। सन् 60 के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में जिन रचनाकारों की सबसे अधिक चर्चा होती रही उनमें कमलेश्वर एक हैं, यद्यपि संख्या की दृष्टि से कमलेश्वर ने उपन्यास कम लिखे किन्तु उनके सभी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा दे गये।

उपन्यासकार कमलेश्वर ने सदैव अपनी युग की समस्याओं के मानवी पक्षों को अपने कथाकृतियों का आधार बनाया। कमलेश्वर के उपन्यासों की कथाभूमि कस्बों से लेकर बड़े शहर के विभिन्न क्षेत्रों तक फैली हुई है। यह कथाभूमि ही एक प्रकार से उस 'वस्तु' को प्रक्षेपित करती है जो समसामयिक समस्याओं, द्वन्द्वों, प्रताड़नाओं, दबावों, अमानवीय यथाक्रूर स्थितियों, कुण्ठाओं और सामाजिक विसंगतियों के विभिन्न बिन्दुओं में प्रसारित है। आज का कथाकार 'वस्तु' के अनेकयामी महत्व को समझता है। वह 'वस्तु' ही है जिसके माध्यम से रचनाकार विभिन्न माध्यमों और प्रयोगों द्वारा पाठक तक पहुँचता है।

कोई भी रचनाकार किसी भी विषय पर रचना नहीं कर सकता। यह उस लेखक पर निर्भर करता है कि वह अपनी विषय-वस्तु और पात्र कहाँ से चुनता है। लेखक की कृति उस समाज से संबद्ध होती है, जिसमें वह रहता है। कमलेश्वर ने 'नयी कहानी की भूमिका' में एक स्थान पर लिखा है - "अब चारित्रादि प्रमुख न होकर कथ्य ही प्रमुख है।"[1] आज किसी भी कृति के लिए 'वस्तु' ही अधिक महत्वपूर्ण है, जिसके आधार पर लेखक की चेतना उद्‌घाटित होने में समर्थ हो सकती है। इस आधार पर कमलेश्वर के

उपन्यासों की वस्तु चेतना का अध्ययन एक प्रकार से कमलेश्वर की साहित्यिक दृष्टि का अध्ययन भी है।

अपने पात्रों के विषय में कमलेश्वर ने लिखा है -" मेरे पात्र अपने माहौल की, अपने सुख-दुःख की कहानी अपने-आप कहते चलते हैं। मैं उनके निर्माण में परिश्रम नहीं करता।"[2] अर्थात लेखक ने अपने आसपास के माहौल यानी अपने कस्बे मैनपुरी से प्रेरणा ग्रहण की। वहाँ का मोहक वातावरण उनकी अनुभूतियों को नये-नये रंगो में रंगता रहा। स्पष्ट है कि कमलेश्वर ने रचना के लिए विषयवस्तु सीधे जन-जीवन के अनुभवों से ली है।

कमलेश्वर ने स्वीकार किया है कि वे बिना प्रत्यक्ष अनुभव अथवा अनुभूति के कभी कुछ नहीं लिखते। उनके लिए सामान्य आदमी की नियति से जुड़ा हुआ लेखन, एक तरह से अनुभव के क्षेत्र की प्रामाणिक पहचान, अनुभव के समय संगत-संदर्भ और अनुभवों के अर्थों तक जाने की कोशिश यही उनकी रचनाओं का क्रम भी है।

4.1 कमलेश्वर का उपन्यास संसार : निम्न एवं मध्यवर्गीय जीवन

समकालीन उपन्यासकारों में कमलेश्वर का अप्रतिम स्थान है। अपने समय के अत्यंत सजग और सचेत उपन्यासकारों में उनका नाम लिया जाता है। आम आदमी की जिन्दगी की संगति-विसंगतियों को उन्होंने अपने अन्दाज में प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित किया है। उनके उपन्यासों में निम्न-मध्य वर्ग का यथार्थ जीवन अंकित है। कमलेश्वर एक घोषित प्रगतिशील कथाकार रहे हैं। कस्बाई एवं महानगरीय निम्न-मध्यवर्ग के वर्ग वैषम्य, शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण उन्होंने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर किया। जीवन के संघर्षों से उत्पन्न उनकी यह विचारधारा हर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की है।

आधुनिक संचेतना को कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों के जरिए व्यक्त किया। अपने कथ्य में वे सदा ही स्पष्टता और साफगोयी को लेकर चले। उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रण के लिए जीवन का विशाल पट चुना एवं विभिन्न परिपार्श्व की उनकी यथार्थवादी दृष्टि ने अत्यन्त सूक्ष्म तथा सशक्त अभिव्यक्ति दी। डॉ. अमर प्रसाद जायसवाल का कथन है -"सर्वसामान्य व्यक्ति के जीवन को ही कमलेश्वर ने अपनी कलम से चित्रित किया है। उनकी कथा कृतियों में आम आदमी के दैनिक जीवन के मसले जैसे रोजी, रोटी, मजदूरी एक ओर है तो दूसरी ओर आस्था, अनास्था, प्रेम, कलह आदि यथार्थ रूप में चित्रित हुई हैं। कस्बों तथा महानगरों में रहने वाला मध्य एवं निम्न वर्ग उनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य है।"[3]

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्य एवं निम्न वर्गीय पात्रों का मनोवैज्ञानिक रेखांकन किया है। कमलेश्वर ने अपने सामाजिक उपन्यासों में निम्न एवं मध्य वर्ग के जीवन को उभारा है क्योंकि इन लोगों के जीवन से कमलेश्वर भली-भाँति परिचित थे। साथ ही वे स्वयं अनुभवी भी थे। जो साहित्यकार अपना निजी अनुभव रचना में अभिव्यक्त करता है निःसन्देह वह

रचना अधिक जीवन्त एवं सहज बन जाती है। कमलेश्वर के **'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'तीसरा आदमी', 'डाक बंगला'** और **'आगामी अतीत'** आदि उपन्यासों में निम्न एवं मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ उभर कर आया है।

एक सड़क सत्तावन गलियाँ : कमलेश्वर का प्रथम उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' है। एक सौ बीस पृष्ठ का यह उपन्यास सन् 1961 ई. में प्रकाशित हुआ किन्तु इसके पहले सन् 1957 ई. में अमृतराय द्वारा प्रस्तुत उपन्यास हंस पत्रिका में छापा गया था। उसी समय श्री कृष्णचन्द बेरी ने इसे हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। फिर सन् 1968-69 में श्री प्रेम कपूर ने इस पर फिल्म बनाई 'बदनाम बस्ती'।

कमलेश्वर की यह रचना उनकी ख्याति का आधार बनी, इसका कारण इस उपन्यास का दिक् और काल है। यह एक ऐसी रचना भी है, जो स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में विकसित होती है और आजादी के बाद के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिदृश्य को हमारे सामने लाती है। इस उपन्यास की कथा एक साथ कई पटरियों पर दौड़ती है। ये पटरियाँ जीवन और समाज की हैं। ये पटरियाँ साथ-साथ चलते हुए टकराती भी है। और अपने रास्ते पर लगातार बढ़ती जाती हैं। इस उपन्यास का कथा क्षेत्र कमलेश्वर का अपना जन्म स्थान, उनका अपना कस्बा मैनपुरी है। डॉ. घनश्याम मधुप का कहना है कि -"यह उपन्यास उत्तर प्रदेश के मैनपुरी कस्बे की कथा है, किन्तु इसमें आंचलिकता अथवा लोकल कलर (क्षेत्रीय वर्ण) जैसी कोई अनुभूति नहीं है। ऐसा न होना इस लघु-उपन्यास की कमी नहीं, विशेषता ही है। लेखक ने अपनी कथा को अधिक यथार्थ और विश्वास योग्य बनाने के लिए ही मैनपुरी स्थान का नामोल्लेख किया है।"[4] इसलिए लेखक को अपनी इस कृति से उतना ही प्यार रहा, जितना अपनी माँ या जन्मभूमि मैनपुरी से। कमलेश्वर ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है -"यह उपन्यास मेरी आरम्भिक और मौलिक लेखकीय स्मृतियों का प्रथम स्त्रोत है। मेरे अपने छोटे-से कस्बे का आख्यान। यह मुझे अभी-भी बहुत प्रिय है।"[5]

प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य बड़ा व्यापक है। यहाँ कथा ऐसे स्थानों पर घूमती है, जो प्रायः हर कस्बे के इतिहास और भूगोल का अहम हिस्सा होते हैं। वे धार्मिक स्थान हो सकते हैं, व्यापार और यातायात का केन्द्र हो सकते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि आजादी के पूर्व और आजादी के पश्चात फैले इसके इतिहास में वे पक्ष भी हैं, जिन्हें हम राष्ट्रीय कह सकते हैं और वादों तथा विचारधाराओं की परिधि में ला सकते हैं। इसमें राजनीतिक दलों की भूमिका और उनकी कारगुजारियों के संकेत हैं, तो उनके चरित्र का उद्घाटन भी। आजादी हासिल होने के साथ उनकी भूमिका और लक्ष्य के फर्क को भी पहचाना जा सकता है। इसमें कस्बाई अर्थशास्त्र के भीतर विकसित एक ऐसा लोक भी है, जिससे समाज की नैतिकता तार-तार होती दिखाई देती है, परन्तु यहाँ मानवीयता के तंतु कहीं अधिक सशक्त रूप से हमारे सामने आते हैं और हमारी चेतना को झकझोरते भी है। पर सचमुच यह भी हमारी ही

दुनिया का यथार्थ हैं। यहाँ एक अपराधी और लूट की संस्कृति को भी फलते-फूलते दिखाया गया है। यहाँ अपराधकर्मों की अनेक दुनियाएँ हैं। यहाँ जमाखोरी और कालाबाजारी की अपसंस्कृति है। यहाँ न्याय और कानून व्यवस्था की भीतरी पर्तों में भी प्रवेश किया गया है। सचमुच इस उपन्यास में एक बदनाम बस्ती की ही व्यथा-कथा कही गई है। यह केवल मैनपुरी की कथा नहीं, भारतीय कस्बों की कहानी है।

भारतीय कस्बों की अपनी एक संरचना और संस्कृति होती है। महानगरीय अपरिचय और अलगाव यहाँ नहीं होता। यहाँ पुरातनपंथी और कठमुल्लेपन की विचार-पद्धतियों के साथ पारंपरिक और प्रगतिशील विचार-पद्धतियाँ एक साथ सक्रिय दिखाई देती हैं। यहाँ गांधीवाद कुलबुलाता है, तो सांप्रदायिक शक्तियाँ भी अपने अवसर की ताक में रहती है। यहाँ स्वाधीनता आन्दोलन और देश विभाजन के समय के निशानों और दीवारों को देखा जा सकता है। कस्बाई संवेदना यहाँ हर कार्य-व्यापार में देखने को मिल जाएगी। कमलेश्वर ने अपने विचार और संवेदना को व्यक्त करने के लिए जो बेचैनी और छटपटाहट दिखाई है, वह इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने कस्बे के सामान्य तथा मध्यवर्गीय चरित्रों की खोज की है। वे अपने कस्बे में लौट-लौट कर आते हैं। उनकी संपूर्ण रचना यात्रा में यह कस्बा और यहाँ के पात्र नयी-नयी भूमिकाओं में आते हैं। कस्बे की जीवन पद्धति, आजीविका और रोजगार की सीमाएँ, व्यापारी वर्ग का चरित्र, व्यक्तियों, परम्पराओं की बारीक जानकारी, जीवन में आनंद और उल्लास के सामूहिक अवसर, बनते बिगड़ते और टूटते मूल्यों की चिंता आदि तमाम तथ्यों का प्रामाणिक विवरण यहाँ देखने को मिलता है।

कमलेश्वर ने कस्बाई जीवन की लय और ताल को पकड़ने की कोशिश की है। कस्बाई जीवन की विकराल स्थितियाँ और जीवन के लिए कठिन संघर्ष यहाँ के आदमी को अपने दायरे में बाँध देता है। यहाँ रोजगार के सीमित साधन और लगभग झुग्गी-झोपड़ी वाली बस्तियों की स्थितियाँ आदमी के जीवन को नारकीय बना देती हैं। यहाँ के संकीर्ण और पिछड़ी हुई मानसिकता सामाजिक विषमता का वातावरण भी बनाती हैं जिसमें आदमी की लाचारी भी सामने आती है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' चरित्रप्रधान उपन्यास है, और चरित्रों के इर्द-गिर्द घटनाओं को बुना गया है। इस उपन्यास की विशेषता उसका घटनाक्रम भी है और घटनाएँ परस्पर संग्रहित होकर एक धारा बन गई है।

उपन्यास की घटनाएँ कस्बाई जीवन की हलचल के बीच, सामान्य जन की जीवन पद्धतियों के बीच, गल्लामण्डी की जिन्दगी के बीच केन्द्रित हैं। ये घटनाएँ जुआ के अड्डे, शराब की तस्करी, डकैती, स्त्रियों की खरीद-फरोख्त, वैश्यावृत्ति, बस अड्डे की हलचल, रामलीला मेला, धार्मिक, राजनैतिक और साम्प्रदायिक तथा वर्ण और जाति के भीतर घूमती रही हैं। जहाँ तक चरित्रों की बात है, यहाँ के सभी चरित्र परिवार विहीन हैं। सरनाम सिंह, शिवराज, डॉ. लालचन्द, गेंदा कवि, बाजा मास्टर, मंगल, हबीब साहब, बंसिरी और हेम आदि निम्न और मध्य वर्ग के जीवन से आए पात्र हैं और सबकी

अपनी विशेषताएँ हैं। उनके व्यक्तित्व में विचित्रताएँ अधिक हैं। उनकी यह विचित्रता भी कस्बाई मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है।

इस उपन्यास में मध्यवर्ग और सामान्य जन की जीवन छवियाँ प्रमुख रूप से देखने को मिलती हैं। यही वे वर्ग हैं जिन्होंने आजादी के समय अपने बेहतर जीवन के सपने पाले थे और आजादी के बाद वे सपने ध्वस्त हो जाते हैं। कमलेश्वर ने स्वप्न और ध्वंस की कथा पराधीन भारत और स्वाधीन भारत की स्थितियों के माध्यम से कही है। मास्टर हबीब, सम्पादक निर्मोही और बाजा मास्टर जैसे चरित्रों की आशाओं पर पानी फिर जाता है। निम्न मध्यवर्गीय समाज की दशा और भी विकराल हो जाती है। कमलेश्वर के अनुभव, संवेदन जगत और प्रत्यक्षीकरण से उपन्यास की कथा महत्वपूर्ण हो गई है। उत्तर भारत के कस्बाई जीवन की मानसिकता, यहाँ के भूगोल को लेखक ने कथा का प्रमुख हिस्सा बना दिया है। इसीलिए यहाँ प्रायः सभी घटनाओं के संदर्भ-संकेत देखने को मिलते हैं।

"कमलेश्वर के उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है। वे एक प्रगतिशील कथाकार हैं। वैसे वे किसी सिद्धांत के झमेले में अपने को न डालकर मुक्त जीवन और सामाजिक यथार्थ की धड़कनों को रूपायित कर देते हैं पर यथार्थ में जिसका अस्तित्व है।"[6] कमलेश्वर ने भारतीय समाज-व्यवस्था और लोक-जीवन की अनेकानेक छवियों को प्रस्तुत किया है। यहाँ महानगरीय जीवन से भिन्न संस्कार देखने को मिलते हैं। यह समाज ग्राम समाज के निकट संस्कारों का पोषक होता है। इसीलिए यहाँ कृषि सभ्यता के अनेक संस्कार देखने को मिलते हैं। इन संस्कारों के साथ समकालीन मूल्य मिलाकर कस्बाई जीवन का एक ऐसा रूप प्रस्तुत करते हैं जो वहाँ के मनुष्य की फितरत को और उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति में सक्षम होता है। धर्म और व्यवसाय के गठबंधन को लेखक ने लक्षित किया है।

उपन्यास में धार्मिक आयोजनों का एक सिलसिला देखने को मिलता है। कमलेश्वर धार्मिक आवरण के भीतर पलने वाली पाप और अनाचार की दुनिया को दिखाकर धर्म के पाखण्ड को निरावृत्त भी करते हैं। शिवराज वेद शास्त्र के ज्ञान के लिए अपने ब्राम्हण पिता के द्वारा साधुओं को समर्पित किया जाता है। पर संतो के लिए वह तभी तक स्वीकार है जब तक उन्हें दान दक्षिणा मिलता रहे। शिवराज को आश्रम में असहज स्थितियों का सामना करना पड़ता है, इसलिए वह आश्रम छोड़कर सरनाम सिंह की सोहबत में आ जाता है और समाज की दृष्टि में गिर जाता है। सरनाम सिंह फौज का अवकाशप्राप्त ड्राइवर प्राइवेट में लॉरी, बस की ड्राइवरी करता है। पर उसका असली काम शराब की तस्करी और डाके डालना है। वह सफेदपोश लोगों की बन्दूके किराये पर लेकर डकैतियाँ डालता है तथा पुलिस और न्याय व्यवस्था को घूस देता है।

कमलेश्वर ने एक ओर यदि राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अवकाश निकाला है तो दूसरी ओर आजाद भारत में लूट-भ्रष्टाचार और राजनीति के पतित होते चरित्र की भी पहचान की है। जन सामान्य अपनी

धार्मिक आस्थाओं के कारण यदि ईश्वर, अवतार के मिथों को स्वीकार करता है तो दूसरी ओर वह राष्ट्रीय आन्दोलन के नायकों को भी उसी अवतारवाद की श्रेणी में ला देता है। सुभाष चन्द्र बोस अवतार हो जाते हैं, रंगीले को ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। कृष्ण बने रामलीला के पात्र की गतिविधियाँ मर्यादाएँ तोड़ देती हैं। धर्म के इस पाखण्ड के भीतर चलने वाली गतिविधियों को प्रस्तुत कर कमलेश्वर ने उसके रूप और चरित्र को समाज के सामने लाने का प्रयत्न किया है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' आजादी के बाद उत्पन्न हुए नये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पाखण्ड तथा विकारों को अभिव्यक्ति देने वाला उपन्यास है। लेखक ने साम्प्रदायिकता के वातावरण को लक्षित किया और साम्प्रदायिक शक्तियों की पहचान की। भारतीय समाज की वर्ण-जाति की व्यवस्था को यदि सामाजिक भेदभाव और विघटन का एक कारण माना तो हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का बीज बोया गया था, ऐसी सूचना इस उपन्यास से मिलती है। सर्वदानन्द का आश्रम भी धार्मिक आवरण में साम्प्रदायिक चालें चलता है। इसी प्रकार से राजनीतिक दल और शक्तियाँ देश सेवा के नाम पर समाज में नये विकारों को जन्म देती हैं। साम्प्रदायिक दंगे, समाचार पत्रों की अखबारबाजी, हरिजनों पर अत्याचार और उनके आन्दोलन, कम्यूनिस्ट और कांग्रेसियों का विवाद, स्वार्थी और किराये के नेताओं का चरित्र तथा व्यापारियों की जमाखोरी आजादी के बाद के कुछ नये निकाय हैं। आजादी की सड़क से फूटी हुई ये ही सत्तावन गलियाँ हैं जो भारतीय समाज की परिणतियों के लिए जिम्मेदार हैं।

आजादी के बाद राष्ट्रीयकरण की नीति का संकेत यहाँ बसों के राष्ट्रीयकरण के रूप में सुनाई देता है। डॉ. लालचन्द जैसे कम्यूनिस्ट पात्र भी है, पर यहाँ मार्क्सवाद के पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा उसके सामाजिक और व्यावहारिक पक्षों पर अधिक ध्यान दिया गया है। यहाँ तक कि डॉ.लालचन्द और सरनाम सिंह की जिरह में सरनाम के तर्कों को ज्यादा सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ कमलेश्वर ने आधुनिक सभ्यता के महानगरों और कस्बों की स्थितियों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। डॉ.लालचन्द का कहना- "मुश्किल यह है कि मजदूर संगठित नहीं होते, इसलिए उनका शोषण होता है। वे नहीं जानते कि उनकी लड़ाई क्या है ? कहाँ है ?"[7] सरनाम सिंह को उत्तेजित कर देता है और उसका कथन मानों आजाद देश के चरित्र को ही उजागर कर देता है। वह कहता है "यह सब मैं नहीं जानता। मैं आदमी, मजदूर आदमी की लड़ाई हमेशा दूसरी जगह देखता हूँ -जिस लड़ाई की ओर आपका ध्यान है वह फैक्टरियों से भरे कानपुर, बम्बई या अहमदाबाद में हो सकती है, यहाँ नहीं। यहाँ सब जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, मालिक और मजदूर, वकील और मुहर्रिर, दुकानदार और नौकर सभी एक नाव में है और उस नाव के चारों ओर एक तरह का तूफान उमड़ रहा है।"[8] सरनाम आगे कहता है "इन धर्म मंडलियों से लड़िए डॉक्टर साहब जो यहाँ के मेहनतकश लोग को सोचने समझने का मौका नहीं देती, इन ओझा और पाखण्डियों से लड़िए जो मजदूर के पसीने की कमाई चाट

जाते हैं - इन ऊँची जात के कहे जाने वाले लोगों से लड़िए जो आदमी को आदमी बनने नहीं देते। इन मंडी वालों से लड़िए जो मुनाफे के लिए बरसात में गुल्ले को गोदामों में बंद करके बाहर भेजने के लिए रोक रखते हैं। जिला बोर्ड के उन अमलाओं से लड़िए जो स्कूल के बनने के नाम पर पैसा खा जाते हैं। चुंगी के अफसरों से लड़िए जो हैजे की रोक-थाम के लिए नालियों पर सिर्फ चूना ड़लवाकर दवाईयों का पैसा हजम कर जाते हैं -अस्पताल के डॉक्टरों से लड़िए जो गरीबों के लिए मिलने वाले इंजेक्शनों को बेच लेते हैं, दवाओं में पानी मिलाकर रोग का इलाज करते हैं। ...उन अफसरों से लड़िए और उनके बंगलों पर धरना दीजिए जो नशाबन्दी कानून के नोटिस पर दस्तखत करके अंग्रेजी शराब की चुस्कियाँ लेते हैं। उन पाखण्डी गांधीवादी नेताओं से लड़िए जो नेतागीरी के नाम पर पचासों घरों की लड़कियों को बरबाद कर रहे है।"[9]

कमलेश्वर ने इस सच्चाई को आजादी के आरम्भिक वर्षों में ही लिया था। समाज के हर स्तर पर बढ़ते भ्रष्टाचार को इस उपन्यास में स्थान मिला है। शिक्षा व्यवस्था, अर्थनीति, समाजनीति, सुरक्षा और न्याय व्यवस्था में कितनी सुरंगे हो गयी हैं - इसके ब्यौरे इस उपन्यास में हैं। जातियों में बटा समाज और श्रम के मूल्य के साथ सौतेला व्यवहार किसी भी समाज की उन्नति में बाधा है, यह लेखक देख रहा है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास कमलेश्वर की उपन्यास यात्रा का प्रस्थान है। पर दूसरी तरफ वह उनके जीवनानुभव का विशेष भाग भी है, जो उनकी गहन निरीक्षण शक्ति का भी परिचायक है। वह लेखक के वैचारिक चिंतन का भी प्रतिनिधित्व करता है। कमलेश्वर वस्तुतः हारे हुए चरित्रों के साथ है, पर वे जीवन से पलायन की अपेक्षा जीवन के प्रति रागात्मक भावों को स्वीकार करते हैं।

आजाद भारत में शिक्षा-व्यवस्था और उसके ढाँचे को लेकर कमलेश्वर ने कुछ महत्वपूर्ण संकेत किए हैं। जिस देश में शिक्षा की बुनियाद में ही जातिवाद और सांप्रदायिकता हो, वहाँ अच्छे नागरिकों का निर्माण एक चुनौती से कम नही है। जगमोहन तिवारी कहता है -"असल में सरकारी स्कूलों को छोड़कर कौन-सा स्कूल है जिले में, जो किसी जाति विशेष के आधिपत्य में न हो। ब्राम्हणों के अपने स्कूल हैं, कायस्थों के अपने, अहीरो के अलग, अग्रवालों के अलग, हर जगह जाति का सर्प फन फैलाये बैठा है।"[10] इतना ही नहीं उनके वेतन में भी बेईमानी की जाती है। प्राइवेट स्कूल में पूरी तनख्वाह नहीं दी जाती। वस्तुतः आजाद भारत में शिक्षा एक मुनाफे के व्यवसाय में बदल गयी है।

कमलेश्वर ने सामान्य जन की भावनाओं और समकालीन परिस्थितियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कस्बाई जीवन में प्रवेश करनेवाले नये-नये कारकों का उन्होंने परीक्षण भी किया है। समाज में अलगाव और अकेलेपन के कारकों की खोज की है। कहा जा सकता है 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में कमलेश्वर ने जैसे अपने कस्बे के जीवन को फिर से जिया हो, पर पूरे राष्ट्रीय और मानवीय परिदृश्य के साथ। निश्चय ही, यह

एक महान उपन्यास नहीं है, पर कमलेश्वर के कथाकार के निर्माण में इसका महत्व असंदिग्ध है।

समुद्र में खोया हुआ आदमी : कमलेश्वर का 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास सन् 1965 ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास महानगरीय जीवन पर आधारित है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय परिवार के बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरती हुई जिन्दगी का सहज चित्रण संवेदनात्मक धरातल पर किया है।

यथार्थ की दृष्टि से , यह एक सफल उपन्यास है। प्रायः किसी भी महानगर की कथा में होटल, बार, पब, रम और बरांडी के बीच नाचघर और रौनकदार गाड़ियाँ आदि ही होती हैं। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में यह सब नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें महानगर दिल्ली है ही नहीं, बल्कि कहना चाहिए इसके अतिरिक्त सब है। भीड़, अकेलापन, कर्ज, बेरोजगारी, मकानों की सीलन, पगडी, हत्याएँ, जवान लड़कियाँ और उनके पीछे भागती हुई कामुक नजरे। सच तो यह है कि कमलेश्वर ने जिस यथार्थ के धरातल पर दिल्ली महानगर का चित्र खींचा है वह दिल्ली में कम ही मिलता है।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा है -"यह उपन्यास रोजमर्रा का संघर्षमय जीवन जीने वाले एक परिवार की करूण गाथा है। समुद्र का प्रतीकार्थ समाज है, खासतौर पर वह समाज जहाँ जीवनयापन मजबूरी से दो कदम आगे बढ़ कर है। शायद ऐसा समाज समुद्र से भी गहरा, विशाल और खतरनाक है। इस समाज की हैरतनाक वितृष्णाएँ एक आम आदमी को; उसके दिल, दिमाग, जिजीविषाओं, महत्वाकांक्षाओं और उसके घर परिवार को किस भाँति आर्थिक मजबूरियों के शिकंजे में कस लेती है -इसका खास उदाहरण बीरन जैसा महामजबूर पात्र है। बीरन का समुद्र में खो जाना, अपने घर-परिवार के बीच न लौट पाना इसी बात का सबूत है कि समाज का अर्थशास्त्र न जाने कितने बीरनों को अपने उतार-चढ़ाव की चपेट में लेता रहा है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में खासतौर पर ऐसे ही निम्न मध्यवर्गीय समाज और चरित्रों की भरसक यथार्थवादी तस्वीर खींचने की कोशिश की गयी है।"[(11)]

प्रस्तुत उपन्यास एक शहर में निम्न मध्यवर्गीय परिवार के विघटन की कथा है। यह कथा उस घुटते, परेशान होते और टूटकर बिखरते परिवार का चित्र प्रस्तुत करने और उसके माध्यम से वर्तमान समाज में बदलते हुए व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों को प्रत्यक्ष रूप में रखने का प्रयास करती है, आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति किस प्रकार अपनी अर्थवत्ता खोकर आधुनिक सभ्यता की भीड़ के एक महत्वहीन अंश में रूपान्तरित होता रहा है। वैसे जिस निम्न-मध्य वर्गीय परिवार की कथा इस उपन्यास में कहीं गई है वह अकेले दिल्ली का ही नहीं भारत के किसी भी महानगर का हो सकता है।

पेन्शनयाफ्ता श्यामलाल बाप होते हुए भी अपनी बेटी तारा को चालीस रूपये माहवार में हरवंश के साथ कर देता है -अब घर में फैसला लेने का अधिकार कमाऊ तारा के हाथ में आ गया और पिता एक फालतू चीज की तरह रह गए, जिसे फेंका नहीं जा सकता सिर्फ बर्दाश्त किया जाता है। श्यामलाल की एकमात्र आशा उनका बेटा वीरेन था। तारा का नौकरी पर जाना वह पसंद नहीं करते थे क्योंकि अपनी लड़कियों के संबंध में भी वे उन पुरानी मान्यताओं के गुलाम है। श्यामलाल के मन में 'पुराने' के लिए वह सम्मान आदर है जो नए महानगरी संस्कृति में खोखला तथा व्यर्थ हो चुका है। महानगरों का पहला दबाव परिवार पर पड़ता है, जिसके कारण घर-परिवार टूटने लगता है तथा भावनात्मक सम्बन्धों को व्यवहारिक सम्बन्धों में बदल देता है।

वीरेन की नौकरी कुछ दिनों को इस छोटे-से परिवार में रौनक ला देती है लेकिन उसका समुद्र में खो जाना जैसे परिवार रूपी जहाज के कप्तान का खो जाना है। जहाज तहस-नहस हो जाता है और सब आदमी जैसे कहीं-कहीं बिखर जाते हैं। माँ, बाप और बेटी, पति-पत्नी आदि के संबंध जैसे सब कितने खोखले हैं, यहीं सब कमलेश्वर ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

वर्तमान समाज में अर्थ तन्त्र हावी हो गया है। आजकल पारिवारिक सम्बन्धों को बनाए रखने एवं बिगाड़ने वाली चीज 'अर्थ' ही है। अपनी पत्नी से श्यामलाल का उक्त कथन इसकी पुष्टि करता है -"यह शहर ऐसा है बिना पैसे के यहाँ कोई पहचानता ही नहीं। पैसा पास है तो, दुनिया अपनी है नहीं तो कोई साला... ।"[12] आर्थिक संकट रूपी विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र रूपी मध्यम परिवार को जाने किस-किसके हाथ बेच दिया है। हरवंश श्यामलाल और रम्मी को वीरेन की मौत इसलिए स्वीकारने को कहता है ताकि उसके बदले में मुआवजा मिल सके। वह उन्हें बेटे की लाश पर मकान और बाकी भविष्य की तस्वीर बनाने की सलाह देता है। "मेरा मतलब है - सोच-समझकर काम कीजिए। अगर वीरेन की मौत मान ली जाए तो सरकार से मुआवजा भी मिल जाएगा।"[13] रम्मी को मुआवजे के लिए अपने पति को छोड़ना पड़ा तथा बेटी समीरा को होस्टल में दाखिल करना पड़ा। रम्मी को बेटे का मुआवजा हासिल करने के लिए सब कुछ खोना पड़ा। श्यामलाल का सकुशल परिवार अंत में बोरों में भरकर हरवंश के घर परछती पर पहुँच जाता है अर्थात एक परिवार नामक पुरानी इकाई अतीत की चीज हो जाती है और यहाँ से व्यक्तियों का संघर्ष आरम्भ हो जाता है। खून के रिश्ते खोखले पड़ जाते हैं।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' वीरेन नहीं स्वयं श्यामलाल है। वह भीषण आर्थिक असमानताओं के समुद्र में खो गया है। उसका परिवार और वह स्वयं भीड़ के सैलाब में कहीं खो गये हैं। दूसरी ओर यह कहानी सिर्फ श्यामलाल के परिवार की ही नहीं। यह निम्न मध्यवर्ग एवं मध्यवर्गीय घरों की कहानी है। वे घर जो भीतर से टूटते जा रहे हैं जिनके सामने कोई भविष्य ही नहीं या फिर जिनका भविष्य वीरेन के समान खो गया है और सिर्फ एक

इन्तजार मात्र बाकी है ... कभी न समाप्त होने वाला इन्तजार। इस प्रकार कमलेश्वर ने आर्थिक अभाव से महानगर रूपी महासागर में टूटकर बिखरने वाले मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ अंकन किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश्वर ने नारी को 'सतीत्व' और 'देवित्व' की सीमा से निकालकर उसे इंसान के रूप में देखने-समझने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि हरवंश तारा को स्वीकार कर लेता है। विवाह-पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करने वाला प्रेमी हरवंश समाज के भय से तारा को छोड़कर भाग नहीं जाता। नैतिक मानदण्डों की उपेक्षा करता हुआ वह स्वच्छन्द प्रेम करता है और तारा को पत्नी बना लेता है। परम्परावादी समाजों में पूर्वजनों की यह साहसिकता जहाँ पुराने मूल्यों की अर्थहीनता घोषित करती है वहीं नये सामाजिक मूल्यों, नये सामाजिक सम्बन्धों को भी स्पष्ट करती चलती है।

प्रस्तुत उपन्यास मे लेखक ने जीवन संघर्ष का चित्रण बेहतर ढंग से और बड़े पैमाने पर किया है। डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना का कहना है कि -" 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की तरह ही यह कमलेश्वर का बेहद सार्थक और सशक्त उपन्यास है जिसमें उनकी दृष्टि और रचनात्मकता दोनों ही इस प्रकार एक-दूसरे से घुल-मिल गयी हैं कि एक महान 'लघु उपन्यास' की सृष्टि हो सकी है। 'महान' शब्द का प्रयोग मैं यहाँ जानबूझकर ही कर रहा हूँ क्योंकि स्वतंत्रता के बाद लिखे दूसरे लेखकों के लघु उपन्यासों में भी मुझे कोई ऐसा उपन्यास दिखाई नहीं देता, जिसमें किसी परिवार या उसके सदस्यों के आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष को पर्याप्त विस्तार और गहराई से चित्रित किया जा सका हो और जो इतना प्रभावी भी हो जितना कि 'समुद्र में खोया आदमी'।"[14]

<u>डाक बंगला</u> : 'डाक बंगला' कमलेश्वर का बहुचर्चित और प्रसिद्ध उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1975 ई. में हुआ। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में जीवन के यथार्थ का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह अन्य उपन्यासों से कई अर्थों और स्तरों पर भिन्न है। लेखक के प्रायः सभी उपन्यासों में निम्न-मध्यवर्ग का बिखराव और टूटन, आर्थिक विषमताओं से सम्बद्ध है, परन्तु डाक बंगला में आर्थिक समस्या दूसरी समस्याओं का आधार लेकर उद्घाटित हुई है।

कमलेश्वर अपने इस उपन्यास की भूमिका में स्पष्ट करते हैं कि -"इस उपन्यास का कथ्य है - एक स्त्री की व्यथा और डाक बंगला है-आनी जानी जिन्दगी का प्रतीकार्थक। इरा की व्यथा का संवेग बहुत गहरा है और यह संवेग भौतिक तथा भावनात्मक दोनों ही स्तरों पर लक्षित है। अनेक तरह की उपेक्षाओं से त्रस्त वह संपूर्ण स्त्रीत्व के साथ जीने की ललक रखती है। लेकिन उसकी ललक उसकी जिजीविषा को अंगीकार हो जाती है। उसका स्त्रीत्व सिर्फ काम-भावना और बंधनहीन प्रकृति की तमन्ना नहीं रखता, बल्कि वैसे पुरूषत्व की तलाश में व्याकुल रहता है जो कि शरीर के साथ-साथ संवेदना के स्तर पर भी उसे प्यार दे।

'डाक बंगला' दमित स्त्री का इकरारनामा भी है। जरूरी तौर पर उसकी वासनात्मक कुण्ठा स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों की एक नयी परिभाषा तैयार

करती है। पुरूषविहीन सुन्दर स्त्री के विश्रंखलित जीवन की टूटन को इस जैसी शहरी स्त्री ने एक संवेदनशील आयाम दिया है।

'इस उपन्यास के कथानक में यह भी आशय गुंथा हुआ है कि यदि अस्थायी निवास में तिलक जैसा सहृय सहृयात्री हो तो इस जैसी स्त्री की मनोव्यथा का भार कुछ कम हो जाता है।'(15)

कमलेश्वर के उपन्यासों में वर्तमान आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों में मध्यवर्गीय बहुत कुंठित हो रहा है। अर्थ की विवशता मनुष्य को कहाँ से कहाँ लेकर जाती है, इसका सजीव चित्रण 'डाक बंगला' उपन्यास में हुआ है। इसमें व्यक्ति के जीवन के अकेलापन और खोखलेपन को सामाजिक और असामाजिक दोनों संदर्भो में अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है। यह उपन्यास काश्मीर की सुन्दर पृष्ठभूमि में लिखा गया है। यह उपन्यास एक ऐसी लड़की की कहानी है जो मनुष्य की भूख अर्थ और काम की शिकार हुई है। इस उपन्यास की नायिका है 'इरा'। उसके जीवन में आए विविध मोड़ों और तत्जनित समस्याओं पर प्रकाश ड़ाला गया है। यानि काश्मीर की वादियों में मिली एक खूबसूरत औरत की बदसूरत कथा को अत्यन्त सूक्ष्मता, सहजता एवं यथार्थता के साथ 'डाक बंगले' में उद्घाटित किया गया है।

'डाक बंगला' में जीवन के उतार चढ़ाव हैं जिससे गुजरकर इरा अपने को खोती रही। जो जीवन में कहीं उतार, चढ़ाव, अच्छाई, बुराई, पाप, और पुण्य तथा सौन्दर्य और कुरूपता की यात्रा से गुजरकर चलते-चलते थककर टूट जाती है। 'डाक बंगला' उसके जीवन का एक ऐसा विराम चिन्ह है जहाँ वह कुछ देर पढ़ाव बनाकर जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है। अपनी काश्मीर यात्रा के दौरान वह तिलक और सोलंकी के साथ कुछ दिनों के लिए आडू के 'डाक बंगला' में ठहरती है। इसी यात्रा के बीच सैर सपाटे में वह तिलक को आपबीती सुनाती है। वह मध्य वर्गीय युवती और भरे यौवन में विमल नामक कलाकार के प्रेम में पड़कर फिसल जाती है। रंगमंच का लोभ देकर विमल उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है। यहीं से इरा की जिन्दगी बदल जाती है और वह स्वयं कहती है -"मेरी आत्मा का कोना-कोना यादों से भरा हुआ है। मेरी आँखों में उस व्यक्ति की तस्वीर है। जिसके साथ मैंने थोड़े से भी दिन गुजारे है। ..... सभी ने विलास किया है मेरे साथ।"(16) इसके जीवन में चार पुरूष आये विमल, बतरा, सोलंकी और डॉक्टर। इनमें से उसे प्यार विमल से ही रहा। वह उसे प्यार करने को तैयार नहीं शेष तीनों के प्रति उसके मन में प्रेम के बजाय दया ही अधिक रही।

'आर्थिक कठिनाईयाँ' इस ओर विमल को सुखी नहीं बना पाई अतः विमल प्रयत्न करके महेन्द्र बतरा नामक दलाल के यहाँ उसे नौकरी पर लगवा देता है। "बतरा आधुनिक दलाल है। वह कान्टेक्टस बनाने में विश्वास रखता है और कान्टेक्टस बनाए रखने के लिए औरतों का उपयोग करना अनुचित नहीं मानता।"(17) बतरा इसकी जिन्दगी को मनमाने ढंग से खोलता है।

बतरा का जिन्दगी में आने से इरा के जीवन का दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। जिसके विषय में स्वयं इरा ने कहा -"दुनिया के जो भी ऐश और आराम हो सकते है वे मुझे बतरा ने दिए।"[18] पहले बतरा शीला नामक युवती से बड़े-बड़े अफसरों से सम्बन्ध जोड़कर अपना काम निकालता था। शीला विवश थी। वह अपनी मानसिक और शारीरिक भूख मिटाने के लिए। "हर घर में बीबी का नकाब लगाकर रहती है ...वह एक शरीफ औरत है ... वक्त और पैसे की मार ने उसे बुरा बना दिया।"[19] शीला के जाने के बाद इरा बतरा के जीवन की निरीहता से प्रभावित होकर उसे समर्पण कर देती है। उसके बाद कुछ दिनों तक वह दाम्पत्य जीवन का अनुभव करती है। किन्तु जब बतरा को मालूम हुआ कि इरा उसकी निशानी को ढो रही है तो उसने उसे विटामिन के बहाने अबॉरशन की दवा पिला दी। असलियत का एहसास होते ही इरा टूट जाती है। शीला वापस आकर इरा को नौकरी से निकाल देती है। इरा जिन्दगी में और एक बार बेसहारा हो गई। बाद में बतरा की सहायता से इरा डॉ.चन्द्रमोहन के साथ आसाम चली जाती है। वही पर डॉक्टर के साथ उसका विवाह हो जाता है। कुछ दिनों बाद वह विधवा हो जाती है।

इरा को जिन्दगी में आने वाला चौथा पुरूष था मेजर सोलंकी। पर फिर अचानक इरा के जीवन में एक मोड़ आ जाता है, वह मोड़ था विमल का इरा की जिन्दगी में वापस आना। वह विमल को पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट बन जाती है। पर विमल तपेदिक का शिकार हो जाता है और एक साल बाद विमल की मृत्यु हो जाती है और इरा को फिर अकेलेपन का शिकार होना पड़ा।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी की विडम्बना की करूण गाथा है। नारी जीवन केवल एक 'डाक बंगला' के सिवा और कुछ नहीं। मुसाफिर आते हैं, मन बहलाते हैं और फिर चले जाते हैं। लेखक ने नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन अत्यन्त रोचक ढंग से किया है। साथ ही भारतीय सामाजिक परम्परा के स्वरूप पर व्यंग्य भी किया गया है। इरा ने नारी को वेश्या और पत्नी बनानेवाले सामाजिक व्यवस्था की ओर व्यंग्य प्रहार करके कहा - "लोग आत्मा की बात करते हैं, पर तन पर एकांतिक अधिकार चाहते हैं ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की घड़ी के मुताबिक चलता है। ... उनके लिए बुरी-से बुरी औरत एक क्षण में पूरी में पूरी तरह अच्छी बन सकती है। अगर वह उन्हें समर्पित हो जाए।"[20] कोई भी औरत अपनी मर्जी से वेश्या न बनती है, उसे बनाया जाता है। इसके लिए पुरूष एवं समाज जिम्मेदार है। इसके विरूद्ध आवाज उठाना भी लेखक का लक्ष्य रहा है। इरा की इस स्थिति का सम्बन्ध जटिल और संकुल सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। उसे साथ ही उसके जीने का संघर्ष भी है, जो उपन्यास के प्रारम्भ से अन्त तक चलता रहता है। यह संघर्ष व्यवस्थाओं और विधानों के प्रति मानवीय संघर्ष की क्रांतिकारी कामना का अंश कहा जा सकता है।

आगामी अतीत : कथाकार कमलेश्वर का 'आगामी अतीत' एक बहुचर्चित नवीनतम उपन्यास है जो पुस्तक के रूप में छपने के पूर्व 'धर्मयुग' साप्ताहिक में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1976 ई. में हुआ। लेखक ने 'काली आँधी' उपन्यास की भाँति 'आगामी अतीत' में भी दो या तीन व्यक्तियों के असफल सम्बन्धों की परिणति किस प्रकार होती है, इसका मार्मिक चित्रण किया है।

कमलेश्वर के अनुसार - " 'आगामी अतीत' का कथ्य रोमांटिक जरूर लग सकता है, परन्तु इसमें निहित रोमांटिकता के भीतर की जो टीस उभर कर हमारे सामने आती है, उसके संदर्भ खासतौर पर सामाजिक, आर्थिक निर्भरताओं से जुड़ाव रखते हैं। इसीलिए इस उपन्यास में रोमांटिकता को रोमांटिकता से ही काटने का प्रयास किया गया है। जब इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ था तब इसके उद्देश्य को लेकर प्रतिक्रियाएँ भी सामने आयी थी। लेकिन वे प्रतिक्रियाएँ इस गंभीर और सर्वाधिक पृथक कथ्य रखने वाले इस उपन्यास को ठीक से न समझ पाने के कारण थी।

'पूँजीवादी समाज के स्पर्धामूलक परिवेश की विडम्बना को 'आगामी अतीत' की थीम बनाया गया है। शीर्षक में प्रयोगवाद का संभ्रम जरूर हो सकता है परन्तु हमारे मध्यवर्गीय जनजीवन की बेतहाशा आपाधापी की यह बड़ी सच्चाई है, यही बड़ा विजन है।"[21]

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में आज की जटिल और विषम सामाजिक परिस्थितियों में आर्थिक संपन्नता कितनी महत्वपूर्ण हो गयी है, इस कटु सत्य को अनावृत किया है। अपनी आर्थिक विपन्नता को सम्पन्नता में बदलने के लिए 'आगामी अतीत' का नायक कमल बोस (निम्नवर्ग का एक शिक्षित युवक) पूँजीवादी शक्तियों से समझौता ही नहीं करता है अपितु अपने वर्ग को भी भूल जाता है। कमल बोस के अवसरवादी और सुविधाभोगी चरित्र को प्रशांत इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है - "तू फर्स्ट आया था ... बस, वही से तू कतई दूसरी तरह के सपने बुनने लगा था। प्रातियोगिता ! इस बेहूदे कंपिटीशन की दौड़ में तू शामिल हो गया था। इस मुकाबले की दौड़ में जीतने के लिए वे सब चीजे चाहिए जो एक सफल होने वाले आदमी के लिए बेहद जरूरी होती हैं - एक खूबसूरत बीवी चाहिए, पैसा चाहिए ... ऊँची रिश्तेदारी चाहिए ... और सबसे बड़ी चीज जो चाहिए वह यह कि मुकाबले की इस दुनिया में सफल होने के लिए, उसे दूसरे के जज्बातों का कोई ख्याल नहीं करना चाहिए। उसे स्वार्थी होना चाहिए ... सफल होने वाले आदमी को दूसरों को इस्तेमाल करना चाहिए ... खुद इस्तेमाल की चीज नहीं बन जाना चाहिए। इसलिए तुमने चंदा के जज्बात इस्तेमाल कर लिए .. अब उसका दुख मनाने से फायदा ? पछताने का मतलब ?"[22]

कमलेश्वर ने अपनी कथाओं, अपने पात्रों के माध्यम से इस विराट संदर्भ अर्थात पूँजीवादी षडयंत्र का पर्दाफाश किया है जो कुछ दुलमुल चरित्रों को अवसरवादी बना डालता है। पूँजीपति व्यवस्था के प्रति अपना प्रतिशोध लेखक 'चाँदनी' के जरिए प्रकट करते हैं। असल में यह शोषित मध्यवर्गीय समाज का आक्रोश है। कमल बोस ने धन-संपत्ति की लालसा से जीवन में

सच्चा प्रेम, प्रेमिका, पत्नी सब खो दिया था। चाँदनी जब उसके ग्राहक कमल बोस के निष्क्रिय व्यवहार से अतृप्त होकर जाने लगती है तो कमल बोस ने पूछा - "तुम्हे पैसे से मतलब मैं तुम्हें पेशगी दे चुका हूँ।"[23] तब चाँदनी अपनी सफाई के लिए पचास रूपये का नोट कमल बोस के सामने फेंककर पूँजीवादी समाज व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करती है -" पूँजीवादी समाज व्यवस्था में तो 'हराम के पैसे' ही विषमता की जड़ होते हैं। ... न बाबा, न मुझे नहीं चाहिए ये हराम के पैसे।"[24] उस वक्त चाँदनी अपनी माँ की बातों के जरिए मेहनत करने वाले लोगों का सही चित्र प्रस्तुत करती है। "अम्मा कहती थी, ईमानदार लोग हमेशा गरीब रहते हैं। गरीब इस बात का सबूत है कि. हम ईमानदार है। यह सच है ?"[25] चाँदनी के दिल में झूठी सामाजिक व्यवस्था के प्रति घृणा है। इसलिए वह अपनी माँ (अम्मा) की बातों को आदर्श मानकर उसी के भरोसे जीवन बिताती है।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में नारी जीवन की विसंगति का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। एक ओर प्रेम का शिकार होकर अभिशप्त जीवन जीने को विवश माँ चंदा है तो दूसरी ओर अकेलेपन के कारण वेश्या बना दी गई बेटी चाँदनी है। ये दोनों आधुनिक सभ्य समाज के निर्मम अत्याचार के शिकार हैं। लेकिन दोनों में अन्तर है। माँ चन्द अतीत प्रेम की यादगार में जीवन भर तड़पती रही लेकिन बेटी चाँदनी अपनी जवानी में ही सामाजिक अत्याचारों का कड़वा घूँट पीकर भी हारती नहीं।

नारी की विवश्ता एवं किसी एक के साथ जुड़कर रहने की इच्छा भी उसके कथन में स्पष्ट है -"ये मामूली काम नहीं है बाबू, बहुत पिता मारकर अनजाने आदमी को सहना होता है। तुम औरत होते तो समझ पाते। ... हर आदमियों के साथ एक-एक बार सोना और एक आदमी के साथ हजार बार सोना ... इसका फर्क तुम नहीं समझ सकते। इसे औरत ही समझ सकती है।"[26] चाँदनी ने नारी जीवन की दुर्दशा एवं विडम्बना का पर्दाफाश किया है। असल में चाँदनी के उक्त कथन कभी न सफल होने वाले सपने लेकर जीने को अभिशप्त नारी के मन का उद्‌गार है।

इस प्रकार कमलेश्वर के इस उपन्यास में धन-दौलत की होड़ में रत कमल बोस जैसे व्यक्ति का घोर पतन, नारी जीवन की विसंगति का यथार्थ अंकन, यथार्थ प्रेम की अभिव्यक्ति, प्रेम के शिकार होकर यातनापूर्ण जीवन बिताने को विवश चंदा एवं उस यातना का जहर पीकर भी जीवन की होड़ में हार न माननेवाली उसकी बेटी चाँदनी, पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध, समाज का अत्याचार आदि का सबल एवं यथार्थ चित्रण किया है। व्यक्ति की दृष्टि से देखे तो यह नारी समस्या पर आधारित उपन्यास है लेकिन सामाजिकता की दृष्टि से देखा तो यह एक सफल सामाजिक उपन्यास है।

4.2 कमलेश्वर का उपन्यास साहित्य : विभिन्न प्रवृत्तियों के पात्र

रचनाकार युग और परिवेश के अनुरूप पात्र का सृजन करता है। वास्तव में उपन्यासकार पात्रों या चरित्रों के माध्यम से मानव-जीवन के अनेक

पक्षों को प्रस्तुत करता है। इसलिए लेखक इन चरित्रों का निर्माण एक विशेष दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर, एक विशेष ढंग से करता है। भारतीय समाज विभिन्न वर्गों में विभक्त है। अतः विभिन्न वर्गो में जन्म लेने, विकसित होने के कार्य-कारणों से उन्हें उच्च वर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग के पात्रों में विभाजित कर अध्ययन या विश्लेषण का माध्यम बनाया जाता है। रचनाकार अपने वर्ग-चरित्र के अनुरूप वर्गीय प्रभावों के अनुरूप अपने रचना संसार में विभिन्न वर्गों के पात्रों का कलात्मक सृजन करता है।

सामान्यतः रचनाकार का जन्म, विकास, प्रशिक्षण जिस वर्ग में होता है, जिन्हें वह अच्छी तरह जानता है, वह उसी के अनुरूप पात्रों का सटीक चित्रण कर सकता है। इस संबंध में डॉ. त्रिभुवन सिंह का मत ध्यातव्य है- "बिना किसी एक निश्चित व्यक्ति को मस्तिष्क में लाये, यह कभी भी सम्भव नहीं है कि चरित्रों में जीवन-प्रेरणा-दायिनी शक्ति का संचार किया जा सके। वह निश्चित व्यक्ति लेखक के आसपास का भी हो सकता है और लेखक स्वयं भी।"(27)

प्रगतिशील आलोचना में प्रतिनिधि और टाइप पात्रों की विवेचना सशक्त रूप में हुई है। प्रतिनिधि पात्र सामूहिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है और टाइप पात्र किसी प्रवृत्ति विशेष का मनोविश्लेषणात्मक आधार रचता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के पक्षधर रचयिता यह मानते हैं कि पाठक वर्ग पर पर्याप्त प्रभाव डालने के लिए लेखक को 'प्रतिनिधि पात्र' और 'टाइप पात्र' दोनों प्रकार के पात्रों की सृजना करनी चाहिए ताकि समाजवाद का पक्ष प्रशस्त हो सके। कथाकार कमलेश्वर के कथा-साहित्य में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि प्राप्त होते हैं, जो अपनी वर्गीय प्रवृत्तियों, अभिरूचियों, संस्कारों एवं वर्गबोध को दर्शाते हैं। साथ ही उनकी रचनाओं में सत्चरित्र, देशभक्त, संघर्षशील टाइप पात्र भी उपलब्ध होते हैं। कहना न होगा कि पात्र सृष्टि का यह वैविध्य कमलेश्वर के कथा-साहित्य की एक बहुत बड़ी शक्ति है।

वर्ग प्रतिनिधि पात्र पाठकों को शीघ्र ही सम्प्रेषित हो जाते हैं जबकि टाइप पात्र अपने मूल चरित्र की असंग्दिग्धता देर से जाहिर कर पाते हैं। कमलेश्वर की रचनाओं में उन दोनों प्रमुख प्रवृत्तियों के पात्रों का वर्णन मिलता है। कमलेश्वर ने अपने 'आगामी अतीत' उपन्यास में वेश्या जीवन व्यतीत करने वाले 'चाँदनी' जैसे चरित्र को अपनी अभिव्यक्ति कौशल से नितांत सजीव रूप में चित्रित किया है। वेश्या जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करने वाली 'चाँदनी' संसार भर की वेश्याओं का प्रतिनिधित्व करती है। उपन्यास में चाँदनी की असहायता का लाभ उठाया जाता है। उसकी माँ की मृत्यु पागल खाने में रात के वक्त हो गई। आधी रात में माँ की लाश के पास पागलखाने में बैठी चाँदनी को 'बेटी' कहकर जिसने सांत्वना देने का बहाना बनाया उसी ने ही वहीं उस पर बलात्कार किया।

तन-मन से क्षत-विक्षत होकर पागलखाने के बाहर निकलनेवाली चाँदनी के आगे केवल एक ही रास्ता खुला दिखाई दिया, कोठी का रास्ता। उसे जीने के लिए वेश्या बनना पड़ा। आज की सामाजिक व्यवस्था इतनी गिर गई है कि यहाँ अकेली नारी का जीवन दूभर हो गया है। चाँदनी वेश्या वृत्ति करके

जीवनयापन करती है। इसलिए ही उसकी दृष्टि में यह वृत्ति हेय नहीं है। वेश्या वृत्ति के सम्बन्ध में उसकी मान्यता है "इस धन्धे की भी दुनिया बुरी नहीं है।"[28] क्योंकि उसने जीवन की वास्तविकता को स्वीकार कर लिया है। जीने के लिए हर कोई जो धन्धा अपनाता है उससे न्याय दिखाता है। चाँदनी औरत होते हुए भी नारी सहज भावनाओं से वंचित है। इसका कारण तो उसका पेशा ही है। कमल बोस से किए गए चाँदनी के उक्त कथन से यह व्यक्त होता है "मैं औरत नहीं हूँ। मुझे क्या मालूम, औरतें क्या करती हैं ? हाँ, तवायफ, तवायफ होती है। वह और कुछ नहीं होती।"[29] उसका दृढ संकल्प यह है कि शरीर ही जीवन का आधार है तो उसे ढँकने से क्या फायदा।

इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का 'कमल बोस' पूँजीवादी समाज व्यवस्था का असली प्रतिनिधि पात्र है। अपनी आर्थिक विपन्नता को सम्पन्नता में बदलने के लिए कमल बोस (निम्नवर्ग का एक शिक्षित युवक) पूँजीवादी शक्तियों से समझौता ही नहीं करता है अपितु अपने वर्ग को भी भूल जाता है। कमल बोस के अवसरवादी और सुविधाभोगी चरित्र को प्रशान्त इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है- "तू फर्स्ट आया था ... बस, वहीं से तू कतई दूसरी तरह के सपने बुनने लगा था। प्रतियोगिता ! इस बेहूदे कंपिटीशन की दौड़ में तू शामिल हो गया था। इस मुकाबले की दौड़ में जीतने के लिए अक्ल और तेजी ही नहीं चाहिए, इसमें जीतने के लिए वे सब चीजे चाहिए, जो एक सफल होने वाले आदमी के लिए बेहद जरूरी होती है -एक खूबसूरत बीवी चाहिए, पैसा चाहिए .... ऊँची रिश्तेदारी चाहिए.... और सबसे बड़ी चीज जो चाहिए वह यह कि मुकाबले की इस दुनिया में सफल होने के लिए, उसे दूसरे के जज्बातों का कोई ख्याल नहीं करना चाहिए। उसे स्वार्थी होना चाहिए .... सफल होने वाले आदमी को दूसरों को इस्तेमाल करना चाहिए....खुद इस्तेमाल की चीज नहीं बन जाना चाहिए। इसलिए तुमने चंदा के जज्बात इस्तेमाल कर लिए.... अब उसका दुःख मनाने से फायदा ? पछताने का मतलब ?"[30]

कमलेश्वर ने अपने पात्रों के माध्यम से इस विराट संदर्भ अर्थात पूँजीवादी षडयन्त्र का पर्दाफाश किया है। उनकी दृष्टि मनुष्य के सर्वांग को चित्रित करने की रही है। आधुनिक जीवन की यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि अभूतपूर्व सफलता के बाद व्यक्ति बिलकुल अकेला रह जाता है। अन्त में नायक कमल बोस की स्थिति ऐसी हो जाती है कि वह सफलताओं की स्पर्धा से ऊब कर अपने पुराने परिवेश तथा वर्ग में लौटना चाहता है, किन्तु लौट नहीं पाता।

नारी शोषण का और एक मुँह कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास में 'इरा' के जरिए प्रकट होता है। वह भी पति द्वारा परित्यक्ता हो जाने पर जीने के लिए शरीर का धन्धा अपनाती है। 'इरा' एक ऐसी नारी है जिसके जीवन में एक के बाद एक करके अनेकों पुरूष आए और गए लेकिन किसी को भी वह अपना न बना सकी। कहना न होगा कि 'इरा' आधुनिक नारी की एक ऐसी प्रतिनिधि पात्र है जो विपरीत परिस्थितियों में भी हार मानने

को तैयार नहीं होती। इरा के अनुसार भारतीय पुरूष प्रधान समाज की संरचना ही कुछ ऐसी है कि "तुम्हारे इस समाज में हर आदमी कुछ करने आता है और हर औरत कुछ भोगने आती है। इसलिए वह कुँवारी माँ की कोख से तुम्हारे प्यार भरे पापों ने जबर्दस्ती संताने पैदा की हैं और उन संतानों को तुमने पैगम्बरों का दर्जा दिया है।"(31)

कमलेश्वर ने अपने 'डाक बंगला' उपन्यास के माध्यम से इस तथ्य को उजागर किया है कि आजादी के बाद वेश्या का नाम, रूप, स्थान सब कुछ बदल गया है पर वैश्यावृत्ति, नारी-शरीर की सौदेबाजी में कोई बदलाव नहीं आया है। आजकल मध्यवर्गीय शिक्षित नारियों में एक ऐसा वर्ग है जो नगरों एवं महानगरों की भीड़-भाड़ में मौजूद है। 'सोसाइटी गर्ल' या 'कालगर्ल' कहलाने वाली ये आधुनिक नारियाँ अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थाओं के महत्वपूर्ण व्यक्तियों की हवस का शिकार बनती हैं। पब्लिसिटी के युग में 'माडलिंग' करके शरीर और सौन्दर्य का सौदा करती हैं। एक हद तक इस उपन्यास की नायिका 'इरा' भी ऐसी नारी ही है।

इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में 'पेड वाईफ' का पात्र निभाने वाली 'शीला' को भी 'कालगर्ल' का प्रतिनिधि रूप कहा जा सकता है। वह घर-घर में पति-पत्नी का खेल खेलती है। इसके बदले में उसे आर्थिक संसाधन प्राप्त होते हैं। वह शुद्ध रूप में व्यावसायिक स्तर पर काम करती है। आर्थिक अभाव और घर की जिम्मेदारियों ने शीला को ऐसा बना दिया था।

सामाजिक यथार्थ की केन्द्रिय भावना के कारण ही कमलेश्वर के उपन्यासों की पात्र सृष्टि सजीव है। समकालीन विस्तृत भारतीय समाज के प्रायः हर तबके और हर स्तर के पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिकता के साथ सामाजिक वर्गबोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। यानि कि कमलेश्वर के पात्र अधिकांशतः टाइप पात्र हैं और टाइप होते हुए भी अपनी निजी व्यक्तित्व को भी क्षमता के साथ स्पष्ट करते हैं। 'टाइप' पात्रों की हालत वास्तव में अपरिवर्तनशील होती है। कारण वे अपनी मूल प्रवृत्ति को बदल नहीं पाते हैं। वे अपने सिद्धांतों की सीमा में बँधे तथा स्थिर रहते हैं। इस तरह की प्रवृत्ति को कमलेश्वर के 'काली आँधी' उपन्यास के 'जग्गी बाबू' जैसे पात्र में देखा जा सकता है।

मालती के पति जग्गी बाबू एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। जिन्दगी को वे अपने ढंग से जीना चाहते हैं। उनके प्रत्येक कार्य और नीति में जीवन के प्रति उनका एक विशिष्ट दृष्टिकोण दिखाई देता है। प्रतिष्ठा के झूठे और ढोंगी मानदंड उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किए। वे उच्च वर्ग की खोखली, झूठी एवं आडम्बर पूर्ण जिन्दगी जीना नहीं चाहते हैं, बल्कि वे सदैव संघर्ष करने में विश्वास करते हैं। जिन मूल्यों और मान्यताओं को लेकर उन्होंने अपना जीवन बिताया है, उन्हें वे अब छोड़ना नहीं चाहते। इसके साथ ही वे अपने स्वाभिमान को भी बनाए रखना चाहते हैं। जग्गी बाबू अपने मध्यवित्तिय पारिवारिक जिन्दगी को छोड़ने को तैयार नहीं होते। उन्हें सदैव

संघर्षरत जीवन व्यतीत करने में ही आनन्द आता है। न तो वे अवसरवादी है, न स्वार्थी।

राजनीतिक फायदा उठाना और कमजोरों का शोषण करना उन्हें मान्य नहीं, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी मालती से स्पष्ट कहा - "मैं तुम्हारा पति हूँ ...फायदा उठा सकने वाला गैर आदमी नहीं... मैं तुमसे फायदा उठाऊँगा ? सोचो, क्या बात कही है तुमने ?"[32] जग्गी बाबू का यह विचार स्पष्ट करता है कि उन्हें कहीं पर भी अपनी राजनीतिक पत्नी से फायदा उठाने की अवसरवादी बात मान्य नहीं है। वे स्वाभिमान से जीना चाहते हैं और वह भी अपनी खरी कमाई पर।

इसके विपरीत जग्गीबाबू की पत्नी या उपन्यास की नायिका 'मालती' देश के उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए, अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए दाँव पेचों को आधार बनाते हैं। मालती एक महत्वाकांक्षी नारी है। वह हर चीज को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करती है और उसके बाद छोड़ देती है। किसी भी रास्ते से क्यों न हो वह सिर्फ जीतना चाहती है। ऐसे व्यक्ति के लिए अपने पारिवारिक रिश्तों एवं सामाजिक सम्बन्धों से कोई वास्ता नहीं। उसके लिए नैतिकता, आदर्श, ईमानदारी, सच्चाई और जीवन मूल्य नगण्य हैं। उसमें केवल सफलता की अदम्य भूख बनी रहती है। ऐसे व्यक्तियों की प्रतिनिधि है 'मालती'।

सुधी जन जानते हैं कि हमारे देश में प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में कमलेश्वर ने उस वर्ग की भ्रष्ट प्रवृत्ति को 'गेंदा कवि' जैसे टाइप पात्र के माध्यम से अभिज्ञापित किया है जो धर्म के आड़ में वेश्या व्यवसाय और स्त्रियों की बिक्री करते हैं। 'गेंदा कवि' बगल में झोला लटकाए, सिर पर गंजी की सफेदी टोपी, घुटनों तक धोती, बदन पर एक फतुई और माथे पर तिलक लगाये खंजड़ी की आवाज में गीत गाता फिरता है। वह खुद को 'सतसंगमाला' और 'नारी प्रबोधिनी माला' और लेखक कवि मानते हैं। जिले भर में होने वाले सभी सतियों पर इनके पवित्र प्रसिद्ध हैं। साधुवेश धारण कर लोगों की आँखो में धूल झोंकता है। पूरे भारत में घूमता रहता है और स्त्रियों का व्यापार करता है। इस व्यापार में बहुत माहिर है। गेंदा कवि ने असहाय बंसिरी को पाँच सौ रूपये रंगीले को बेचा था। मगन मिस्त्री गेंदा कवि के बारे में जानकारी देते हैं, .. "बड़ा घडियाला व्यापारी है। पंजाब तक व्यौपार करता है, पचासों निकाल दी ... एक से एक अव्वल लाता है ... किस्मत जबर है, इन्दर का अवतार कविराज हर वक्त दरबार भरा रहता है।"[33] लेखक ने ढोंगी धार्मिक भक्त का पर्दाफाश किया है।

इसी प्रकार 'लौटे हुए मुसाफिर' का जुम्मन साई जातीय भेद-भाव एवं संकुचित मनोभाव रखनेवाले धर्मात्माओं का सच्चा प्रतिनिधि है। चिकवों की शान्त, सुन्दर बस्ती में हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक नफरत की आग फैलाने में जुम्मन साई का बड़ा हाथ है। जुम्मन साई का व्यवहार इफ्तिकार के सत्तार से हुए उक्त कथन से व्यक्त होता है ... "अरे साई की माया साई

जाने। वह तो ऊँट की जात का है, जिसका पता ही नहीं चलता कि कब किस करवट बैठेगा।... यह साई बड़ा घटा हुआ आदमी है सत्तार। शहर भर में घूम-घूमकर यह करता क्या है ? जितने बुरे फेरवाले लोग हैं, सबसे दोस्ती है इसकी। इसे अल्लाह से क्या वास्ता ?"[34] इस प्रकार आजकल के धर्मात्माओं की पोल खोलने का प्रयास कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से किया है।

कहना न होगा कि सामाजिक जीवन के एक बड़े अंश को कमलेश्वर के पात्र हमारे सामने प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित करते हैं। उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के सभी पात्र उनके कथा साहित्य में मिल जाते हैं। इनमें पुरूष पात्र भी हैं और नारी पात्र भी। उनके नारी तथा पुरूष पात्रों के भी अनेक स्तर है जो सजीवतापूर्वक अपने व्यक्तित्व को लेकर हमारे सामने आये हैं।

4.3 स्त्री-पुरूष जीवन के परिवर्तनकारी संबंध

जिस तरह चक्र रहित रथ की तथा तार रहित वीणा की कल्पना नामुमकिन है उसी तरह स्त्री रहित पुरूष अथवा पुरूष रहित स्त्री की कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्री और पुरूष दोनों की जाति एक है लेकिन दैहिक इकाई के रूप में ये दो रूप हैं। स्त्री और पुरूष एक दूसरे के अनुपूरक भी है। सृष्टि के मूल में स्त्री और पुरूष दो ऐसे तत्व हैं जिनके आपसी सहयोग से ही सृष्टि विकास और परिचालन होता है। "नारी और पुरूष जीवन की दो ऐसी रेखाएँ हैं जो यदि मिल जाती है तो कोण, त्रिकोण या चतुर्भज, बहुभुज बना देती है और यदि न मिल सकी तो समानान्तर रेखाएँ बनकर अनन्त काल तक विलगाव की स्थिति पैदा कर सकती है।"[35]

स्वतंत्रता पूर्व के समाज सुधारक आन्दोलनों के चलते तथा स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक परिवर्तनों के चलते स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में काफी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। आज की स्त्री शिक्षित है, घर के चहार दीवारी के बाहर आयी है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र वह पुरूष के साथ अपनी समानता की माँग भी कर रही है और सामाजिक जीवन में अपनी उपयोगिता का नया अध्याय भी लिख रही है। इस वजह से पारम्परिक धारणाओं के चलते बहुत सीमा तक स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध परिवर्तित हुए हैं। इन कारणों से दोनों के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हुआ है। डॉ. यूसुफ अली शेख का मानना है कि - "मनुष्य की परम्परा को सुरक्षित रखने में स्त्री की केन्द्रीय भूमिका होने के बावजूद पुरूष आज भी समाज के केन्द्र में और स्त्री परिधि में हैं। आज नारी अपने भाग्य पर रोती नहीं है, आज वह तनकर खड़ी हो गयी है।"[36]

लेकिन स्त्री आज भी शोषण मुक्त नहीं हुई है। किन्तु उत्पीड़न के बावजूद इस नवयुग की स्त्री का नया रूप बनने से आज का पुरूष समाज रोक नहीं पा रहा है। डॉ. अमर ज्योति का कहना है कि -"महिलाएँ अब किसी भी अर्थ में पुरूषों से दोयम दर्जे की स्थिति में नहीं दिखाई देती। पुरूष

के समान आत्म निर्भर रहना अब उनकी महत्वकांक्षा है।"[37] जहाँ तक अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासकारों का सवाल है, स्त्री और पुरूष के बदलते सम्बन्धों की सामाजिक विवेचना उन्होने व्यापक रूप से प्रस्तुत की है। कमलेश्वर अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में सलमा के माध्यम से कहते हैं कि -" सच्चाई यही है कि कुदरत ने कुछ कानून बनाए हैं।... आदमी औरत के आपसी रिश्तों का यही कानून है कि औरत कुछ देकर पाती है और आदमी कुछ पाकर देता है। ... बराबरी जिनसे नहीं, जिससे तराजू पर रखकर तौल लिया जाए। बराबरी तो तमन्नाओं की होती है ... सपनों की होती है।"[38] नये परिवेश में स्त्री अपने को इस तरह ढाल चुकी है कि वह अपने साथ या अपने बच्चों के साथ पुरूष का नाम भी जोड़ने की आवश्यकता महसूस नहीं कर रही है।

प्रगतिशील रचनाकारों ने नारी जीवन को पर्याप्त अधिकार, सम्मान और जीवनाधिकार देने की पेशकश की है। कमलेश्वर के उपन्यासों में स्त्री-पुरूष सम्बन्ध पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तुलना की दृष्टि से पूर्णतः निराले रूप में चित्रित हुए हैं। हिन्दी के अधिकांश उपन्यास में अस्वाभाविक, संत्रास तथा पीड़ा से भरे हुए और कुंठा से ग्रस्त मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है लेकिन कमलेश्वर के उपन्यासों में यह स्थिति बदली-सी अंकित हुई है। उनके उपन्यासों की नायिका प्रतिकूल परिस्थिति का डटकर संघर्ष करते दिखाई देती है। वह जीवन से हताश होकर आत्महत्या करने वाली कमजोर नारी नहीं है। पुरूष पात्र स्थितियों से पलायन करते हैं और स्त्री पात्र समझौता। यह समझौता की स्थिति कहीं अलगाव के रूप में प्रकट हुई तो कहीं महत्वाकांक्षा के रूप में।

कमलेश्वर के कुछ उपन्यासों जैसे 'काली आँधी', 'पति-पत्नी और वह', 'तीसरा आदमी' और 'वही बात' आदि में स्त्री-पुरूष में परिवर्तित सम्बन्धों की सफल अभिव्यक्ति देखी जा सकती है -

<u>तीसरा आदमी</u> : सन् 1964 ई. में प्रकाशित 'तीसरा आदमी' उपन्यास कमलेश्वर का तीसरा बहुचर्चित उपन्यास है। अपने इस उपन्यास की भूमिका में कमलेश्वर कहते हैं कि -"इस उपन्यास की थीम है -महानगर में संघर्षरत एक मध्य वर्गीय परिवार। परिवार क्या, पति, पत्नी और पति का एक मित्र। संत्रास, घुटन, और उमस वाली भीड़-भरे इस महानगर के एक छोटे कमरे में इन तीनों का रचाव, बसाव, मनमुटाव, द्वन्द्व, संशय और स्पर्धा इस उपन्यास का खास कथ्य है। यह एक स्वाभाविक कथ्य है। जीवनयापन के लिए किए गये संघर्ष और आर्थिक दबाव के तनाव ही विशेष तौर पर इस कथ्य के मूल में है। 'तीसरा आदमी' एक संशय की कथा है जिसमें पति अपनी पत्नी पर शंकालु निगाह रखने को विविश होता है। उसका अजीज दोस्त एक वक्त उसके लिए 'तीसरा आदमी' का प्रतीकार्थ बन जाता है। यह कथा वक्त की नजाकत है।"[39]

प्रस्तुत उपन्यास में जीवन का यथार्थ वर्तमान आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्य वर्गीय व्यक्ति-चेतना के परिवर्तित रूप को

उद्घाटित करता है। इसके साथ ही लेखक ने महानगरीय जीवन के टूटते एवं बिखरते मूल्यों का मार्मिकता से चित्रण किया है।

इस उपन्यास में आर्थिक संकट, पति-पत्नी के मध्य भावात्मक दूरियाँ पैदा करता है और धीरे-धीरे शारीरिक दूरियाँ। अंत में वह स्थिति निर्माण होती है कि दोनों एक दूसरे से अलग होने पर विवश हो जाते हैं। नरेश और चित्रा दोनों पति-पत्नी आर्थिक संकट के कारण अलग हो जाने की यातनादायक प्रक्रिया में से गुजरते हैं। उपन्यास का नायक और चित्रा का पति नरेश चित्रा तथा सुमंत के सम्बन्धों के बारे में संशक्ति है। वह अपनी पत्नी को छोड़कर बार-बार पलायन करता है। वह भीतर ही भीतर घुटता और कुढ़ता रहता है। अंत में पत्नी के साथ रहने के निश्चय पर पहुँचता है, तो बड़ी देर के बाद। उन दोनों के भावात्मक और शारीरिक दूरियों का अंतर बढ़ता ही जाता है।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में छोटी-छोटी स्थितियों के द्वारा मध्यवर्गीय जीवन की विषमताओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है -"घर में जूते तो सब के अलग-अलग आते थे, पर चप्पलें कुछ इस तरह खरीदी जाती थीं कि जिनसे एक-दूसरे का काम भी निकल जाए। बाबू जी की चप्पल मेरे काम आ जाती थी और बहनों की चप्पलें जरूरत के वक्त माँ की इज्जत रख लेती थीं, बहनों के पास साड़ियाँ भी ऐसी ही थीं, जो बदल-बलकर एक-दूसरे के काम आती रहती थीं।"(40)

वस्तुतः यह स्थिति 'तीसरा आदमी' के परिवार के साथ ही नहीं है अपितु आज के प्रायः सभी निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की है। यही कारण है कि कमलेश्वर की वस्तु-चेतना मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को अधिक रूपायित करती हुई परिलक्षित होती है। उनकी यह वस्तु मध्य और निम्न वर्ग के संघर्ष को अत्यन्त सार्थक रूप में चित्रित करती है। एक ओर जहाँ से स्थितियाँ परिवार में स्नेह और आत्मीयता उत्पन्न करती है, वहाँ दूसरी ओर कटुता भी भर देती हैं। "दूसरे आगत बच्चे को लेकर चित्रा से मेरा कुछ मनमुटाव चल रहा था। मेरी इच्छा थी कि उसे दुनिया में न लाया जाए। मेरी हालत ऐसी नहीं थी कि मैं एक और को पाल सकूँ। यह वस्तु-स्थिति थी। चित्रा कुछ भय के कारण और कुछ संस्कारों के कारण मेरी बात को स्वीकार करने में असमर्थ थी, मैं नियति पर विश्वास करके नहीं बैठना चाहता था। इतनी ताब ही मुझमें शेष नहीं रह गई थी।"(41)

लेखक ने संवेदना के माध्यम से हर छोटी-मोटी घटना को पकड़ने का सफल प्रयास किया है। महानगरीय सभ्यता के बीच दिल्ली की बाहरी चकाचौंध, सड़के, होटल और नई से नई इमारतों के बीच इस लघु उपन्यास का प्रमुख पात्र जिस जगह रहता है वहाँ हैं "सीली हुई दीवारे-सडे अनाज की तरह महकता हुआ बिस्तर-कोने से आती हुई राशन की गन्ध-मैले कपडों की भभक और उनसे फूटती हुई चित्रा के बालों में पड़े तेल और बंधी वेणी की बू उसका तन पसीजने पर भी लगता है और उस मिली-जुली गंध के ज्वार में वे डूब जाते हैं।"(42)

साहित्य में दिल्ली वैभव, ऐश्वर्य, वासना और सौन्दर्य के रूपों को लेकर ही अधिक प्रकट हुई है। इतिहास और राजनीति की दिल्ली भी लगभग कुछ ऐसे ही अभिजात्य वर्ग की है। किन्तु कमलेश्वर ने उसी दिल्ली को अपने वास्तविक रूप में देखा है। वहाँ पति-पत्नी के स्वतंत्र मिलन पर पुलिस के सिपाही की रोक-थाम है। मिली-जुली गंधों के बीच पति-पत्नी की घुटती और अन्त में टूटकर बिखर जाती हुई जिन्दगी का चित्रण निश्चय ही स्वाभाविक कहा जा सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व की माँग भी अभिव्यक्त हुई है। चित्रा पढ़ी-लिखी है। वह अपने पारिवारिक सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए नौकरी छोड़ने को तैयार नहीं होती है, क्योंकि वह अपने पैरों पर खड़ी होकर जीवन बिताना चाहती है। किसी पर बोझ बनकर जीने को वह तैयार नहीं होती। चित्रा 'अहंवादिनी' है। वह अपने 'अहं' को बनाए रखना चाहती है और अंत तक अपने 'अहं' की रक्षा करती है।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में समकालीन जीवन के विभिन्न रूपों की पर्याप्त और विविध झाँकी मिलती है, मनुष्य कई एक परिचित-अपरिचित रूपों के, परिवेश और उसके साथ सम्बन्ध के, मानवीय सम्बन्धों और परिस्थितियों के चित्र मिलते हैं। इस उपन्यास में जीवन के कटु सत्यों के सूक्ष्म और मार्मिक रूप अनुभूति की तीव्रता और विविधता के अगण्य स्तरों में बिखरे पड़े हैं।

<u>काली आँधी</u> : कमलेश्वर का 'काली आँधी' उपन्यास सन् 1974 ई. में प्रकाशित हुआ। जीवन की विसंगतियों के बीच तालमेल बिठाने का कमलेश्वर का प्रयास, इस उपन्यास में जिस रूप में उभर कर आया है, उस से युग सत्य उद्घाटित हुआ है। लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ राजनीति के संदर्भ सामाजिक यथार्थ को व्यक्त किया है।

अपने इस उपन्यास की भूमिका में लेखक का कहना है कि "काली आँधी में केवल राजनीति में चरित्रहीनता और भ्रष्टाचार का चित्रण नहीं है। इस उपन्यास के कथ्य में खासतौर पर दो तरह की वैचारिकता एक ही साथ गुंथी हुई है। भ्रष्टाचार के अतिरिक्त दूसरी वैचारिकता है -महत्वाकांक्षा के विस्तार की, सफलता और सफलता के नशे की। यह उपन्यास अपने रचनाकाल में चर्चा का विषय रहा। जब इसी पुस्तक पर आधारित फिल्म बनी तो वह फिल्म भी चर्चा का खास विषय रही। 'काली आँधी' राजनीति के विद्रूप चेहरे को उजागर करने के उद्देश्य से भी लिखी गई थी। भारतीय राजनीति में अवसरवादिता बढ़ने, गरीबी और भूख मिटाने की खोखली मुहिम चलाने और खासतौर पर भ्रष्टाचार पनपने का यही दौर रहा है। वोट के वक्त जिस प्रकार के वादे किये जाते हैं और उसके परिणाम वास्तविक तौर पर क्या होते हैं-'काली आँधी' में यह भी एक प्रमुख मुद्दा है। 'काली आँधी' आज भी समय की धार पर खरी है। उसकी कसौटी की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है।"[43]

यह उपन्यास स्वाधीनता के पश्चात् देश व्याप्त राजनीति के आंतरिक पहलुओं को निर्ममता से उद्घाटित करता है। उपन्यास की नायिका मालती राजनीति में प्रवेश करती है और निरन्तर सफलता प्राप्त करती चली जाती है। इस सफलता को प्राप्त करने के लिए उसे अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाने पड़ते हैं। सफलता के उच्च से उच्चतर शिखर पर पहुँचने के अन्तराल में वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह नहीं कर पाती है। वह अपने पुत्र और पुत्री से भी विमुख हो जाती है परन्तु उनका अभाव उसे एकांत के क्षणों में सालता अवश्य है।

वास्तव में राजनीति के नशे में वह इतनी अधिक चूर रहती है कि उसके और जग्गी बाबू (उसका पति) के बीच तनाव और कटुतापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। राजनीति कितनी घिनौनी, स्वार्थयुक्त, झूठ और फरेब के धरातल पर उपस्थित रहती है, राजनीति कितनी क्रूर और यातनादायक होती है, इसका अनुभव जग्गी बाबू लगातार करते रहते हैं। जग्गी बाबू मालती से समझौता नहीं करते हैं, जो इस बात का परिचायक तो है ही कि वह उच्च वर्ग की खोखली, झूठी, छल और आडंबरपूर्ण जिन्दगी नहीं जीना चाहते हैं अपितु इसका भी संकेत है कि जग्गी बाबू अनवरत संघर्ष करने में विश्वास करते हैं और अपने वर्ग (मध्यवर्ग) को नहीं छोड़ना चाहते हैं। इसके साथ ही जग्गी बाबू अपने स्वाभिमान को भी बनाए रखना चाहते हैं। इस संदर्भ में मालती और जग्गी बाबू का संवाद उल्लेखनीय है -"समझती तो हूँ पर राजनीति की इस दुनिया में साफ चेहरा रखने के लिए बहुत नुकसान भी उठाने पड़ते हैं। और हॉटल का बन्द होना कोई इतना बड़ा नुकसान नहीं है कि ...आप मेरी खातिर इतना भी नहीं कर सके ....
-फिर मैं करूंगा क्या ?
-क्यों, मेरे साथ मेरे काम में हाथ नहीं बँटा सकते ? इतने गैर लोग साथ रहकर काम करते हैं। कितनी चीजों को संभालना पड़ता है। आप दस कमेटियों के मेम्बर हो सकते हैं ... गैर लोग मुझसे फायदा उठा सकते हैं पर आपके लिए मैं किसी लायक नहीं ?
-मैं तुम्हारा पति हूँ ... फायदा उठा सकने वाला गैर आदमी नहीं .. मैं तुमसे फायदा उठाऊँगा ? सोचो, क्या बात कही है तुमने ?
-कोई गलत बात तो नहीं कही, अगर एक औरत इस लायक हो जाए तो इसमें पति-पत्नी का रिश्ता ...
-क्या कह रही हो तुम ?"(44)

दाम्पत्य सम्बन्धों की यह स्थिति आज के सामाजिक जीवन के उन परिदृश्यों को प्रस्तुत करती है जो एक किस्म का सामाजिक तनाव करती है। यह सामाजिक तनाव सम्बन्धों के उन वैविध्य को प्रस्तुत करते हैं जो सामाजिक मूल्यों पर आघात करते हैं।

इस उपन्यास में मालती नामक महत्वाकांक्षी नारी के जरिए समसामयिक राजनीति की पोल उखाड़ने का प्रयास किया गया है। मालती के पिता उसे विदेश भेजकर उसका भविष्य बनाना चाहता है। लेकिन उससे बढ़कर भारत में शादी करके रहना वह चाहती है। पिता ने उसे समझाया -"तुम्हें अपने

कैरियर का भी ख्याल करना चाहिए। शादी तो कभी भी कर सकती हो .. पर कैरियर बनाने का वक्त आदमी के पास ज्यादा नहीं होता।"[45] मालती के मन में पिता की बातें दब जाती है और फिर महत्वाकांक्षा के रूप में उभर आती हैं।

मालती अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति की पहली सीढ़ी(पब्लिक इमेज बनाए रखने) चढ़ने के लिए पति को होटल बन्द करने की सलाह देती है, "इससे मेरी पब्लिक इमेज पर धब्बा लगता है...।"[46] महत्वाकांक्षा के आगे सब कुछ अप्रधान है चाहे वह पति हो या बेटी या अन्य सम्बन्ध। यह कथावाचक के उक्त कथन से जाहिर होता है -"सफलता कितनी क्रूर होती है, कितनी जालिम होती है, इसका नशा कितना गहरा होता है और खुद अपनी सफलता में व्यक्ति कैसे कैद हो जाता है, इसका जीता - जागता उदाहरण है मालती।"[47] राजनीति में काम करते-करते वह पूर्णतः राजनीति की हो चुकी है। इसलिए ही वह हर चीज को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करती है और उसके बाद छोड़ देती है। किसी भी रास्ते से क्यों न हो वह जीतना और सिर्फ जीतना चाहती है। ऐसे व्यक्ति के लिए अपने पारिवारिक रिश्तों एवं सामाजिक सम्बन्धों से कोई वास्ता नहीं। उसके लिए नैतिकता, आदर्श, ईमानदारी, सच्चाई और जीवन मूल्य नगण्य हैं। उसमें केवल सफलता की अदम्य भूख बनी रहती है। ऐसे व्यक्तियों की प्रतिनिधि है मालती।

उपन्यास के अन्त में यह देखते हैं कि लिली को पंचमढ़ी पहुँचाने के लिए जग्गी बाबू और दिल्ली जाने के लिए मालती भोपाल रेलवे स्टेशन पर खड़े हैं। दोनों की गाडियाँ पांच मिनट के अन्तराल से छूटती है और दो दिशाओं की ओर जाती है। पति और पत्नी का प्रवास भी भिन्न दिशाओं की ओर जाता है। दोनों के जीवन की विडम्बना यह है कि दोनों ने जीवन की यात्रा साथ में आरम्भ की थी किन्तु अन्ततः दोनों एक दूसरे से इस प्रकार बिछुड़ गये थे कि मिलन की सम्भावना ही न रही।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में पति-पत्नी के सम्बन्धों को लेकर उनके जीवन के घात-प्रतिघात को संघर्ष और द्वन्द्वों का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है। इस संघर्षपूर्ण जीवन के कारण ही 'काली आँधी' उनका एक बहुचर्चित उपन्यास सिद्ध हुआ। प्रस्तुत उपन्यास के सम्बन्ध में शिवकुमार मिश्र का कथन है कि -" काली आँधी उपन्यास में कमलेश्वर दिखाते हैं कि महत्वाकांक्षाओं की काली आँधी किस तरह एक परिवार के सारे सुख चैन को अवसाद के घने अँधियारे से भर देती है। सारे आत्मीय नाते-रिश्ते उसकी गुंजलक में अपनी सार्थकता खो देते हैं, रह जाती है एक ऐसी मरीचिका आगे और आगे बढ़ते जाने की धुन, जिसका कोई अंत नहीं।"[48]

<u>वही बात</u> : रचनाकार कमलेश्वर का 'वही बात' उपन्यास सन् 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। 'आगामी अतीत' की भाँति इस उपन्यास में भी लेखक ने एक महत्वाकांक्षी पुरूष का चित्रण किया है। प्रशान्त कैरियर बनाने की होड़ में, धन के पीछे तथा मान-सम्मान के पीछे, जीवन में सफलता पाने के लिए अपनी पत्नी समीरा से दूर हो जाता है। समीरा के जीवन में दूसरे पुरूष

नकुल का आगमन होता है। परन्तु समीरा की ट्रेजडी है कि उसका अकेलापन उसी का होकर रहता है। पार्टनर बदलने से स्थिति नहीं बदलती। 'वही बात' रहती है। यह सम्बन्धों के चुकने की कहानी है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक नए समझौते की तरफ संकेत किया गया है। उपन्यास के कथ्य में महत्वाकांक्षी पति और उसकी दमित पत्नी का द्वन्द्व है। पति के स्थानान्तरण के पश्चात् पत्नी का एकांत और भी गहरा हो जाता है। ऐसी अवस्था में भावनावश पत्नी अपना एकान्त कहीं खत्म कर लेती है फिर दोनों में तलाक हो जाता है तथा पत्नी पुनर्विवाह रचाती है और पहला पति अपनी महत्वाकांक्षाओं की दुनिया में लौट जाता है।

सिर्फ इतनी-सी कहानी वाले इस उपन्यास में स्त्री की इच्छा शक्ति और पुरूष की महत्वाकांक्षा के द्वन्द्व को प्रकाश में लाने का ही प्रयास रहा है। कथा की परिणति में समझौते के दूसरे रास्ते को एक नवीन क्रान्ति की संज्ञा दी जा सकती है। ... लेखकीय प्रयास यह रहा है कि यहाँ स्त्री की भावना को दमित करके न रखा जाए। यदि वह उपेक्षित और अकेलापन महसूस करती है तो इसका दोषी निश्चित तौर पर पति ही होना चाहिए। ऐसी हालत में स्त्री को क्या अपना खालीपन भर लेना उचित नहीं है ?

प्रस्तुत उपन्यास स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की दरअसल एक नयी परिभाषा तैयार करती है। शहरी मध्यवर्गीय समाज में अनेक समझौतावादी रिश्तों के नजारे देखने को मिल सकते है.... लेकिन यह उपन्यास नकारात्मकता को कतई स्वीकार नहीं करता। सामाजिकता की सही और सुदृढ दिशा क्या होनी चाहिए, यह इसके समाधान में निहित है।

<u>पति पत्नी और वह</u> : कमलेश्वर का यह उपन्यास भी एक सिने उपन्यास है। जिसका पहला संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ। कमलेश्वर प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में कहते हैं कि -" 'पति-पत्नी और वह' का आइडिया मूल रूप से प्रख्यात फिल्मकार बी.आर.चोपड़ा ने दिया था। ...इसके मनोरंजक दृश्य-प्रसंगों की परिकल्पना की गई, खासतौर से यह ध्यान रखते हुए कि यह निम्न-मध्यवर्गीय पात्र के मानसिक और जीवनगत यथार्थ का अतिक्रमण न करते हो और साथ ही वे दर्शक के मनोजगत के साथ-साथ चल सकते हों। फिल्म बहुत सफल हुई। इसमे संजीव कुमार और विद्या सिंन्हा मुख्य भूमिकाओं में थे। अन्त में जो सेक्रेटरी आती है उसकी भूमिका, अगर भूलता नहीं हूँ तो, प्रवीन बॉबी ने निभाई थी।"[(49)]

वरिष्ठ उपन्यासकार कमलेश्वर का यह उपन्यास समकालीन समाज में पुरूष मानसिकता को उघाड़कर रख देता है। देहलोलुप पुरूषों की लिप्सा और कुंठा इस उपन्यास का केन्द्रीय विषय है। पत्नी हो या प्रेमिका स्त्री हर तरह से पुरूषों द्वारा छली जाती है। जिसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है - रंजीत अपनी सेक्रेटरी की सहानुभूति पाने हेतु अपनी पत्नी की बीमारी का बहाना बनाते हुए निर्मला से कहता है - "कल रात वाइफ की तबीयत अचानक बहुत ज्यादा खराब हो गई। मेरी तो समझ में नहीं आया कि उसे किसी हॉस्पिटल या नर्सिग होम में ले जाऊँ या अपने फेमिली डॉक्टर को

बुलाऊ-जैसे-तैसे रात गुजरी है। समझ में नहीं आ रहा कि क्या करूँ ..न मर सकता हूँ... न जी सकता हूँ... दम घुटने लगा है... चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई दे रहा है ..उम्मीद और जिन्दगी की हल्की-सी रोशनी तक कहीं दिखाई नहीं दे रही। ...पता नहीं मेरे नसीब में क्या- क्या है...जिन्दगी भर छटपटाना, सहना और घुट-घुटकर मरना शायद यही मेरे नसीब में लिखा है। हाँ, निर्मला, अब तो मेरा एक सहारा तुम ही हो ..तुम न होती तो अब तक तो शायद मैं इस दुनिया से कभी का जा चुका होता। अब तो यह जिन्दगी तुम्हारी ही अमानत है निर्मला।"(50)

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य भले ही रोमांटिक और हलका-फुलका लगे, लेकिन यह साधारणता ही इसकी खास विशेषता है। समकालीन जीवन की कार्यालयी संस्कृति में स्त्रियों की नियती और पुरूष की लोलुपता को लेखक ने इस उपन्यास में गहरी आंतरिकता से रेखांकित किया है।

4.4 संक्रमणशील जीवन मूल्य

मनुष्य मात्र में अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ और प्रगति की कामना होना सामान्य बात है पर युगीन परिवेश, पारिवारिक स्थितियाँ और व्यक्तित्व विकास के अवरोधक तत्व बार-बार उसके सपनों, अरमानों को चूर-चूर करते रहते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण हमारा संक्रमण बोध बढ़ता जा रहा है। वस्तुतः आज गरीब दिन प्रतिदिन गरीब होता जा रहा है, और अमीर तो अमीर से अमीर होता जा रहा है। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच वैचारिक मतभेद भी हमारी वर्गीय संक्रमणशीलता को बढ़ावा देता है।

धार्मिक संकीर्णता, जातिभेद और साम्प्रदायिकता के भेदभाव ने हमारे देश की जड़ों को खोखला बना दिया है और वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया को दीर्घकाल तक स्थगित किया है। उच्चवर्ग तबका हमेशा नई-नई चालें चलता है और संक्रमण बोध के लिए बाधक तत्व बना रहता है। मध्यवर्गीय जीवन अभावों, आर्थिक-विषमताओं, अतृप्त जीवनेच्छाओं और दुःखों का कठघरा होता है। पूँजीपति दानव उसके पहरेदार होते हैं। किसी भी पूँजीवादी देश- अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और भारत में उच्च वर्ग का व्यक्ति जितना खुशहाल और साधन सम्पन्न है, उसकी तुलना में निम्न वर्ग का व्यक्ति उतना ही दुःखी। मध्यवर्ग का व्यक्ति बीच की स्थिति में 'त्रिशंकु' बना रहता है।

कमलेश्वर के उपन्यासों में मध्यवर्गीय परिवेश, पात्रों एवं वर्गीय संक्रमण का चित्रण पाया जाता है। जिसका विवेचन विभिन्न उपन्यासों के विभिन्न प्रसंगों, वर्णनों, घटनाओं के माध्यम से रेखांकित किया हैं -

कितने पाकिस्तान : कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास की बहुआयामी एवं विस्तृत तस्वीर अपने अंदर समेटे हुए है। यह अत्यन्त व्यापक फलक पर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास के प्रकाशन से पहले कमलेश्वर की कहानी 'कितने पाकिस्तान' प्रकाशित हुई थी। जिसकी पृष्ठभूमि बांग्लादेश का मुक्ति संघर्ष था। जिस बिंदु को लेकर उन्होंने यह कहानी लिखी थी। उसका विवेच्य उपन्यास में व्यापक

स्तर पर हुआ है। यहाँ कथानक केवल भारत के किसी एक शहर, कस्बे या गाँव तक ही सिमटकर नहीं रहता बल्कि देश काल की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ वैश्विक चिंताओं को हमारे समक्ष पेश करता है।

फरवरी 2000 में इस उपन्यास का पहला संस्करण छपा था। प्रस्तुत उपन्यास को साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है। अब तक उर्दू, मराठी, गुजराती, पंजाबी, ओडिया, बंगला तथा अंग्रेजी जैसी भाषाओं में इसका सफल अनुवाद हो चुका है। उपन्यास की पठनीयता ने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास को श्रेष्ठ और लोकप्रिय उपन्यासों की फेहरिस्त में शामिल करा दिया। "कथ्य के स्तर पर यह कृति एक ओर वैदिक काल से लेकर वर्तमान दौर के दार्शनिक-सांस्कृतिक संक्रमण को दर्शाती है तो दूसरी ओर रोमांटिक पात्रों, कथ्य विवरणों के वर्णन से समसामयिक राजनैतिक समस्याओं को उजागर करती है।"[51] इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हमने देखा है कि जहाँ एक ओर अणुशक्ति के रूप में उभरकर आ रहें भारत की आय.टी. बुम की, मीडिया क्रांति की, भारत के औद्योगिक प्रगति की बातें होती रहीं, वहीं आतंकवाद, सांप्रदायिक उन्माद, जातिगत संघर्ष, प्रांत, भाषा, पानी आदि के नाम पर बढ़नेवाली खौफनाक दूरियों के भी हम गवाह बने हैं। भ्रष्ट व्यवस्था भ्रष्ट नेताओं के हाथों कठपुतली बनी हमारी जनता, हर क्षेत्र में बढ़ता जा रहा भ्रष्टाचार...सब हम देख रहे हैं, उसके परिणामों को भुगत भी रहे हैं।

बाजारवाद, वैश्वीकरण के इस युग में समाज का एक तबका जहाँ तरक्की करता जा रहा है वहीं एक तबका जिंदा रहने की लड़ाई आज भी लड़ता जा रहा है। एक जमाना था जब ईस्ट इंडिया नामक एक कंपनी आई थी बाजार की तलाश में, कच्चे माल की तलाश में और एक आज का दौर है जहाँ एक नहीं अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपनी दुकानें सिर्फ हमारे देश में ही नहीं बल्कि कई विकसनशील देशों में खोल रखी हैं। उपन्यास में आदिकाल, आर्यों का आगमन, उनका संघर्ष; मोहनजोदडों सभ्यता; वेदों में असुरों के युद्धों की अनुगूँज; महाभारत युद्ध; आर्याना के डेरियस और यूनानी मिलिडयाडिस का मैराथन के मैदान में हुआ युद्ध; झेलम, कैने, सोमनाथ, तराइन, क्रेसी, पानीपत जैसे युद्धों का गहन अन्वेषण मानवीय धरातल पर किया है।

शीत-युद्ध की समाप्ति के बाद अमरीका के वर्चस्व को रोकनेवाला आज कोई देश नहीं रह गया है। महायुद्ध के भयंकर परिणामों को न जाने कितनी बार विश्व भुगत चुका है परन्तु फिर भी हथियारों की होड़ कम नहीं हो रही है। परमाणु युद्ध के खतरे का साया बराबर बना हुआ है। धर्म के नाम पर आतंक का खौफनाक चेहरा विश्वभर में दिखाई देने लगा है। सांप्रदायिक झगड़ों के जहर ने सर्वत्र अविश्वास का माहौल पैदा कर दिया है। कमलेश्वर द्वारा लिखित 'कितने पाकिस्तान' एक अदीब द्वारा ऐसी ही स्थितियों के विरूद्ध खोला गया एक मोर्चा है, एक लड़ाई है। कहना न होगा कि अदीब एक प्रकार से कमलेश्वर के विचारों का प्रतिनिधि पात्र है।

'इन बंद कमरों में मेरी साँस घुटी जाती है,
खिड़कियाँ खोलता हूँ तो जहरीली हवा आती है।"

इन पंक्तियों द्वारा शुरूआत में ही कमलेश्वर अपनी रचना की कथावस्तु पूंजीवादी व्यवस्था के दमनचक्र की ओर संकेत करते हैं। इस उपन्यास का कथानक किसी आम कथानक से हटकर है। नायक और नायिका की जगह हमारे सामने अदीब और अर्दली महमूद हाजिर हो जाते हैं जो हमें लेखक द्वारा निर्मित एक भव्य फैण्टेसी का हिस्सा बना लेते हैं। वर्तमान दौर के कठोर और यथार्थ के कारणों को विभिन्न पात्रों और रूपकों में पेश किया गया है। जो इतिहास एवं संस्कृति से जुड़े विभिन्न लोग हैं, चाहे वे देवता हो या बादशाह, राजनेता हो या तानाशाह, साहित्यकार हो या इतिहासकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक हो या पंडित, शोषित आम आदमी व चाहे कोई भी हो, उन सबको अदीब की अदालत में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए खड़ा कर दिया जाता है। केवल मृत या जीवित व्यक्ति ही नहीं बल्कि काल, नदियाँ और अपने समय की तमाम दस्तकें अदीब के सामने पेश होकर अपना पक्ष रखती हैं।

मानवीय मूल्यों की रक्षा से सम्बन्धित जिन सवालों से हम जूझने का प्रयास करते आ रहे हैं, उनके साथ लेखक अदीब के माध्यम से बार-बार टकराता है। पूरे उपन्यास में 'कमलेश्वर की मानवीय जीवन मूल्यों में आस्था दिखायी पड़ती है। जीवन मूल्यों से संबंधित बात की जाए तो स्पष्ट है कि मूल्यों में द्वन्द्व की स्थिति प्राचीन काल में मौजूद थी। वैचारिक हो या व्यावहारिक उसका प्रभाव समाज पर लक्षित होता था। प्राचीन संस्कृति में देवताओं का जीवन पूर्णतया भोगविलास से युक्त था। स्त्री उनके लिए भोग की वस्तु थी। उन देवताओं के पास मित्रता जैसे पावन रिश्तों की समझ नहीं थी। वहीं दूसरी ओर मनुष्य समाज इन देवताओं से भिन्न एक नैतिक समाज में जीवन व्यतीत कर रहा था। हित्ती सभ्यता का गिलगमेश मानवीय विचारों से ओत-प्रोत है। जीवन के ऐश्वर्य और भोगविलास ने उसे भी प्रभावित किया है, परन्तु उसके विचारों में समय-सापेक्ष परिवर्तन भी होता है। देवतागण द्वारा गिलगमेश की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए पृथ्वी पर एकिन्दू को भेजा जाता है, परन्तु थोड़े से संघर्ष के उपरांत एकिंदू गिलगमेश का मित्र बन जाता है। एकिन्दू देवताओं द्वारा भेजे गए वृषभ से गिलगमेश की रक्षा करता हुआ बुरी तरह घायल हो जाता है। यह उसका मित्र के प्रति कर्तव्य और प्रेम ही है।

प्रो. कुँवरपाल सिंह के अनुसार "कमलेश्वर का महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हमारे समय पर इतिहास और संस्कृति के माध्यम से अनेक जटिल सवालों से हमारा साक्षात्कार कराता है। क्या इतिहास पुराण है? क्या भारतीय संस्कृति इकहरी और धर्मविशेष से संबंध रखती है? इससे जुड़े हुए अन्य महत्त्वपूर्ण सवाल हैं। यह उपन्यास इन प्रश्नों को हमारे सम्मुख उठाता है। एक महत्त्वपूर्ण सवाल और है - धर्म का इतिहास में सत्ता और अपने वर्चस्व के लिए इस्तेमाल कमलेश्वर विभिन्न सवालों की तह में जाने का प्रयास करते हैं।"[52] इतिहासकारों द्वारा अलग-अलग व्याख्याएँ दी जाने के

कारण इतिहास से संबंधित कई घटनाओं को लेकर समाज में भ्रांतियाँ फैलती हैं। ऐसी ही भ्रांतियों का निराकरण करते हुए, विजेताओं द्वारा लिखे गए इतिहास का दूसरा पहलू दिखाने का प्रयास 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में किया गया है।

सभ्यताओं के विकास, मुगलकालीन भारतीय इतिहास तथा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीयत संबंधी पहलूओं की सच्चाई को गंभीर ऐतिहासिक शोध के माध्यम से परखने की कोशिश की गई है। लेखक ने इसमें 'आर्य-आक्रमण' के पश्चिमी विद्वानों के सिद्धांत को नकारा है। उनके अनुसार वे आक्रांता नहीं थे बल्कि आदीम कृषि से परिचित खानाबदोश कबीले थे, जो सहनशील प्रकृति और सृजनगर्भा धरती की तलाश में निकले थे। बेबीलोन, मेसोपोटामिया, सुमेरी, हित्ती, अक्कादी और सिन्धु घाटी की सभ्यताओं के अनेक मिथकों के बीच समानता को ढूँढ़ने का प्रयास यहाँ किया गया है। जिस बाबरी मस्जिद ध्वंस काण्ड ने हमारे समाज में सांप्रदायिक उन्माद तथा विद्वेष को बढ़ाने के साथ धर्म को राजनीति को मोहरा बनाने की प्रवृत्तियों का एक नया दौर प्रारंभ कर दिया था, उस मस्जिद से संबंधित एक विस्फोटक तथ्य हमारे समक्ष लेखक प्रस्तुत करता है। अनेक प्रमाणों की सहायता से यह बताया जाता है कि बाबर कभी अयोध्या गया ही नहीं था और जब वह अयोध्या गया ही नहीं था तब उसके द्वारा मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाने का सवाल ही खड़ा नहीं होता है। इसी के साथ शाहजहाँ के समय और उसके बाद उसके बेटों के बीच तख्त के लिए हुए संघर्ष एवं षड़यंत्रों के तथ्य को लेखक यहाँ प्रस्तुत करता है।

कमलेश्वर द्वार दिए गए ऐतिहासिक विवरणों के बारे में डॉ. पुष्पपाल सिंह का कथन है कि - "उपन्यास के 25 वें अध्याय से लेकर 27 वें अध्याय तक का प्रकरण भले ही कथा पर भारी पड़ता हो, किन्तु उसमें ऐतिहासिक घटनाओं की तारीखें जिस रूप में दर्ज हैं, वह कथा को एक विश्वसनीयता प्रदान करते हैं, इन अध्यायों की एक उपलब्धि इतिहास को जाँच-परखने की दृष्टि है। जिसके आधार पर तार्किक विश्लेषण किए गए हैं।"[53] औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच उत्तराधिकार के लिए हुआ संघर्ष दरअसल सांप्रदायिक ताकतों और उदात्ततावादी ताकतों के बीच का संघर्ष है। सत्ता में आने के लिए धर्म या जाति का इस्तेमाल करने की जो प्रवृत्ति हम यहाँ पाते हैं, हम देख ही रहे हैं कि वर्तमान में साम्प्रदायिकता बहुत ही घिनौना रूप ग्रहण कर चुकी है जिसका हश्र हम गुजरात के गोदरा काण्ड में देंख चुके हैं।

विश्व की प्राचीन संस्कृतियों-सभ्यताओं के उदात्त पक्ष का जहाँ कमलेश्वर गुणगान करते हैं वहीं उनके नकारात्मक पहलुओं को भी वे हमारे समक्ष रखते हैं। आर्यों के, उपनिषदों के महत्त्व को वे मानते हैं परन्तु वे ब्राम्हणों के पांखण्ड आर्यो की विलासी वृत्ति का विरोध भी करते हैं। शंबूक की हत्या का वे एक महापातक घटना के रूप में उल्लेख करते हैं। जिसके कारण झंझावत और आँधियाँ चलने लगती हैं। अहिल्या के प्रसंग में उन्होंने वैदिक युग को माथा पीटते हुए दिखाया है।

वर्ण-व्यवस्था और स्त्री दशा के संबंध में वे लिखते हैं "ब्राम्हणों ने अपने श्रमजीवियों को शूद्र तो बनाया ही, इन्होने स्त्री को भी दंड देकर शूद्रों की श्रेणी में ड़ाल दिया।"(54) स्त्री के प्रति समाज की विलासी एवं भोगवादी वृत्ति पर उपन्यास में तीखा प्रहार किया गया है। विद्या और सलमा जैसे पात्रों के माध्याम से हिंदू और मुसलमान दोनों संप्रदायों में हो रहे नारी शोषण पर प्रकाश ड़ाला गया है। युद्धजन्य स्थितियों में स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों की ओर भी उन्होंने पाठकों का ध्यान खींचा है।

सत्ता और वर्चस्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने अधीन बनाये रखने की कोशिश में लगे सभी सभ्यताओं के देवताओं की विलासी वृत्ति, अकर्मण्यता पर लेखक ने प्रहार किया है। देवदासी रूना और गिलगमेश द्वारा मनुष्य की मनुष्यता कर्म, श्रम, प्रेम, मित्रता, क्रांति, शांति जैसे जीवन मूल्यों को बचाए रखने की तीव्र इच्छा सामने आती है। देवताओं के देवत्व की अपेक्षा लेखक उनकी कमजोरियों को भी रेखांकित करता है साथ ही उसे मनुष्य के मनुष्यत्व पर अधिक विश्वास है। संवेदनशीलता, करूणा, मित्रता, प्रेम जैसे मूल्य ही हैं जो मनुष्य के मनुष्यत्व को अबाधित रखते हैं।

इस उपन्यास में आए एक दिलचस्प पात्र अश्रुवैद्य के अनुसार वह आँसू ही है, जो संसार में संवेदना, करूणा एवं मानवता को जीवित रखे हुए हैं। आँसुओं के अभाव में मनुष्य पाषाण हृदय हो जाएगा। वह अदीब से कहता है -"मैं भी तुम्हारी तरह एक आम आदमी हूँ... तुम लिखते हो, मैं लिखता नहीं, पर मैं भी उसी तरह काम करता हूँ। मेरी एक प्रयोगशाला है, मैं हर अभावग्रस्त, यातनाग्रस्त और मृत्युग्रस्त मानव के आँसू एकत्रित करता हूँ।"(55)

कमलेश्वर भारत के विभाजन को सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी दृष्टियों से, एक गलत फैसले के रूपक में देखते हैं, जिसने एक कौम को धर्म के नाम पर दो मुल्कों में बाँट दिया था। बापू के शब्दों में वे कहतें हैं -"गलत फैसलों से हिंसा उपजती है और हिंसा से अपसंस्कृतियाँ और रक्तपात।"(56) भारतीय इतिहास में जिन्ना को विभाजन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। कमलेश्वर यहाँ दिखाते हैं कि भले ही जाने अनजाने जिन्ना जिम्मेदार रहे हो लेकिन वास्तविकता यह है कि वे तो केवल अंग्रेजी साम्राज्य की चाल का एक मोहरा थे। अंग्रेजों की कुटिल योजना के तहत अखंड भारत में धर्म के आधार पर फूट ड़ालने का सिलसिला 1857 से ही प्रारम्भ हुआ था और जिसके दूरगामी भयंकर परिणामों के रूप में 1947 के साम्प्रदायिक दंगों से लेकर 1984 के सिक्ख विरोधी दंगे, 1992 का बाबरी मस्जिद कांड है। इस के बाद भड़के सांप्रदायिक दंगे और जातीय संघर्ष आदि के रूप में सांप्रदायिक विद्वेष की आग में देश को झुलसना पड़ा। गोधरा काण्ड इसी आग का विस्तार था।

भारत-पाकिस्तान विभाजन के हादसे ने न जाने कितनी जिंदगियों के रूख हमेशा के लिए बदल दिये थे। जिनका वर्णन राही मासूम रजा के 'आधा गाँव', यशपाल का 'झूठा-सच' और भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास में वर्णित है। उपन्यास में अदीब-सलमा, अदीब-विद्या, जैनब और बूटा की

प्रेम कथा के प्रसंग आते हैं जो इंसानी रिश्तों में प्रेम के महत्त्व को रेखांकित करते हैं परन्तु विभाजन की स्थितियों के चलते ये प्रेमकथाएँ अधूरी ही रह जाती हैं। इसी विभाजन का शिकार हुआ है कबीर नामक एक अंधा जो कभी पाकिस्तान में तो कभी हिन्दुस्तान में भीख माँगता है। कभी यह सीधे - माउन्टबेटन को धिक्कारते हुए दिखाई देता है। कबीर के अनुसार उस जैसे भिखमंगों की नस्ल को अंग्रेजी उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी ताकतों ने पैदा किया था जो इंडस्ट्रियल रिवोल्युशन से पहले दुनिया के किसी देश में मौजूद नहीं थी। कबीर मानवीय मूल्यों का प्रतीक पात्र हैं जिसके द्वारा उपन्यास के अंत में धार्मिक उन्माद, विवेकहीनता, वैमनस्य, शोषण और मूल्यों को महत्त्व देते हुए भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टि को दिखाया गया है।

उपन्यास में केवल देश में हो रहे सांप्रदायिक दंगों की नहीं बल्कि पूरे विश्व में जगह-जगह धर्म एवं नस्ल के नाम पर होते आ रहे भयानक नरसंहार, मानवीय मूल्यों की हत्या, उपनिवेशियों के अत्याचार, महाशक्तियों द्वारा दुनियाँ के छोटे देशों का चित्रण किया गया है। उपन्यास में उन्मुक्त बाजार के खतरों को भी प्रस्तुत किया गया है। अमरीका के वर्चस्व में विश्व में विकसनशील एवं छोटे देशों पर जो धौंसबाजी चल रही है उसकी सच्चाई वे हमारे सामने रखते हैं। वास्तव में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए हमले के बाद अमरीका, अफगानिस्तान और ईराक में आतंकवाद के खिलाफ पुकारे गए युद्ध के नाम पर जो कर रहा है, वह भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास पाँच हजार वर्ष के इतिहास को अपने अंदर समेटे हुए है। इसके लिए लेखकीय सजगता एवं प्रतिबद्धता नितांत आवश्यक है। निश्चित रूप से कमलेश्वर ने लंबी तैयारी के पश्चात इसे मूर्त रूप प्रदान किया होगा। इस संदर्भ में यह वक्तव्य उल्लेखनीय है -" मन के भीतर लगातार चलने वाली एक जिरह का नतीजा है जो आज भी जारी है, जिसके तहत आदमी समूहों के आपसी जानलेवा संघर्ष की समस्या से वे सदैव जूझते रहे हैं। समय और इतिहास ही इस अद्‌भूत उपन्यास के 'नायक' और 'महानायक' हैं। इसमें लेखक अदीब की कचहरी बिठाकर उन्होंने दुनिया भर की सभी सभ्यताओं में चलने वाले संघर्ष की समस्याओं को उठाया है, जो साहित्य के इतिहास में अपनी तरह का पहला और ज्यादा सार्थक प्रयोग है। भारत के वर्तमान इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन आदि घटनाओं को भी उन्होंने इसमें विस्तार से दिया है और इसके माध्यम से देश के भविष्य को देखने की कोशिश की है।"[57]

रेगिस्तान : 'रेगिस्तान' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1988 ई में हुआ। आजादी के सपनों का टूटना और बिखरना इस उपन्यास का कथ्य है। सन् सैंतालिस में आजादी मिली तो किसको ? सवाल गहरा जरूर है किन्तु अनुत्तरित नहीं। क्या सिर्फ देश का शासन और प्रकाशन आजाद हो जाना ही सम्पूर्ण आजादी है ? समग्र भारतीयता की मूलभूल पहचान और प्रवृत्तियों की आजादी आज भी सवालों के घेरे में है।

'रेगिस्तान' में खासतौर पर गांधीवाद और गांधीवादी आदर्शों के सामाजिक यथार्थ का मिश्रण हो सका है। आजादी के आन्दोलन के वक्त गांधीजी के साथ अनगिनत लोगों ने अपने बलिदान दिए लेकिन आजादी के बाद गांधीवादी आदर्शों के पदचिन्हों का अनुसरण करने वालों का सामाजिक जीवन क्या इसी तरह रेगिस्तान-सा नहीं हो गया, जैसा कि इस उपन्यास के प्रमुख पात्र विश्वनाथ का हुआ।

गांधीवादी आदर्श सिर्फ गांधीजी के जमाने तक ही स्पृहणीय क्यों रहे ? आजादी मिलने के बाद गांधीवादी आदर्श-व्यवहार समाज के हाशिये पर क्यों चला गया। उपन्यास में विश्वनाथ सिर्फ पात्र भर नहीं है - वह हिन्दी बनाम स्वदेशी और सदाचारिता के वैसे सेवकों का प्रतीक है जिनके जीवन को समाज रेगिस्तान सरीखा बना देता है।

उपन्यास का इशारा गांधीवादी आदर्शों के साथ-साथ उन सन्दर्भो की तरफ भी जाता है- जहाँ सामाजिक जीवन जीने वाले व्यक्तियों के मार्ग में हमारी 'आजादियाँ' उन्हें बाधा पहुँचाती हैं। 'रेगिस्तान' उनका भी जीवन हो जाता है या समाज उन्हें वैसा बना देता है। लेखक का कथन है - "महात्मा गांधी ने जो आदर्श रखे थे और जिनके लिए अनगिनत व्यक्तियों ने अपने जीवन तथा सुख सुविधाओं का बलिदान दिया था, वे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद न जाने कहाँ लुप्त हो गये, और जो व्यक्ति इनको लेकर चले थे, उनका जीवन भी नष्ट-भ्रष्ट होकर मानो एक हाहाकार करता रेगिस्तान बन गया।"(58)

उपन्यास का कथ्य है स्वतंत्रता के पश्चात भारत को ऊँचाईयों तक पहुँचाने का सपना हर व्यक्ति देख रहा था। परन्तु वे स्वप्न पूरे न होने की यह दारूण कथा है। लेखक ने इस तथ्य को विश्वनाथ के जरिए उभारा है।

विश्वनाथ हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद गांधी के आदेशानुसार हिन्दी प्रचार के लिए घरबार सब कुछ छोड़ देता है। इसके लिए उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। एकमात्र पुत्र के सहारे जीने को इच्छुक विधुर पिता तड़प- तड़प कर मर गए। उसकी अन्तेष्टि भी वह न कर सका। प्रचारकों के पास वक्त नहीं था। उनका केवल एक ही घर था 'सारा देश'। उनके मन में केवल एक ही विचार था "देश निरक्षर है...ऐसे देश कैसे बटेगा। भविष्य कैसा बनेगा.. अपनी भाषाएँ नहीं आएगी तो ... अपनी भाषा, अपना देश, अपना राज, अपना वेश, यह कैसे हो ?"(59) उस समय सब कुछ 'अपना' था।

भारत आजाद हो गया तो सब कुछ एकदम बदल गया। आजादी मिलने तक हरेक जनता भाषा की बात करता रहा था पर सत्ता मिलने पर सब कुछ का हेर-फेर हो गया -"हिन्दी की गणेश पूजा करके अंग्रेजी को चलाए रखने की यह कैसी चाल है।"(60) उसे इस पर पछतावा हुआ। उसे लगने लगा कि क्या जीवन भर का दिया हुआ वचन झूठा पड़ जाएगा।

आजादी मिलने के सालों बाद वह अपने गाँव लौट आता है जहाँ से वह हिन्दी प्रचारक बन कर निकल गया था। लेकिन अब वहाँ पहुँचने पर उसे धक्का सा लगा क्योंकि जहाँ हिन्दी थी पहले वहाँ भी हिन्दी नहीं रही।

विश्वनाथ जैसे हिन्दी प्रचारक के जीवन भर की मेहनत मिट्टी में मिल गई। साथ ही गांधी जी का आदर्श भी। इसलिए उसके मुँह से हताश भरी आवाज निकली -"कहाँ है...अपनी भाषाएँ ? कहाँ है हिन्दी ? लोग वैसे गूँगे बैठे हैं...उसी तरह पड़े हुए है।"(61)

इन सब हेर-फेर के बावजूद भी ध्येयवान विश्वनाथ हारने को तैयार नहीं होता। अपने ही गाँव में हिन्दी मन्दिर खोलने का प्रबन्ध करने लगा। उस वक्त उसे चारों ओर से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लोगों का उपेक्षा भाव देकर -"एक बार मन में आया, नहर में डूबकर आत्महत्या कर ले।"(62) लेकिन उसका मन हारने को तैयार नहीं था। आखिर जिले के एम.एम.ए के पास गए तो वहाँ उसे बेइज्जती के सिवा कुछ न मिला। जिन्होंने अपनी जान तक कुरबान करके आजादी हासिल की, उस आजाद भारत के सत्ताधारी उन्हीं के मुँह पर थूकते हैं। यह तो आजाद भारत के राजनीति मूल्यों के पतन का द्योतक है।

आखिर सुशीला भाभी की सहायता से विश्वनाथ को जमीन मिली। हिन्दी मन्दिर बन गया तो उसका उद्घाटन उसे बाकर मिस्त्री से करवाना पड़ा। हिन्दी मन्दिर, हिन्दी प्रचारक एवं हिन्दी भाषा की ओर लोगों की उपेक्षा एवं असारता को देखकर बाकर मिस्त्री ने विश्वनाथ की करनी की आलोचना की -"तुमने जिन्दगी चौपटकर ली यार। का रखा है इस हिन्दी मन्दिर में।"(63) अब अड़सठ वर्ष की अवस्था में पहुँच कर उसे अपनी कुरबानी व्यर्थ महसूस होती है।

इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत में सभी क्षेत्र में हुए मूल्यों के पतन को उभारा है।

<u>लौटे हुए मुसाफिर</u> : 'लौटे हुए मुसाफिर' कमलेश्वर का दूसरा महत्वपूर्ण और बहुचर्चित उपन्यास है जिसका प्रथम संस्करण 1963 ई. और द्वितीय संस्करण सन् 1971 ई.में प्रकाशित हुआ। यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम स्वतंत्रता के साथ घटित विभाजन एवं उसकी विभीषिका पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास के बारे में कमलेश्वर कहते हैं कि -"जो कुछ मेरे छोटे से शहर में हुआ जिस तरह पूरा माहौल बदला और संवेदनशून्यता हावी होती चली गई, वे स्थितियाँ मुझे रचनात्मक स्तर पर लगातार कुरेदती रहीं...खासतौर पर सत्तार और साइकिल चलाने वाला रतन के रिश्तों का बदलना मुझे बेचैन करता रहा ... बावजूद इसके कि मेरे कस्बे में कोई दंगा-फसाद नहीं हुआ था, पर जो दंगा-फसाद आंतरिक सतह पर हुआ, वही इस उपन्यास का कथ्य है।"

"उस समय जो मैंने अपने शहर की धड़कनों को देखा और महसूस किया था और मैंने पहचाना था कि इस पूरी स्थिति को अमानवीय बनाने में धर्म से अधिक, अधूरे और अधकचरे इतिहास ने खलनायक की भूमिका अदा की। इतिहास का अहंकार कैसे मनुष्य को भावनाशून्य बनाता है ...और धर्म को नहीं आध्यात्मिक उन्माद को किस तरह मानसिक हिंसा का औजार बनाया जाता है, यह भी तब स्पष्ट हुआ था।"

"पर इस जहरीले माहौल के बीच भी मुझे यह नहीं भूलता कि गोसाई जी वाले मंदिर में कनेर के फूल खिल रहे थे और शिकोहाबाद जाने वाली सड़क की मस्जिद के आँगन में मेहंदी की महक आ रही थी।"

"लेकिन गलत इतिहास और उसका अहंकार स्वयं अपनी ही संस्कारशीलता और संस्कृति को कैसे नष्ट करता है ...इसका नजारा मेरे शहर ने ही पेश किया था और जो कह तो कुछ पाता नहीं था, पर भीतर ही भीतर रो रहा था।"

"और तब आती हुई जिन्दगी ने फिर से जीवित होती हुई संवेदनाओं को सहेजा था... और वे मुसाफिर जो चले गये थे, उनके बेटे अपने घरों को तलाशते हुए फिर लौट रहे थे ...और नसीबन की तरह यदि रचना जीवित रहती है तो मनुष्यता और संवेदना की तलाश का सेतु बन जाती है।"(64)

कमलेश्वर ने यह उपन्यास चिकवों की बस्ती को केन्द्र में रख कर लिखा है। यह एक ऐसी बस्ती है, जिसमें सदियों से हिन्दु-मुसलमान आपसी भाईचारे और विश्वास को जीवन के केन्द्रीय मूल्यों को आत्मसात करते हुए जीवन जी रहे हैं। इस बस्ती में जब ताजिये गुजरते थे तो उन पर लोग गुलाबजल छिड़कते थे और हिन्दू औरते अपने बच्चों को गोदी में उठाये ताजियों के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़ के मखाने बीनकर श्रद्धा से आँचल के खूँद में बाँध लेती थीं। इसी बस्ती में जब रामलीला का विमान उठता था तो मुसलमान औरते दरवाजों की चिकों या बोरों के पर्दे उलटकर मूर्तियों के श्रृंगार की तारीफ करती थी और उनके बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए आया करते थे "बोल राजा रामचन्द्र की जै... ।"(65)

बस्ती का जीवन अपनी चाल से चलता था। बस्ती में किसी की पैदाइश का दिन खुशी का दिन होता था और मौत का दिन गम का दिन। बस्ती के लोग इसी दुनिया में रहते थे क्योंकि उन्हें यहीं रहना था। वे यही काम करते थे और यहीं जिंदा थे, उनकी जिंदादिली की मिसाल साई की कोठरी थी, जहाँ आध्यात्मिक शांति के लिए स्टेशन के कुलियों और इक्केवालों का जमघट होता था, बीडियाँ फुँकती थीं और चिलमें सुलगती थीं, मुसलमान इक्केवाले और हिन्दू कुली-सब जमाने के मारे हुए थे, सबके नासूर एक से रिस रहे थे और सबके मसले समान थे उन्हें धर्म-चर्चाओं से कोई मतलब नहीं था, पर इससे मतलब था कि धर्म उन जैसे बदनसीबों के लिए क्या कहता है।

लेकिन, नफरत की आग से यह बस्ती जल उठी। इस नफरत की आग से बस्ती की रातें मनहूस हो गयी। पूरी बस्ती को साँप सूँघ गया। भीतर ही भीतर एक भूचाल आया, जिसमें बस्ती की चूलें हिल गई। दिली इमारतें ढह गई। अपनेपन का जज्बा मर गया। नफरत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया और चिकवों की बस्ती पूरी तरह उजड़ गई। यह क्यों उजड़ी ? इसके उजड़ने की शुरूआत कैसे हुई ? किसने इसे उजाड़ा ? जैसे सवालों को यह उपन्यास उठाता है।

इसे उजाड़ने की शुरूआत तब होती है, जब सियासी कारकून इस बस्ती में आता है और देखता है कि बस्ती में कोई सनसनी नहीं, बस्ती वाले दुनिया से एकदम अलग-थलग है। उन्हें तो यह भी नहीं मालूम कि मुल्क में

क्या हो रहा है और मुसलमानों को एक मुल्क मिलने वाला है। यह सियासी कारकून इस मुल्क के बारे में बस्ती के लोगों को बताना शुरू करता है। और तब नफरत की आग इस बस्ती में फैलती है। यह नफरत की आग फैली कैसे, इसके लिए लेखक इतिहास में जाता है और बताता है कि 1857 में अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए हिन्दू और मुसलमान एक साथ खड़े हुए थे। उस समय दोनों मिलजुल कर रहते थे। एक दूसरे के त्यौहारों में शरीक होते थे, लेकिन विद्रोह के बाद धीरे-धीरे नफरत की चिंगारियाँ उदित हुई।

इन नफरत की चिंगारियों को बस्ती में हवा देता है सियासी कारकून। वह बस्ती के आम जन के दिल में यह बिठाने की कोशिश करता है कि हुकूमते बरतानियाँ ने जिन्ना साहब को यकीन दिलाया है कि जंग जीतने के बाद हमें एक नया मुल्क देंगे। इसलिए जिन्ना साहब ने आजादी के आंदोलन को गलत बताया है और सच्चा मुसलमान हिन्दुओं के इस आंदोलन में भाग न ले और पाकिस्तान की माँग जोर शोर से उठाये और कोई ऐसा काम न करे, जिसमें हमें हिन्दुओं के साथ शामिल समझा जाए और अगर जरूरत हुई तो हमें कुर्बानियाँ भी देनी होंगी, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों में हमारे लिए एक नफरत है।

ऐसी ही नफरत हिन्दू महासभा के गठनायक जी फैलाते है जो यह बताते है कि औरंगजेब ने जो अत्याचार किए हैं, हिन्दू धर्म को जिस तरह भ्रष्ट किया है, उसी का बदला तो लेना है। हमारी परंपरा है राणा प्रताप की, शिवाजी की, जिन्होंने म्लेच्छों से कभी समझौता नहीं किया...।

इस नफरत के कारण बस्ती में नीम के पेड़ों पर बल्लियाँ लगाकर मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के झंडे फहराये गये थे। घरों पर छोटे-छोटे ऊँ के और हरे झंडे नजर आने लगे थे। शहर के आर्यसमाजियों ने सब दीवारों पर गेरू से ऊँ लिखवा दिया था। प्राइमरी स्कूल के अहातों में संघी नौजवान कवायद करते और लाठियाँ चलाना सीखते थे। पुस्तकालयों में बाँके मराठों और राजपूतों की जीवनियाँ भर गयी थीं। बच्चों ने एकाएक अपने पूर्वजों को पहचाना था और काली टोपी वाले गांधी जी पर बिगड़ते थे। म्लेच्छों के सर पर चढ़कर आर्यभूमि को, हिन्दुत्व को अपमानित किया जा रहा था। और चिकवों की बस्ती में साई समझाता था कि इस्लाम खतरे में है।

चिकवों की इस बस्ती में यह नफरत इतनी बढ़ जाती है कि अचानक लोग अपना कारोबार जल्दी जल्दी बंद करने लगते हैं और एक दूसरे से बिना दुआ-सलाम किये निकल जाते हैं, सोचने-समझने का नजरिया बदल जाता है, लोग समझने लगते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दो कौमें हैं और मुसलमानों के लीडर है मोहम्मद अली जिन्ना, जिनके साथ पूरी मुसलमान कौम है। ठाकुर साहब संघ की भाषा में बोलते हैं कि हिन्दू जाति को कोई परास्त नहीं कर सकता है, कलियुग में संघ ही शक्ति है।

इस नफरत का नतीजा यह होता है कि इफ्तिकार को अपने इक्के पर बिठाने के लिए सवारियाँ नहीं मिलती। हिन्दू अपने आप को एकाएक ज्यादा हिन्दू समझने लगे थे और मुसलमान अपने आप को ज्यादा मुसलमान। चौक

बाजार में दरी और चादरों के मुसलमान व्यापारी सफेद लुंगी के बजाय चारखाने की लुंगी पहनने लगे थे और ऊपर तंजेब के कुरते की जगह बाइल की रंगी हुई हरी कमीजें। बिसातखाने के बिसाती रोजमर्रा का सामान रखने के साथ-साथ अलीगढ़ की छपी हुई कुछ उर्दू किताबें और पर्चे भी रखने लगे थे और दूसरी तरफ मंदिरों में बिना नागा आरती होने लगी थी, गलियों में पुजारियों के खड़ाउँओं की गूँज दूर-दूर तक सुनायी देने लगी थी और मस्जिदों में गला खोलकर अजान दी जाने लगी थी और नमाज में शामिल होने वालों की संख्या बढ़ गई थी।

कमलेश्वर का यह उपन्यास आजादी के संघर्ष के दौरान पाकिस्तान की मांग के इतिहास और इस मांग से जुड़े संदर्भो को रेखांकित करता है। ये ऐतिहासिक संदर्भ उपन्यास में अप्रत्यक्ष रूप में रहते हैं, लेकिन इन संदर्भो के कारण बन रहे सामाजिक रिश्ते और आम आदमी की पाकिस्तान और जिन्ना के बारे में राय, मुसलमानों की असुरक्षा, पाकिस्तान बनने पर मुसलमानों का भविष्य, हिन्दू संगठन और मुस्लिम लीग की राजनीति के बारे में बताता है। उपन्यास में पाकिस्तान की मांग को लेकर और उन संदर्भो के कारण विकसित सांप्रदायिकता के अनेक विवरण हैं। सोलह अगस्त छियालीस के दिन मुसलमानों द्वारा काले झंडे लेकर जुलूस निकालने और मुस्लिम नेताओं द्वारा धुँआधार भाषण से हिन्दू सकते में आ जाते हैं। इसके कारण स्कूलों और मदरसों में बच्चों की हाजिरी बहुत गिर गई। कोई मुसलमान लड़का हिन्दू मोहल्ले से होकर स्कूल नहीं गया। हिन्दू लड़के मुसलमानों के मोहल्ले के पास तक नहीं गये। बाजारों में दुर्गा, चंडी, महाराणा प्रताप, हरी सिंह नलवा और पृथ्वीराज की तस्वीरें और ज्यादा दिखाई देने लगी थीं। पानवालों के यहाँ फिल्मी सितारों की तस्वीरे उतर गयी थी और उनकी जगह वीर हिन्दू सेनानियों की तस्वीरें लटक गई थीं।

यह संदर्भ पाकिस्तान की माँग के जोर पकड़ने के कारण सामने आए पर देश का आम मुसलमान पाकिस्तान की अवधारणा से परिचित नहीं था। वह कहाँ बन रहा है ? क्यों बन रहा है ? कैसे बन रहा है ? इन सबसे वह अनभिज्ञ था। उपन्यास के मुस्लिम पात्र पाकिस्तान के बारे में कुछ नहीं जानते, वे तो सिर्फ इतना जानते हैं कि एक आदमी मोहम्मद अली जिन्ना है, जो मुसलमान तो है, लेकिन नमाज नहीं पढ़ता। चिकवों की बस्ती में पाकिस्तान का प्रचार अलीगढ़ से आने वाला सियासी कारकून करता है। वह बस्ती के मुसलमानों को बताता है कि मुसलमानों के लिए एक अलग मुल्क बनाने का संघर्ष चल रहा है, जिसमें सभी मुसलमान पूरी तरह सुरक्षित और सुखी रहेंगे। वह काँग्रेस को हिन्दू जमात कहकर उसकी निंदा करता है। यह सियासी कारकुन मुसलमानों के जेहन में यह बिठाने की कोशिश करता है कि पाकिस्तान के लिए हमें कुर्बानियाँ देनी होंगी।

उसके इस बहकावे के कारण अंदर ही अंदर लोग दो दायरों में बँट चुके होते हैं। वे प्रेम, इंसानियत, भाईचारें को भूलकर हिन्दू या मुसलमान रह जाते हैं और इसलिए वे एक-एक करके बस्ती छोड़ देते हैं। बस्ती इसलिए नहीं छोड़ते कि पाकिस्तान में उनके लिए अधिक सुविधाएँ हैं, वरन् इसलिए

छोड़ते है कि बस्ती में नफरत और दहशत पहले से ज्यादा बढ़ चुकी है। उपन्यास में कमलेश्वर यह स्पष्ट कर देते हैं कि आम मुसलमानों का पाकिस्तान से कोई लगाव नहीं था। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई भी थी, जिसे रचनात्मकता के साथ कमलेश्वर ने इस उपन्यास में व्यक्त किया है। उपन्यास के पात्र सिर्फ इसलिए बस्ती छोड़ देते हैं कि वहाँ नफरत और विद्वेष बहुत ज्यादा हो गए थे। लेकिन खूबी यह है कि ये सभी पात्र बस्ती छोड़कर इसी देश के अन्य शहरों में चले जाते हैं, लेकिन पाकिस्तान नहीं जाते। सुबराती आगरा चला जाता है, चमन वहीं चुंगी में चपरासी हो जाता है, इफ्तिकार बस्ती में फैले मौत के आतंक से घबराकर हायरस चला जाता है, गनी मिस्त्री यह कहकर बस्ती से गया था कि मैं लाहौर जा रहा हूँ, पर लाहौर न जाकर फिरोजाबाद में अपना वक्त काटता है, ढोलकवाला मजीद आगरा में जूते गाँठता है, बस्ती के हकीम जी आगरा में घडीसाज बन गये, मदरसे में पढ़ाने वाले मौलवी शाहबुद्दीन आगरा राजामंडी के पुश्ते पर कबाब बेचते हैं। इन सब भटके हुए लोगों के बारे में इफ्तिकार नसीबन को बताता है कि "असल बात यह है कि सब बिखर गए और अपने हुनर से अलग होकर दूसरे धंधों में भूखों मर रहे हैं... जिन्होंने वादा किया था, वो पाकिस्तान चले गए हैं, लेकिन हमें लेने कोई नहीं आया ... हम यहीं भटक गए ..हम अपनी जड़ों से उखड़ गये... ।"(66)

इस नफरत के दौर में नसीबन और साई अपन बस्ती नहीं छोड़ते। ये दोनों मनहूस दिनों को याद करते हुए बस्ती के ढहते हुए घरों को देखते हैं, जहाँ टाट के पर्दे सड़-सड़ कर गिर गए थे और पहली ही बरसात में तीन चौथाई घरों की छते बैठ गई थीं। घरों में कमर तक आवारा घास उग गई। नसीबन और साई यह दृश्य देखकर दहशत में आ जाते हैं। एक उदासी उनकी आँखों में पसरी रहती है।

पर, इसी बस्ती में पाकिस्तान बनने के बारह-चौदह बरस बाद पाताल तोड़ कुएँ खोदने कुछ लोग आते हैं। उन लोगों के साथ बड़ी- बड़ी मशीनें आती हैं और वीरान बस्ती फिर से बसने लगती है। बस्ती को फिर से बसाने आते हैं कुछ मजदूर। उन मजदूरों में से सात-आठ आदमी इस बस्ती में नसीबन के पास आते हैं और बताते हैं कि इस बस्ती में हमारे मकान हैं। उन्हें देखकर नसीबन की आँखों में चमक आ जाती है। उसका बदन खुशी से थरथराने लगता है। वे मजदूर बशीर, बाकर, रमजानी, फत्ते ही थे, जो जवान होकर इस बस्ती में वापस आए थे - अपने घरों को खोजने, जो उनके बाप दादा छोड़ कर चले गए थे। नसीबन लौटे हुए उन बच्चों को बताती है "यह तेरे अब्बा का घर था... बशीर यहीं बैठकर चमडा कमाया करता था.... और बाकर बेटे वह देख रहा है न ...उसी के नीचे जो टूटी हुई दीवार है, वह तेरा घर था...और वह ढहा हुआ चबूतरा रमजानी के चाचा का है... ।"(67)

ये लौटे हुए मुसाफिर इस बस्ती को फिर बसाने के लिए ही आए हैं। जिन घरों को उनके बुजुर्ग छोड़ कर गए थे, वे उन घरों को फिर से बसाना चाहते थे। पाकिस्तान इन्हीं मजदूरों के लिए विडम्बना बन गया। यह विडम्बना

दो चार लोगों को नहीं, वरन् हजारों लोगों को भोगनी पड़ी, जो नफरत और विद्वेष के कारण अपने घरों से उजड़ गए और पाकिस्तान भी नहीं पहुँच सकें।

कमलेश्वर ने एक नये धरातल पर इस उपन्यास को रखा। भारत विभाजन पर लिखे गए अन्य सभी उपन्यासों में यह उपन्यास विशिष्ट और अप्रतिम है, जहाँ कमलेश्वर रचनात्मकता को एक नया आधार देते हैं। वस्तुतः "कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में उन अबोध लोगों की कथा को आधार बनाया है जो केवल अपनी रोजी-रोटी के लिए ही संघर्षरत थे, परन्तु सांप्रदायिकता की लहर में बह गए और न तो पाकिस्तान जा सके, न ही वापस अपने कस्बे में लौट सके। अंत में जो लोग लौटकर आए, वे मजदूर बनकर ही आए।"(68)

सुबह..दोपहर... शाम : कथाकार कमलेश्वर का यह उपन्यास सन् 1982 में साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का कथ्य राष्ट्रप्रेम को छूता है। उपन्यास में आजादी के पूर्व के भारत का चित्रण है। जोकि उपन्यास का कथ्य और परिवेश भी कहा जा सकता है।

कथानक की साधारणता में आशय की असाधारणता समाविष्ट है। एक शहरी मध्यवर्गीय परिवार और उसकी दैनिक चर्या उपन्यास की कथा का आवरण भर रही है। आजादी के आन्दोलन का गहरा असर खासतौर से दादी जैसे पात्र में देखा जा सकता है। जब जसवन्त अंग्रेज सरकार की सेवा में संलग्न हो जाता है तब इसे अपने परिवार की तरफ से जो हिदायतें दी जाती हैं, वह देशभक्ति के जज्बातों से लैस होती है। यानी कि स्वाभिमान और अपनी मिट्टी की पहचान का जज्बा इस उपन्यास का दूसरा तत्व है।

उपन्यास का कथ्य यह भी जाहिर करता है कि आजादी के आंदोलन के दौरान केवल केन्द्रीय स्तर पर प्रखर क्रांतिकारी ही देश-सेवा में नहीं लगे थे बल्कि दूर-दराज के छोटे गाँव परिवार के लोग भी अपने-अपने स्वाभिमानी कर्त्तव्यों और त्याग की भावनाओं से आजादी की अलख में योगदान कर रहे थे। कमलेश्वर ने अपने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि "सुबह...दोपहर...शाम' पारिवारिकता और क्रांतिकारिकता का एक संग्राम है। यह अनुभव सत्यों का रूपान्तरण है। एक ही परिवार में सिद्धांतों और आदर्शों की विभिन्नता का यह यथार्थवादी रूपक है। ..यह रूपक भले ही तब के समाज के हों किन्तु इसकी प्रवृत्तियों का नजारा अब के समाज में भी देखा जा सकता है।"(69)

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अंग्रेजों की क्रूरता एवं अत्याचार का यथार्थ चित्रण किया है। सन् 1857 में हुए पहले स्वतंत्रता संग्राम में बड़े दादा अंग्रेजों की गोली का शिकार बन गया। उसके बाद उनका शासन यहाँ जम गया तो अपने विरूद्ध आवाज उठानेवालों की जबान सदा के लिए बन्द करने तथा करवाने की नीति ये अपनाते रहे। नवीन तथा उसके साथी अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई लड़ रहे थे। नवीन को जिन्दा पकड़ने का आदेश दिया गया तो ये गोरे लोग नवीन के घरवालों का जीना दूभर बना देते हैं। वे उनके

त्यौहार, मेला, विवाह आदि अवसरों में दखले देकर भंग कर देते हैं। साथ ही साथ घरवालों को पीड़ित करते हैं। क्रांति के द्वारा देश की मुक्ति का आह्वान भी इसमें लेखक ने दिया है। यह तो लेखक का भी लक्ष्य है। लेखक के अन्दर जो क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित है उसे नवीन के जरिए अभिव्यक्त किया गया है।

लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से परम्परागत रीति-रिवाजों को बनाए रखने का प्रयास किया है। साथ-ही-साथ पारिवारिक सम्बन्धों को भी महत्त्व दिया गया है। नवीन क्रान्तिकारी होकर भी अपने परिवारवालों से जुड़ने की चाह, खून के रिश्ते की पवित्रता एवं दृढ़ता का सूचक है। अणु परिवार के इस युग में संयुक्त परिवार की गरिमा एवं महिमा को भी लेखक ने दर्शाया है।

इस उपन्यास में लेखक ने नारी को महत्त्व दिया है। नारी केवल बहु, पत्नी, माँ या बहन मात्र नहीं उसमें देश का इतिहास रचने की अदभुत क्षमता एवं शक्ति भी है। शान्ता के जरिए लेखक ने मातृभूमि तथा परिवार की रक्षा के लिए खतरों का कुशलता एवं साहस पूर्ण ढंग से सामना करने वाली नारी का चित्र खींचा है। नारी लक्ष्मी है सरस्वती और दुर्गा भी। शान्ता में हम इन तीनों रूपों को देख सकते हैं। लक्ष्मी के रूप में वह ससुराल में पैर रखती है, सरस्वती के रूप में हर मामलों का निपटारा करती है और दुर्गा बनकर अंग्रेजों से अपने देवर की जान बचाती है। इस प्रकार वह दादी की मनोकामना की पूर्ति करती है। उपन्यास में बड़ी दादी, जसवंत की अम्मा व शान्ता तीनों पीढ़ियों की नारियों के योगदान का सशक्त चित्रण है। ये तीनों महिलाएँ एक ओर परम्परा व संस्कारों से बँधी है तो दूसरी ओर देशभक्ति के अनुराग में रंजित। इस उपन्यास में मूल्यों व आस्थाओं के प्रति झुकाव व्यक्त हुआ है। स्वतंत्रतापूर्व की पीढ़ी का आदर्शो के प्रति रूझान ही इसका मुख्य स्वर है।

<u>अनबीता व्यतीत</u> : कमलेश्वर कृत 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास का प्रकाशन सन् 2004 में हुआ। इस लघु उपन्यास की कहानी 1947 के बाद सामन्ती युग का पतन, पर्यावरण, पक्षियों से प्रेम तथा सहज मानवीय कोमल सम्बन्धों की कहानी है।

उपन्यासकार कमलेश्वर ने इस उपन्यास के कथ्य में इस तथ्य को उजागर करने का प्रयत्न किया है कि आधुनिकीकरण के दौर में प्रकृति और पर्यावरण को शोषण का जरिया बनाया गया है। इसी प्रकृति में तरह-तरह के जीव हैं। अपने मखमली पंखों को लहराते, अपनी मधुर आवाजों से संगीत पैदा करते ये पंछी बरसों बरस मन की शांति को जीवन देते हैं। और इन्हीं पंछियों में आ मिलते हैं, वे परदेसी पंछी जो सर्दियों में सायबेरिया और उत्तरी गोलार्द्ध से उड़कर हर वर्ष भारत आते हैं। यहाँ बसेरा करते हैं। ये सुन्दर और मासूम पंछी लगभग 11,000 वर्षो से भारत आते हैं - हजारों मील का सफर तय करते हैं, हिमालय को पार करते हैं और सर्दियों में भारत को अपना घर बना लेते हैं। लेकिन इन मासूम पंछियों के पीछे भी मृत्यु पड़ी

रहती है। जगह-जगह इन्हें पकड़ा या मारा जाता है और इनका व्यापार किया जाता है। इसी यथार्थ को उजागर करती है और इसी सत्य को उद्‌घाटित करती है, वह नीली झील, जहाँ वे परदेशी पंछी जीवन पाने के लिए आते है - बसेरा करते है परन्तु शिकारी बन्दूक की एक गोली छूटती है और सारा वातावरण कोलाहल से भर जाता है। इसी दारूण मृत्यु परम्परा के अंधे-अभियान से मुक्ति का एक आख्यान है यह उपन्यास।

अम्मा : कमलेश्वर द्वारा लिखित 'अम्मा' उपन्यास एक सिने उपन्यास है जिसका पहला संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास मूलतः फिल्म के लिए ही लिखा गया। इसके निर्माता-निर्देशक कृष्णा शाह थे, जो अमेरिका में रहते हुए अंग्रेजी फिल्में बनाते हैं। इस फिल्म की मुख्य भूमिका राखी ने निभाई थी। अन्य महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में मिथुन चक्रवर्ती, सुरेश ओबराय, अमोल पालेकर आदि थे। इस उपन्यास के सम्बन्ध में कमलेश्वर का कहना है कि - "इसकी रचना की प्रक्रिया और प्रयोजन उन उपन्यासों से एकदम अलग है, जो मैंने अपनी अनुभवजन्य संवेदना के तहत लिखे हैं अतः यह कहने में मुझे संकोच नहीं है कि यह उपन्यास मेरे आन्तरिक अनुभव और सामाजिक सरोकारों से नहीं जन्मा है और इसका प्रयोजन और सरोकार भी अलग है। इसे लिखने का ढब और तरीका भी दूसरा है।"(70)

वरिष्ठ उपन्यासकार कमलेश्वर का यह उपन्यास एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था की वकालत करता है जिसमें अपने बैरियों के लिए भी स्नेह व सम्मान की गंजाइश हो। प्रस्तुत उपन्यास रूढ़िवादी पारम्परिक समाज में विधवा स्त्री की त्रासद स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है जो पाठकों के मन में करूणा का भाव जगाता है। उपन्यास के पात्र बाबू कुन्दनलाल के द्वारा लेखक ने सती प्रथा का विरोध किया है। जैसे "अरे कमबख्तों, तुम लोग जान-बूझकर एक जिन्दा इंसान को जला रहे हों ...उसकी हत्या कर रहे हो...तुम सब हत्यारे हो। ..किसी को आत्महत्या करने पर मजबूर करना, किसी जिन्दा इंसान को चिता में जलाना पावन पर्व नहीं, सबसे बड़ा अधर्म है यह हत्या है।"(71)

लेखक ने अपने उपन्यास में स्वाधीनता के लिए किए गए संघर्षो और अंग्रेजों की क्रूरता और कूटनीतियों को झेलते नवयुवकों की त्रासदी को पाठकों के सामने रखा है। स्वाधीनता संघर्ष में शामिल शान्ता का देवर 'नवीन' एक क्रांतिकारी है। वह भारतमाता को अपनी माँ से बढ़कर मानता है। नवीन के कारण उसके परिवार को बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। अंग्रेजी सरकार नवीन के घरवालों को परेशान करती थी ताकि नवीन का सुराग मिल सके। मुंशी जी बाबू कुन्दनलाल को कहते है कि "नवीन को तो घर की मोह ममता ही नहीं रह गई है। अरे, उस पर अगर क्रांति का भूत सवार न होता तो वह तुम्हारा दूसरा बाजू बन जाता है। आज ठाठ से अपने बड़े भाई की शादी में शामिल हुआ होता।"(72)

नवीन का बड़ा भाई प्रवीन सिर्फ दिखावे के लिए गांधीवादी था वरना असल में वह अंग्रेजी हुकूमत का पिट्ठू था। वह अपनी पत्नी शान्ता से

कहता है "मुझे जिन्दा रहने का पूरा-पूरा हक है शान्ता। मुझे भी जिन्दगी की सुख सुविधाओं की जरूरत है। मैं भी सुखी जिन्दगी जीना चाहता हूँ। हवेलीवाले इसलिए मौज कर रहे हैं क्योंकि वे सरकार का साथ दे रहे हैं। उनकी इज्जत है। उनके पास दौलत है। और हमारा घर डाकुओं का घर कहलाता है। हम गरीबी के दिन गुजार रहे है।"(73)

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने शान्ता जैसे स्त्री पात्र के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया है कि नवयुवक के साथ-साथ स्त्रियों ने भी स्वाधीनता संघर्ष में किसी न किसी माध्यम से भाग लिया। शान्ता में भी देशभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। देश के लिए समर्पित शान्ता अपने पति से कहती है - "तुमने नवीन के साथ विश्वासघात नहीं किया बल्कि अपने देश के साथ गद्दारी की है... तुम गद्दार हो...देश के दुश्मन हो ...आज से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं।"(74) इतना ही नहीं अपने पति की मृत्यु के बाद शान्ता ने अपने बच्चों का पूरी आत्मनिर्भरता के साथ पालन-पोषण किया। एक 'माँ' और 'बहू' का पूर्ण कर्त्तव्य निभाया। इस प्रकार शान्ता उर्फ 'अम्मा' उपन्यास में एक मजबूर पात्र बनकर उभर आई।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.	मधुकर सिंह (सं)	: कमलेश्वर के उपन्यासों की वस्तु चेतना लेख से उद्घृत	पृ.200
2.	उषा चौहान	: नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि	पृ.141
3.	अमर प्रसाद जायसवाल	: हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार	पृ.37
4.	घनश्याम मधुप	: हिन्दी लघु उपन्यास	पृ.163
5.	कमलेश्वर	: एक सड़क सत्तावन गलियाँ : भूमिका	
6.	अमर प्रसाद जायसवाल	: हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन	पृ.87
7.	कमलेश्वर	: एक सड़क सत्तावन गलियाँ	पृ.73
8.	कमलेश्वर	: एक सड़क सत्तावन गलियाँ	पृ.73
9.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.79
10.	कमलेश्वर	: एक सड़क सत्तावन गलियाँ	पृ.107
11.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.291
12.	कमलेश्वर	: समुद्र में खोया आदमी	पृ.330
13.	कमलेश्वर	: समुद्र में खोया आदमी	पृ.335
14.	मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.190
15.	कमलेश्वर	: डाक बंगला : भूमिका	
16.	अमर प्रसाद जायसवाल	: हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन	पृ.154
17.	अमर प्रसाद जायसवाल	: हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन	पृ.155
18.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.254
19.	कमलेश्वर	: डाक बंगला	पृ.250
20.	कमलेश्वर	: डाक बंगला	पृ.239
21.	कमलेश्वर	: आगामी अतीत : भूमिका	
22.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.468
23.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.500
24.	कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.501
25.	कमलेश्वर	: आगामी अतीत	पृ.495
26.	कमलेश्वर	: आगामी अतीत	पृ.501

27. त्रिभुवन सिंह	: हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग	पृ.361
28. कमलेश्वर	: आगामी अतीत	पृ.482
29. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.505
30. कमलेश्वर	: आगामी अतीत	पृ.468
31. कमलेश्वर	: डाक बंगला	पृ.229
32. कमलेश्वर	: काली आँधी	पृ.368
33. कमलेश्वर	: एक सड़क सत्तावन गलियाँ	पृ.45
34. कमलेश्वर	: लौटे हुए मुसाफिर	पृ.121
35. सुधा बालकृष्णन	: हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप	पृ.2
36. सुरेश कुमार जैन(सं)	: उत्तरशती का हिन्दी साहित्य	पृ.86
37. अमर ज्योति	: महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	पृ.46
38. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.115
39. कमलेश्वर	: तीसरा आदमी : भूमिका	
40. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.163
41. कमलेश्वर	: तीसरा आदमी	पृ.205
42. कमलेश्वर	: तीसरा आदमी	पृ.173
43. कमलेश्वर	: काली आँधी : भूमिका	
44. कमलेश्वर	: काली आँधी	पृ.368
45. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.372
46. कमलेश्वर	: काली आँधी	पृ.375
47. कमलेश्वर	: काली आँधी	पृ.385
48. शिवकुमार मिश्र	: कमलेश्वर : 'जैसा मैंने उन्हें जाना' लेख से उद्घृत	पृ.22
49. कमलेश्वर	: पति, पत्नी और वह : भूमिका	
50. कमलेश्वर	: पति, पत्नी और वह	पृ.80-81
51. रोहिताश्व शर्मा	: कितने पाकिस्तान : क्लासिकल अभिरूचि की महागाथा	पृ.16

52. कुँवरपाल सिंह	: वर्तमान साहित्य (2007)	पृ.98
53. पुष्पपाल सिंह	: कथाक्रम, जुलाई सितंबर 2000	पृ.95
54. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.21
55. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.22
56. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.69
57. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान : भूमिका	
58. के.पी.जया	: कथाकार कमलेश्वर	पृ.207
59. कमलेश्वर	: रेगिस्तान	पृ.680
60. कमलेश्वर	: रेगिस्तान	पृ.682
61. कमलेश्वर	: रेगिस्तान	पृ.679
62. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.704
63. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.707
64. कमलेश्वर	: लौटे हुए मुसाफिर : भूमिका	
65. कमलेश्वर	: समग्र उपन्यास	पृ.89
66. कमलेश्वर	: लौटे हुए मुसाफिर	पृ.149
67. कमलेश्वर	: लौटे हुए मुसाफिर	पृ.154
68. मधुकर सिंह (सं)	: कमलेश्वर	पृ.208
69. कमलेश्वर	: सुबह..दोपहर..शाम : भूमिका	
70. कमलेश्वर	: अम्मा : भूमिका	
71. कमलेश्वर	: अम्मा	पृ.72
72. कमलेश्वर	: अम्मा	पृ.17
73. कमलेश्वर	: अम्मा	पृ.59
74. कमलेश्वर	: अम्मा	पृ.59

****

5. कमलेश्वर के कथा-साहित्य का शिल्प विधान

साहित्य में शिल्प का अर्थ व्यापक है। शिल्प शब्द अंग्रेजी के 'टेकनीक' का हिन्दी रूपान्तर माना गया है। जिसका अर्थ है किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। संस्कृत कोश में शिल्प को "मूर्तिकला कारीगरी, हुनर कहा गया है।"(1) ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में शिल्प का अर्थ इस प्रकार दिया गया है -"कलात्मक कार्यविधि की वह पद्धति, जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है।"(2) शिल्प शब्द बृहद हिन्दी कोशगत व्याख्या इस प्रकार है -"किसी चीज को बनाने या रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रिया हैं, उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है।"(3)

इससे स्पष्ट है कि शिल्प का अर्थ रीति, विधि या विधान होता है। यानी साहित्यिक कृति या कलात्मक वस्तु के रचने का ढंग या तरीका। 'शिल्प' से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन सारी प्रक्रियाओं तथा रचना पद्धतियों से है जिनके जरिए रचनाकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों मनः प्रभावों तथा विचारों और भावों को मूर्त रूप देकर अत्यन्त संवेध एवं सौन्दर्यमूलक बनाता है। इस संबंध में रोहिताश्व के विचार इस प्रकार है - "रचनाकर अपनी आन्तरिक अनुभूति, विचारधारा और सौन्दर्यबोध को कोई भी रूप देने के लिए स्वतंत्र होता है। किन्तु जिन उपादानों को जोड़कर वह अपनी अनुभूति भावबोध और सौन्दर्यबोध को निश्चित रूपाकार देता है उसकी गणना शिल्प के अन्तर्गत ही होती है। ... जिस तरह एक पेण्टर के लिए परिदृश्य संबंधी दृष्टिकोण व ऐंगल का ज्ञान और मूर्तिकार के लिए आकर्षक संरचना का ज्ञान आवश्यक होता है उसी प्रकार एक रचनाकार को शिल्प-माध्यम भाषा,

शैली, बिम्ब, प्रतीक, फैण्टेसी आदि की संरचना का ज्ञान भी आवश्यक होता है।"[4]

समय के साथ-साथ भाव भी निरन्तर बदलते रहते हैं और कला को अनेक विषय तथा सामग्री मिलती है। विभिन्न विषयों के कारण शिल्प में भी परिवर्तन होता रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि शिल्प गतिशील है। बदलते हुए जीवन मूल्यों और दृष्टिबोधों को प्रक्षेपित करने के लिए युग-युग से नवीन शिल्प रूपों की मांग होती रही है। एक युग की अपनी चेतना होती है, जिसके परिप्रेक्ष्य में समकालीन लेखक थोड़ी बहुत भिन्नता होते हुए भी एक होते हैं। कथाकार कमलेश्वर की रचनात्मकता ने विविध रंगों को शिल्प के माध्यम से पकड़ा है।

कमलेश्वर की शिल्प पर पकड़ न देशी रही है, और न ही विदेशी, न तो शैली हीन रही है न ही अतिरिक्त शैली से ग्रस्त। उन्होंने तो अपनी रचना के शिल्प में विविधता नूतनता का दृष्टिकोण अपनाया है। किसी शैली विशेष के प्रति उनका झुकाव न होकर भिन्न-भिन्न रचनाओं में सूक्ष्म संवेदना को सप्राणतापूर्वक विशिष्ट शैली में पिरोया है। कमलेश्वर की कहानियों और उपन्यासों के शिल्प सुगठित, कलात्मक एवं सफल हैं।

5.1 भाषा-शैली एवं शिल्प विधान

भाषा मूलतः एक सामाजिक वस्तु है जिसका जन्म सामूहिक कार्य- प्रक्रिया के सम्प्रेषण का परिणाम है। भाषा के बिना प्रत्यक्ष अभिव्यंजना संभव नहीं है। कला की अन्य विधाएँ जिनमें अभिव्यक्ति के लिए भाषा का आश्रय नहीं लेना पड़ता, सामान्य व्यक्ति की पहुँच से बाहर होती है, इसलिए भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाने वाला साहित्य कलाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय है। रचना में लेखक या तो एक नितान्त नई भाषा गढ़ता है, जो भाव सम्प्रेषण के लिए सक्षम उपयुक्त हो या वह भाषा के आदि स्त्रोत उसकी गहराई में जाकर एक ऐसी भाषा की तलाश करता है, जहाँ वह ताजी भाव-सम्पृक्त और जादू की सी शक्ति रखती हो। श्यामसुन्दर दास भाषा को शैली का मूलाधार मानते हुए कहते हैं -"भाषा ऐसे शब्द समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने तथा उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है।"[5]

कथा-साहित्य में भाषा का अत्यधिक महत्त्व है। बिना भाषा के कथा-साहित्य अमूर्त रह जाएगा। भाषा के बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। रचनाकार को उसके साहित्य कृति के अंतर्गत जो कुछ भी कहना होता है, वह भाषा के माध्यम से ही कहता है और इसी माध्यम का आश्रय लेकर पाठक रचनाकार के उद्देश्य से अपना अंतरंग स्थापित कर लेता है। सभी रचनाओं में भाषा का रूप एक सा न होकर भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है। उद्देश्य, कथ्य, वातावरण तथा विषय के अनुसार भाषा का अपना एक स्तर होता है जो रचनाकार की शैली के अनुरूप व्यक्त होता है। पात्र, वातावरण, देश-काल तथा अपने प्रतिपाद्य के अनुकूल भाषा प्रयोग का एक

विशेष महत्त्व रहता है। भाषा की सर्वमान्यता, बोधगम्यता, सुस्पष्टता तथा निर्दोषता के तत्व संरचना प्रक्रिया को विशिष्टता प्रदान करने के साथ ही उसे आभिजात्य गुणों से युक्त बना देने में सहायक होते हैं।

भाषा का आधुनिक रूप सर्वप्रथम प्रेमचन्द की रचनाओं में ही दृष्टिगत होता है। जीवन यथार्थ तथा व्यापक अनुभूति को उन्होंने प्रौढ़ अभिव्यक्ति प्रदान करके खड़ीबोली का एक नवीन रूप सामने उपस्थित किया। जहाँ तक भाषा का सवाल है कमलेश्वर सीधे प्रेमचन्द से जुड़े हुए हैं। कमलेश्वर की भाषा पर विचार करते हुए शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है - "कमलेश्वर की भाषा की मूल प्रवृत्ति मुंशी स्टाइल की है।"(6) कमलेश्वर मानते थे कि साहित्य की भाषा हर जगह नहीं मिलती क्योंकि साहित्य सिर्फ संवाद ही नहीं, बल्कि वैचारिक संवाद भी है। और जब विचार तत्व को दूसरे तक पहुँचाना होता है तो उसकी 'भाषा' हर जगह, हर वक्त मौजूद नहीं होती। इसी भाषा की खोज लेखक को करनी होती है। उनका कथन है कि "जो भाषा लेखक को मिलती है उसमें से वह अपनी भाषा की खोज करता है, जो उसकी समय की बदली मनःस्थितियों और हाव-भाव का मुहावरा बन सके, जिन्दगी में जो कुछ सभ्यता ने और जोड़ दिया है, उसे व्यक्त कर सके।"(7)

कमलेश्वर के अनुसार सही अर्थ को कह सकने के लिए सही भाषा अनिवार्य है। इसीलिए हर लेखक भाषा की खोज करता है। कमलेश्वर भाषा की खोज को एक जोखिम भरा काम बतलाते हैं। वे कहते हैं कि लेखक को नयी भाषा की खोज करने में यह खतरा भी होता है कि वह वैचारिक संवाद की भाषा बन भी पाएगी या नहीं, उसे यह शंका रहती ही है लेकिन लेखक के अनुसाार इस खतरे अथवा जोखिम को सर्जक लेखक ही वहन कर सकता है अन्य नहीं। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द ने साहित्य की भाषा को समय की भाषा बना दिया था, उसके पश्चात जैनेन्द्र तथा अज्ञेय ने भी अपनी व्यक्तिगत भाषा को साहित्य की भाषा बना दिया। यहाँ कमलेश्वर का मानना रहा है कि किसी भी महत्त्वपूर्ण लेखक की भाषा अनुकरणीय नहीं होती, हाँ वह कुछ सांस्कृतिक सूत्र अवश्य देती है।

नामवर सिंह के अनुसार "भाषा संप्रेषण से पहले संवेदन का माध्यम है। इस प्रकार वह हमारे संवेदन का भी नियमन करती है। जिसे हम अपना अनुभव और अपना अन्वेषण समझते हैं, उसमें कितना अपना है और कितना सार्वजनिक भाषा का है, यह बोध किसी भी विवेकशील व्यक्ति की नींद खो देने के लिए काफी है।"(8) कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में सरल, सहज, प्रवाहमयी तथा बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। कमलेश्वर की भाषा के संदर्भ में सुरेश सिन्हा के विचार महत्त्वपूर्ण है - "कमलेश्वर की भाषा भी बड़ी मंजी हुई है। उर्दू और अंग्रेजी के सामान्य प्रचलित शब्दों को आवश्यकतानुसार शामिल कर उन्होंने अपनी भाषा को अत्यन्त सशक्त साफसुथरी एवं प्रभावशाली बनाया है, जिसमें सादगी के साथ रवानी है। भाषा का यह प्रवाह और अभिव्यक्ति की यह समर्थता कमलेश्वर में इतनी उत्कृष्ट मात्रा में मौजूद है कि कभी-कभी कमजोर सी लगने वाली कहानी भी ए-वन सी प्रतीत होने लगती है।"(9)

कमलेश्वर ने समय को भाषा प्रदान करने की बजाय समय के स्वर को उसी की भाषा में व्यक्त करने का कार्य किया। भाषा के संबंध में कमलेश्वर का मन्तव्य है -"जनता जो भाषा बोलती है, उसे लिपि की नींव पर अलग नहीं किया जा सकता, उनकी भाषा एक है, दुख-दर्द एक है। भाषा की एकता और लिपि की अनेकता को हमें स्वीकार करना चाहिए। उर्दू का रस्मोख्त हमें पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान से जोड़ता है, रियासत और भूगोल की सरहदों से हमें हमारी भाषा और लिपि ऊपर उठाती है।"(10)

कमलेश्वर की कहानियों में प्रयुक्त भाषा-शिल्प पर जब हम विचार करते हैं, तो सबसे पहला तथ्य यही उजागर होता है कि कहानी के वर्ण्य विषयों और शैली-शिल्प के समय कहानीकार कमलेश्वर ने परम्परागत भाषा का परित्याग कर नयी भाषा का प्रयोग किया है। उसकी विशेषता यह है कि वह भाषा आम बोलचाल की होते हुए भी एक स्पष्ट साहित्यिक गरिमा लिए हुए है। प्रयोग के स्तर पर उसमें विविधता है। कहानीकार कमलेश्वर की कहानी यात्रा के दौरान आए मोड़ उनकी भाषा में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। कमलेश्वर की भाषा चाहे 'नई कहानी' के दौर की हो या 'समांतर कहानी' के दौर की उसमें 'कलात्मकता' या 'अभिजात्यात्मक' पिरोने की बजाय, उन्होंने उसे जीवन की जटिलता को व्यक्त करने के लिए अपनाया है।

नई कहानी की भाषा के संबंध में कमलेश्वर ने कहा -"नई कहानी ने भाषा की जड़ता को तोड़ा। व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को पृथक कर समय के विस्तार में जी रहे मनुष्य की बोली में ही उसने नए अर्थो की तलाश की।"(11) कमलेश्वर की कहानियों की भाषागत विशेषताओं पर अगर दृष्टि डाले जाए तो कहना न होगा कि कमलेश्वर ने सूक्ष्म भाषा का प्रयोग कर मन के सूक्ष्मतम भावों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। आक्रोश, औपचारिकता, टूटन, गिजगिजाहट, अकेलापन, तिरस्कार, आदि भावों को कुछ वाक्यों में समेट उसे सूक्ष्म भाषा का समर्थ रूप दिया है। उदाहरण स्वरूप यहाँ 'देवा की माँ' कहानी से एक वाक्य प्रस्तुत है - "आहट सुनकर बिना उसकी ओर देखें उठती और कोठरी में घुस जाती।"(12) यहाँ देवा की माँ का रोष देवा के प्रति क्रोध व्यक्त हो जाता है। देवा के चले जाने पर माँ के कार्य व्यापार में माँ का स्नेह तथा उनके पश्चात देवा के न लौटने पर इंतजार, बेचैनी, प्रतीक्षा आदि व्यंजित हो उठे हैं।

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग कर अपने आक्रोश को व्यक्त किया है। 'जिन्दा मुर्दे' में संकलित कहानी 'जार्ज पंचम की नाक' जिसका उपयुक्तम उदाहरण माना जा सकता है। इसमें कमलेश्वर ने राजनीतिज्ञों की बखिया उधेड़ी है। भाषा भी चुभन से परिपूर्ण है। व्यंग के साथ-साथ कमलेश्वर की भाषा में सपाटबयानी एवं एकरसता भी पाई जाती है।

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में अनेक प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है जैसे -'दिल मसोस उठना', 'पैरो तले जमीन खिसकना', 'मुँह काला करना', 'खून का घूँट पीकर रहना', आदि। इन असंख्य मुहावरों से

कमलेश्वर की कहानियाँ सम्पन्न एवं सफल बन गई हैं। कमलेश्वर ने अधिकांशतः बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया। फिर भी इसमें अंग्रेजी शब्दों, वाक्यों, पंजाबी, उर्दू शब्दों का प्रयोग, संकेतों का प्रयोग, अलंकारिकता, उपमाओं का प्रयोग आदि देख सकते हैं।

भाषा के स्तर पर कमलेश्वर के उपन्यासों में कोई क्लिष्टता नहीं है, इसलिए पाठक उसे बड़ी सहजता के साथ समझ पाता है। अपनी भावनाओं को यथासम्भव उसके वास्तविक रूप में अभिव्यक्त करने के लिए रचनाकार को भाषा पर पूरा अधिकार होना चाहिए। कमलेश्वर इन सभी गुणों में बहुत हद तक खरे उतरे हैं। वास्तव में कमलेश्वर की भाषा विषय और वस्तु के अनुरूप ही बदलती है। भाषा पर कमलेश्वर का जबरदस्त अधिकार है। उनकी भाषा अर्थवत्ता, चित्रोपमयता, लाघवता, स्वाभाविकता, कलात्मकता आदि से युक्त है। पात्रों के मानसिक संघर्ष के तनाव का उद्‌घाटन करने में उनकी भाषा शैली का बड़ा हाथ है। पात्रानुकूल भाषा कमलेश्वर के उपन्यासों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

कमलेश्वर शब्दों के सार्थक प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। आजकल हमारे हिन्दी भाषी लोग इंग्लिश फोबिया से ग्रस्त हैं, इसलिए वे अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल जाने-अनजाने में करते हैं। अन्यान्य लोगों में अपने हीन भाव को छिपाने अथवा अपने को पढ़ा-लिखा बतलाने के लिए। पर उपन्यासकार कमलेश्वर ने अपनी रचनागत भाषिक स्वाभाविकता की रक्षा हेतु, शिक्षित पात्रों के परिवेश को साकार करने के उद्देश्य से तथा पात्रों की मानसिकता को दर्शाने हेतु जन प्रचलित अंग्रेजी शब्दों तथा वाक्यों का सहज ढंग से प्रयोग किया है। उदाहरणतः - मुस्टैच, टीचर, मैनेजर, आर्गनाइज, डेलिगेशन, कन्विंस, कम्पिटीशन, प्रोग्राम, टैरेस, इत्यादि। अंग्रेजी शब्दों के साथ-साथ उन्होंने उर्दू फारसी शब्दों एवं ग्रामीण बोलियों का भी प्रयोग उपन्यास में किया है। सटीक शब्द एवं वाक्य-योजना के प्रयोग के कारण ही भाव और विचारों की अभिव्यक्ति उपन्यासों में सहज रूप में हो सकी है।

कमलेश्वर के उपन्यासों में अनेक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है जैसे - काम आना, गहरी नजर डालना, कलई खुल जाना, एडी-चोटी का जोर लगाना आदि। कमलेश्वर की भाषा, सम्प्रेषणीयता में काफी सहायक सिद्ध हुई है।

"उचित शब्दों के उचित स्थान पर प्रयोग को ही शैली कहते हैं।"[13] उक्त परिभाषा के अनुसार हमारे समक्ष तीन विशेष शब्द उभर कर आते हैं -'शब्द', 'स्थान', प्रयोग'। ये वो तथ्य हैं जिन पर आधारित होकर शैली अपना स्वरूप निर्धारित करती है। विश्व साहित्य में शैली की महत्ता की एक अखण्ड प्राचीन परम्परा है। साहित्य की रचना विविध प्रणालियों तथा रीतियों से होती है। इन प्रणालियों एवं रीतियों को ही रचनाशैली कहा जाता है। प्रत्येक साहित्यकार प्रयत्नशील रहता है कि उसकी लेखन शैली में नवीनता और मौलिकता के साथ-साथ उसकी अपनी खास विशेषता भी हो। अतः वह अपनी शैली के प्रति अत्याधिक सजग रहता है।

"कोई भी कलाकृति तत्व रूपी आत्मा को अपने शिल्प रूपी आवरण से आच्छादित करती है। रूपक की भाषा में शिल्प-शैली-सींप रूपी आवरण है जो तत्व रूपी सीप को पल्लवित, पोषित और संरक्षित रखती है। हजारों सैकंडों मनोभावों की उताल तरंग से तत्व रूपी मोती निर्मित होता है और देश-काल-समाज सापेक्ष्य अवधारणा को शिल्प-शैली पैटर्न रूपी 'आवरण कवच' के समान कृति-विशेष की पहचान होता है।"[14] कथाकार की अपनी अलग-अलग शैली होती है। वह अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से अपने भावों, अनुभवों, विचारों को पाठक के सामने स्पष्ट करता है। हर कथाकार सजग रहता है कि उसकी लेखन शैली में नवीनता और मौलिकता हो, ताकि वह पाठकों में अपना एक अलग स्थान निश्चित करें। कथा-साहित्य में शैली के विविध प्रकार के प्रयोग करने से उसमें रोचकता और आकर्षकता आ जाती है। इसीलिए कमलेश्वर ने अपने कथा-साहित्य में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग कर अपने विचारों को सरलता से एवं सही अर्थो तथा आंकडों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है -

शैली	**कहानी**	**उपन्यास**
1.आत्मकथात्मक शैली	आत्मा की आवाज दिल्ली में एक मौत एक अश्लील कहानी जो लिखा नहीं जाता लड़ाई अजनबी	तीसरा आदमी डाक बंगला काली आँधी
2. वर्णनात्मक शैली	आधुनिक दिन आधुनिक रातें सुबह का सपना सफेद तितलियाँ	एक सड़क - सत्तावन गलियाँ अम्मा अनबीता व्यतीत
3. व्यंग्यात्मक शैली	जार्ज पंचम की नाक अपने देश के लोग शोक समारोह इन्सान और हैवान	रेगिस्तान समुद्र में खोया आदमी लौटे हुए मुसाफिर आगामी अतीत
4. संवाद शैली	आजादी मुबारक सोलह छतों का घर	काली आँधी डाक बंगला तीसरा आदमी
5. पूर्वदीप्ति शैली	राजा निरबंसिया ऊपर उठता हुआ मकान	रेगिस्तान डाक बंगला

	खोई हुई दिशाएँ	अनबीता व्यतीत
	दाल चीनी के जंगल	काली आँधी
		लौटे हुए मुसाफिर
6. पत्रात्मक शैली	मेरी प्रेमिका	काली आँधी
	अधूरी कहानी	कितने पाकिस्तान
	नंगा आदमी	आगामी अतीत
		अम्मा
7. फैण्टेसी शैली	जार्ज पंचम की नाक	कितने पाकिस्तान
	इतने अच्छे दिन	
	अपना एकान्त	
	दुःखों के रास्तें	
	जिन्दा मुर्दा	
8. प्रतीकात्मक शैली	माँस का दरिया	समुद्र में खोया आदमी
	तलाश	कितने पाकिस्तान
	नागमणि	लौटे हुए मुसाफिर
	सीखचें	रेगिस्तान
	धूल उड़ जाती है	काली आँधी
	पीला गुलाब	डाक बंगला
9.संकेत शैली	खोई हुई दिशाएँ	डाक बंगला
	माँस का दरिया	लौटे हुए मुसाफिर
		अम्मा
10.मिश्रित शैली	एक थी विमला	कितने पाकिस्तान

<u>आत्मकथात्मक शैली</u> : आधुनिक युग में अधिकांश कथा-साहित्य इसी शैली में लिखा जा रहा है। इस शैली में लिखित रचनाओं में रचनाकार अपने वैयक्तिक अनुभवों को प्रथम पुरूष (मैं) में प्रकट करता है। आत्मकथात्मक शैली अधिक विश्वसनीयता पैदा करने की तथा मानवीय आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होती है। इसमें रचनाकार तथा पाठक काफी करीब आ जाते हैं। इस शैली में सारी आत्मकथा नायक या नायिका के मुख से कहलवायी जाती है। इस शैली के अंतर्गत 'मैं' चरित्र का आत्मविश्लेषण उत्कृष्ट ढंग से होता है। चरित्र-चित्रण करने में यह शैली काफी उपयुक्त लगती है। इसमें वर्णनात्मक शैली का भी उपयोग हो सकता है, किन्तु वर्णन किसी पात्र के द्वारा किया जाता है। रचनाओं में रचनाकार पात्रों का स्थान स्वयं ग्रहण करके घटनाओं का विवरण देता जाता है। लेखक स्वयं कुछ भी नहीं कह सकता, जो कुछ कहना होता है, पात्रों के माध्यम से ही उसे कहना पड़ता है।

आत्मकथात्मक रूप में 'मैं' का प्रयोग समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में अधिक हुआ है। इस संबंध में पुष्पपाल सिंह का कथन है - "प्रामाणिकता, अनुभव की प्रामाणिकता आदि घोषणाओं ने ही 'मैं' परक कथाओं की संख्या में वृद्धि की है और निश्चय ही इस प्रयोग द्वारा कथ्य की विश्वसनीयता बढ़ी है।"[15] कमलेश्वर के कथा-साहित्य की अधिकांश रचनाएँ आत्मकथात्मक शैली में लिखित है। विशेषकर महानगरीय जीवन संबंधी कहानियाँ 'आत्मा की आवाज', 'जो लिखा नहीं जाता', 'युद्ध', 'दिल्ली में एक मौत', 'एक अश्लील कहानी', 'लड़ाई' आदि असंख्य कहानियाँ इस शैली में लिखित हैं। इसी प्रकार 'डाक बंगला', 'काली आँधी', 'तीसरा आदमी', आदि उपन्यासों में भी आत्मकथात्मक शैली बहुत ही सशक्त रूप में उभर कर आई है।

वर्णनात्मक शैली : हिन्दी में इस शिल्प-विधि का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। इस शिल्प-विधि के प्रयोग की सही शुरूआत प्रेमचन्द से हुई थी। वर्णन या चित्रण करना इस शैली की प्रधान विशेषता है। इस शैली के द्वारा रचनाकार इतिहास की तरह रचना के चरित्र एवं उससे सम्बन्धित घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन करता जाता है। अन्त में अपने विचार या निर्णय की भी अभिव्यक्ति करता है। भूत, भविष्य से सम्बन्धित घटनाओं तथा वैचारिक दृष्टिकोण आदि बातों का यथासम्भव सम्यक वर्णन एवं विवेचन वर्णनात्मक शैली द्वारा ही होता है। इस शैली में लिखी कहानी का सूत्रधार रचनाकार ही होता है। इसका नायक 'वह' अन्य पुरूष ही होता है। अतः इस शैली में तृतीय पुरूष के रूप में कथा का वर्णन किया जाता है। हिन्दी के प्रख्यात लेखकों ने इस शैली को अपनाया है।

सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकतर इसी शैली का प्रयोग किया जाता है। यह शैली अन्य शैलियों से अधिक सरल, सुगठित एवं बोधगम्य शैली है। कमलेश्वर की 'आधुनिक दिन आधुनिक रातें', 'सुबह का सपना', 'सफेद तितलियाँ', जैसी कहानियों एवं 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'कितने पाकिस्तान', 'अम्मा', 'अनबीता अतीत', जैसे उपन्यासों में इस शैली का सफलतम प्रयोग मिलता है।

व्यंग्यात्मक शैली : व्यंग्य कथ्य और शैलीगत दोनों रूपों में देखा जा सकता है। शैलीगत रूप में कथ्य भाषा की व्यंग्यात्मक शक्ति के द्वारा सृजित होता है। हिन्दी साहित्य की अधिकांश रचनाएँ व्यंग्य के तीखे अस्त्र से लैस होकर सडी-गली रूढ़ियों, भ्रष्ट और घिनौनी व्यवस्था पर तीव्र कुठाराघात करती हैं। कथाकर कमलेश्वर भी व्यंग्य बाण छोड़ने में अत्यन्त कुशल रहे हैं। कमलेश्वर ने समकालीन समस्याओं की सफल अभिव्यक्ति के लिए अपनी कहानी एवं उपन्यासों में इस शैली का खूब प्रयोग किया है। राजनीतिक एवं महानगरीय जीवन संबंधी कहानियाँ जैसे - 'जार्ज पंचम की नाक', 'बयान', 'लाश', 'जोखिम', 'शोक समारोह', 'स्मारक', 'अपने देश के लोग', 'इन्सान और हैवान' आदि एवं उपन्यासों में 'रेगिस्तान', 'सुबह दोपहर शाम', 'काली आँधी', 'आगामी अतीत', 'लौटे हुए मुसाफिर' आदि प्रमुख हैं।

संवाद शैली : आधुनिक कथा-साहित्य में संवाद शैली विशेष रूप से प्रचलित है। नाटकों में जैसे दो पात्रों के बीच नाटकीय ढंग से बातचीत होती है उसी प्रकार से कथा-साहित्य में भी दो पात्रों के बीच नाटकीय ढंग से बातचीत होती है। इसमें रचनाकार दृश्यों एवं परिस्थितियों की योजना इस तरह करता है कि पाठक स्वयं उनका अनुभव मानसपटल पर कर सके। इसे नाटकीय शैली भी कहते हैं। संवादों के माध्यम से कथानक चलता है, इसीलिए पाठक और कथानक में घनिष्ठता होती है। पात्रों के संवादों से ही कथानक का गठन होता है और नाटकीयता के कारण दृश्य योजना का आभास कथानक पर होता है और कथानक प्रभावकारी बन जाता है।

उपन्यास में संवाद देश, काल, परिस्थिति एवं घटना के अनुकूल होना चाहिए। संवाद की मूलभूत विशेषता है स्वाभाविकता और सजीवता। कमलेश्वर के अधिकांश उपन्यासों में संवाद पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा मनःस्थितियों के उद्‌घाटन में पूर्णतः सफल हुए हैं। 'काली आँधी', 'डाक बंगला', 'कितने पाकिस्तान', आदि उपन्यासों में संवादों का प्रसंगानुकूल एवं सशक्त प्रयोग देखने को मिलता है। कहानियों में 'आजादी मुबारक', 'सोलह छत्तों का घर', आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

पूर्व-दीप्ति शैली : (फ्लैश बैक शैली) : इस शैली में घटनाओं को अतीत की स्मृति के सहारे विकसित किया जाता है। पात्रों की स्मृति के द्वारा अतीत की घटनाओं को प्रकाशित किया जाता है। फ्लैश बैक शैली, चेतना प्रवाह शैली में समाहित हो सकती है। प्रत्येक 'फ्लैश बैक' चेतना प्रवाह है, किन्तु प्रत्येक चेतना प्रवाह 'फ्लैश बैक' नहीं है। चिन्तन का एक क्रम या श्रृंखला चेतना प्रवाह में नहीं मिलती। एक बात के चलते समय भी,बीच में दूसरी बात आ सकती है। गतिशील चेतन भावनाओं में बिना किसी परिवर्तन के ज्यों का त्यों उन्हें निरूपित करना ही वास्तव में चेतना प्रवाह शैली का ध्येय है। धनराज मानधाने का कथन है - "अतीत में जीता हुआ पात्र न केवल इन भावनाओं और विचारों का विश्लेषण करता चलता है। जिनका तत्काल संबंध परिस्थिति से था, बल्कि उस भावना का भी आरोप करता है, जिसका उस परिस्थिति को पुनः सोचते हुए होना स्वाभाविक है।"(16)

इसी शैली में अग्रदीप्ति (फ्लैश फारवार्ड) शिल्प का उपयोग भी चेतना में उभरने वाले भावी बिम्ब की प्रस्तुती के लिए किया जाता है। चेतना प्रवाह में काल और क्रम का कोई महत्त्व नहीं होता। जो भी बिम्ब स्मृतिपटल पर गहराई से उभरता है वह प्रवाह में शामिल हो जाता है। हिन्दी साहित्य में इस शिल्प का उपयोग अंशतः कहीं-कहीं मिलता है।

कमलेश्वर ने स्मृति रूप में इस शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में इस शैली का खूब प्रयोग किया है। उनकी 'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'जो लिखा नहीं जाता', 'नीली-झील', 'दाल चीनी के जंगल' आदि कहानियाँ तथा उपन्यासों में 'रेगिस्तान', 'डाक बंगला', 'काली आँधी', 'तीसरा आदमी', 'लौटे हुए मुसाफिर' आदि उल्लेखनीय हैं।

पत्रात्मक शैली : पत्रात्मक शैली में कथाकार पात्रों को माध्यम बनाकर उपन्यासों और कहानियों का रूप विधान करता है। पत्रों के द्वारा पात्रों की आन्तरिक भावनाओं का खुले रूप में प्रकाशन हो सकता है। इसके द्वारा घटनाओं का विकास प्रामाणिक रूप से व्यक्त होता है। इसके लिए कुछ पत्र, घटना घटित होने के दौरान लिखे जाते हैं। तो कुछ पूर्व में लिखे गए पत्रों के योग से या विभिन्न पात्रों द्वारा लिखे गए पत्रों के आदान-प्रदान से कथा-साहित्य का सृजन किया जाता है।

पत्रात्मक शैली तभी प्रभावात्मक बनती है जब किसी विशेष परिस्थिति के दबाव से उत्पन्न मानसिक संघर्ष की स्थिति में लेखक लिखने को विवश होता है। इस शैली में कभी-कभी अस्वाभाविकता उत्पन्न होती है, क्योंकि सारी अन्तरंग बातों को और पूर्व घटनाओं की स्थितियों को व्यक्त करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। इस कारण कोई एक विशेष मानसिक अवस्था के प्रतिपादन से और तजन्य प्रतिक्रियाओं के अंकन में कथाकार को ध्यान देना पड़ता है। कमलेश्वर ने 'प्रेमिका', 'मेरी प्रेमिका', 'अधूरी कहानी', 'नंगा आदमी' जैसी कहानियों में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। तथा उपन्यासों में 'काली आँधी', 'आगामी अतीत', 'कितने पाकिस्तान', 'अम्मा' आदि प्रमुख हैं।

फैण्टेसी शैली : फैण्टेसी शैली के माध्यम से आधुनिक मानव द्वारा निर्मित कलुषित वातावरण एवं उससे उत्पन्न जीवन की विवशताओं को अतिरंजित बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। फैण्टेसी शब्द की व्युत्पति ग्रीक भाषा के 'फेंटेसिया' शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है "मानव की एक काल्पनिक दुनिया निर्माण करने की अद्‌भुत सामर्थ्य।"[17] वर्तमान जीवन में व्याप्त विसंगति, तर्कहीनता और अव्यवस्था को चित्रित करने के लिए आज रचनाकार फैण्टेसी शैली का प्रयोग करता है। फैण्टेसी के रूप में सृजनशीलता में कल्पना, अमूर्त तत्व, स्वप्नावस्थाएँ, ऐन्द्रजालिक स्थितियाँ आदि के माध्यम से जीवन के अति यथार्थ को प्रस्तुत किया जाता है। वातावरण से युक्त यथार्थ प्रत्यक्ष सत्य से भिन्न होता है।

वास्तव में फैण्टेसी शिल्पगत विशेषता है। "मनोविश्लेषकों के अनुसार फैण्टेसी इस ए पर्टिकुलर वे आफ रिलेटिंग टू द वर्ल्ड। मार्लोपोंती ने और उन्हीं के आधार पर आर.डी. लेग ने भी इसे मानव कर्म के भीतर निहित अर्थ और समझ (सेंस) से अनिवार्यतया जोड़ा है। फेयरी-टेल्स, परी कथाएँ प्रकारान्तर से फैण्टेसी ही है।"[18] फैण्टेसी मुख्यतः दो प्रकार की होती है -'मिथकीय' और 'अमिथकीय'। मिथकीय फैण्टेसी देश, काल की सीमा से परे होती है, जिसमें देवपात्रों का प्रयोग एवं असाधरणता मिलती है। इसका उद्देश्य प्राक् ऐतिहासिक नीतियों और रीतियों पर प्रकाश डालना है। जबकि अमिथकीय फैण्टेसी प्राक् ऐतिहासिक के विपरीत सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा वैयक्तिक विचारों से संबंधित कल्पना कहलाती है।

आधुनिक हिन्दी काव्य में मुक्तिबोध और सौमित्र मोहन ने फैण्टेसी शैली को अपनाया है। मुक्तिबोध के अनुसार "फैण्टेसी एक झीना परदा है, जिसमें जीवन तथ्य झाँक-झाँक उठते हैं। फैण्टेसी का ताना-बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होने वाली विविध क्रिया-प्रक्रियाओं से ही बना हुआ होता है। दूसरे शब्दों में तथ्यों का उद्‌घाटन अत्यन्त गौण और विचारपूर्ण होता है, किन्तु उन तथ्यों के प्रति की गयी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ ही प्रधान होती हैं।"(19)

अधिकांश कथाकारों ने यथार्थ की विसंगतियों को फैण्टेसी शैली-शिल्प माध्यम में अभिव्यक्ति दी है। कथाकार कमलेश्वर ने भी इसका खूब प्रयोग किया है। उन्होंने आंतरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए आख्यान की बजाय फैण्टेसी शैली का माध्यम अपनाया। फैण्टेसी शैली का उपयुक्तम् प्रयोग कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' में देखा जा सकता है। रोहिताश्व के अनुसार "सृजनात्मक वैश्विक विजन और मानवतावादी सोच के आग्रही कमलेश्वर ने अपने इस उपन्यास में न केवल रोमांटिक तेवर अपनाये हैं बल्कि इतिहास, मिथ, संस्कृति, विश्व-राजनीति के अक्षांसो में विचरण करते हुए देश-काल, स्पेस-भूगोल की विधियों को फैण्टेसी शैली में इस तरह अन्तर्भुक्त किया है कि पाठक उसे विश्व साहित्य के ज्ञान और भारतीय साहित्य की अंतश्चेतना के संस्पर्श से अभिभूत हो जाता है।"(20)

इसी प्रकार कमलेश्वर की 'अपने देश के लोग', 'दुःखों के रास्ते', 'जोखिम', 'जार्ज पंचम की नाक', 'इतने अच्छे दिन', 'अपना एकान्त', 'दाल चीनी के जंगल', आदि कहानियों में भी फैण्टेसी शैली का प्रयोग हम देख सकते हैं।

मिश्रित शैली : सामाजिक जीवन की वर्तमान जटिलता, उसके अन्तर्विरोध, उसकी नई समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैल्पिक पद्धतियाँ अपनाई हैं। पौराणिक या लोक कथाओं को समकालीन समस्याओं से मिलाकर नई दृष्टि से अर्थान्वित करके युग सत्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया। कमलेश्वर ने भी इस दोहरे शिल्प को अत्यन्त कुशलता के साथ मिश्रित शैली द्वारा अभिव्यक्त किया है।

इसमें कहानी का आरम्भ लोककथा शैली में किया है। साथ ही साथ ऐतिहासिक शैली, संवेदनात्मक शैली का प्रयोग बराबर विद्यामान है। मनोविश्लेषणात्मक शैली के साथ पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप 'एक थी विमला' कहानी को लिया जा सकता है। कमलेश्वर ने इसमें चार कथाओं के शिल्प का प्रयोग किया है। यह कहानी के समग्र प्रभाव को गहरा करता है। साथ ही प्रभाव की एकान्विति ही इस शिल्प की विशेषता है। इसमें चार स्त्रियों की कथा के द्वारा स्त्री के प्रति पुरूषवर्ग की मानसिकता को उद्‌घाटित किया गया है। इसी प्रकार कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी में भी दोहरे कथा-शिल्प का प्रयोग मिलता है। उपन्यासों में कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' में इस शैली का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है।

संकेतात्मक शैली तथा प्रतीकात्मक शैली : संकेत शैली तथा प्रतीक शैली दोनों एक दूसरे के बहुत समीप है, किन्तु दोनों में अंतर हैं। प्रतीक का प्रयोग किसी एक अर्थ विशेष में होता है और पूरी रचना में उसका निर्वाह किया जाता है। संकेत स्वतंत्र एवं अनिश्चित होते हैं। पाठक अपने समझ के अनुसार संकेत का अर्थ ले सकता है। संकेत भले ही छोटे-छोटे हों, किन्तु प्रभावपूर्ण होते हैं। एक प्रसंग या घटना को विस्तार के साथ न कह कर उसका इंगित या इशारा मात्र कर देना ही संकेत शैली का उपादान है। कथाकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में संकेतों का खूब प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'डाक बंगला' और 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यासों में तथा 'खोई हुई दिशाएँ' एवं 'माँस का दरिया' जैसी कहानियों में कमलेश्वर ने संकेतों के प्रसंगानुकूल प्रस्तुतीकरण से उन्हें रोचक बनाया है।

इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रतीकों का प्रचूर मात्रा में हुआ है। कमलेश्वर की अधिकांश रचनाओं में प्रतीकों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। रचनाओं को सार्थक एवं सफल बनाने में प्रतीकों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। कमलेश्वर का 'समुद्र में खोया आदमी' उपन्यास असल में यथार्थवादी शैली में लिखित एक प्रतीकात्मक उपन्यास ही है। साथ ही साथ उनके 'डाक बंगला', 'काली आँधी', 'रेगिस्तान', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'कितने पाकिस्तान' आदि उपन्यास भी प्रतीक योजना से विशिष्ट बन गए हैं। कहानियों में 'तलाश', 'नागमणि', 'सींखचे' आदि प्रमुख हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। शैली 'कथ्य' की अन्विति को प्रगाढ़ करने के लिए प्रयुक्त हुई है। कमलेश्वर ने नवीन शैलियों की भी उद्‌भावना की। सार-संक्षेप में कहा जा सकता है कि कथाकार कमलेश्वर ने भाषा में नये मुहावरे दिये और संश्लिष्ट, उलझी जिन्दगी को कथा में स्पष्ट करने की कोशिश की। यह भाषिक सामर्थ्य के बगैर सम्भव नहीं था। हर लेखक के लिए भाषा सर्जनात्मक या रचनात्मक हो जाए, समय में हस्तक्षेप करे, आसान नहीं। अन्तर्वस्तु की सम्यक अभिव्यक्ति ही भाषा की सार्थकता है और उसका विशिष्ट गुण भी। शिल्प की सार्थकता कथ्य की अनुरूपता में ही है। शैल्पिक विन्यास कोई कृत्रिम प्रक्रिया नहीं है, वह कथाकार की अन्तश्चेतना और उसकी संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति मात्र है।

कमलेश्वर द्वारा प्रयुक्त शिल्प-विधान के अन्तर्गत हम विभिन्न प्रयोगों की चर्चा भाषा-शैली के परिप्रेक्ष्य में कर चुके हैं जिसकी अगली कड़ी में कमलेश्वर के कथा-साहित्य में प्रयुक्त बिम्ब एवं प्रतीक प्रयोग का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.2 बिम्ब एवं प्रतीक प्रयोग

बिम्ब किसी वस्तु या गुण की प्रतिच्छाया के रूप में अस्तित्व ग्रहण करता है। 'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। बिम्ब सूक्ष्म मनोभावों की अभिव्यक्ति करते हैं। रचनाकार सक्षम अभिव्यक्ति के

लिए बिम्बों का सहारा लेता है। बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है -"किसी भाव, विचार, वस्तु, घटना आदि का ऐन्द्रिय संवेद्य काल्पनिक शब्द-बद्ध संमूर्तन काव्य बिम्ब है।"[21] हिन्दी साहित्य कोश में बिम्ब को इस प्रकार परिभाषित किया गया है -"मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान अथवा कल्पना विधान का बड़ा महत्त्व है। प्रस्तुत परिवेश के संवेदनाओं और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती है। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिभा का पर्याय है।"[22]

आई.ए.रिचडर्स ने बिम्ब का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह इस प्रकार है -"बिम्ब एक दृश्य-चित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार, अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।"[23] एक सफल बिम्ब जहाँ एक ओर एक पूर्ण परिपक्व विचार की अपेक्षा उसकी प्राक् परिपक्वास्था के घात-प्रतिघातों अन्तर्विरोधों और विकल्पों को अधिक गहराई से प्रतिबिम्बित करता है, वहाँ दूसरी ओर कला की दृष्टि से भाषा को संक्षिप्त केन्द्रित और संगठित स्वरूप भी देता है। काव्य बिम्बों में रूप, रस, गंध, स्पर्श, और स्वाद के बिम्ब समाहित हैं। बिम्बों का इतना वैविध्य साहित्य के किसी अन्य विधा अथवा कला के किसी रूप में नहीं मिलेगा।

सादृश्यमूलक अलंकारों में भी बिम्बों का अनुप्रवेश रहता है -"उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि में। इन अलंकारों के दो पक्ष होते है 'प्रस्तुत' और 'अप्रस्तुत' इन दोनों के बीच एक प्रकार का सादृश्य या बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है। किन्तु बिम्ब विसादृश्य के आधार पर भी निर्मित होता है। लक्षणा-व्यंजना से भी बिम्ब निर्माण किया जाता है, लेकिन बिम्ब में जो विस्तार और वैविध्य होता है यह न सादृश्यमूलक अलंकारों में है न लक्षणा-व्यंजना में। बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को शुक्ल जी बहुत सही ढंग से रूप-विधान कहते हैं। रूप-विधान के तीन प्रकार हैं - प्रत्यक्ष रूप-विधान, स्मृति रूप-विधान, कल्पित रूप-विधान। कल्पित रूप-विधान ही काव्य- प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है, लेकिन पहले दोनों रूप-विधान इसके कारण हैं। इससे स्पष्ट है कि बिम्ब का संबंध केवल नवीन संवेद्य अर्थवत्ता से ही न होकर पूरी काव्य संरचना से होता है।

साहित्यकार मनोवैज्ञानिक स्थितियों की अभिव्यक्ति पूर्ण और सार्थक रूप से करने के लिए बिम्बों का प्रयोग करते हैं। कमलेश्वर ने भी अपने कथा-साहित्य में बिम्बों का प्रयोग किया। कई बिम्ब चित्र उपस्थित करते हैं तो कुछ संवेदना व्यक्त करते हैं। इन बिम्बों से लेखक की निजता झलकती है। बिम्बों के सार्थक प्रयोग कमलेश्वर को चित्रकार के नजदीक खड़ा करते हैं। कई बिम्ब 'कथ्य' को भी स्पष्ट करते हैं। कमलेश्वर ने ताजा व अछूते बिम्ब दिये। कमलेश्वर के बिम्बों में विशेषण, क्रिया, उपमान सबका प्रयोग है। उनके बिम्ब कल्पित न होकर जीवन के यथार्थ अनुभव से निर्मित हैं। कमलेश्वर की 'नीली झील', 'साँप'. 'जोखिम', 'युद्ध', 'तलाश' आदि कहानियों में बिम्बों का

भरमार द्रष्टव्य है। उदाहरण स्वरूप 'नीली झील' कहानी का एक अंश प्रस्तुत है।

" 'नीली झील' खामोश थी। किनारे पर गीली आँखों की तरह नमी थी और घास की टहनियाँ दवा के साथ धीरे-धीरे पानी को सहला रही थीं। नरकुल की लम्बी पत्तियाँ पक्षियों की कलंगी की तरह काँप रही थीं और पानी में डूबी सिवार के सूतों में मछलियों के बच्चे कतरा-कतराकर निकल रहे थे। वह किनारे आकर बैठ गया। पानी के नन्हें-नन्हें बबूले नीचे से ऊपर सतह पर आये, तो लगा किसी मछली ने मोती उगल दिए हों।"(24) इसी प्रकार 'तलाश' कहानी में बेटी सुमी अपना दरवाजा खोलकर मम्मी के कमरे में जाती है उसे लगता है "कमरे से आवाजें भी आती रही थीं और भिडे हुए दरवाजे की साँस से रोशनी का एक आरा-सा गिरता रहा था। रोशनी मोमिया कागज सी झिलमिलाती रही थी..और उस झीनी लकीर में सिगरेट का धुआँ तरह-तरह के पैटर्न बना रहा था। बहुत देर तक वह उन अक्सों को देखती रही थी।"(25)

बिम्ब रचनाकार की काल्पनिक संयोजना होते हैं जब कि प्रतीक सामान्य जन जीवन में प्रचलित रूढ़ अर्थो, ध्वनियों रूपकों के परिचायक होते हैं। प्रतीक का आशय स्पष्ट करते हुए रेनेवेलेक लिखते हैं कि "प्रतीक एक ऐसी वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करती है, पर एक प्रस्तुतीकरण के रूप में उसके अपने स्वरूप की ओर ध्यान देने की अपेक्षा होती है।"(26) प्रतीक विशिष्ट अर्थ में एक संकेत है। प्रतीक सादृश्य के आगे भावना जगाने का कार्य करता है। प्रतीक द्वारा अदृश्य सारतत्व की अभिव्यक्ति होती है। धर्म और विज्ञान के प्रतीकों से साहित्यिक प्रतीक भिन्न होते हैं। दोनों में इसका अर्थ सुनिश्चित होता है, पाठक और प्रयोक्ता एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं, किन्तु साहित्यिक प्रतीक के संबंध में पाठक और प्रयोक्ता के बीच मतैक्य नहीं भी हो सकता है, प्रायः नहीं होता। प्रतीक को स्पष्ट करने के लिए रिचर्ड ब्लेकमर के विचार अत्यंत उपयोगी है - "प्रतीक एक अर्थ समूह है जो एक बार स्थिर होकर अपने प्रति अन्यान्य अर्थो को आकृष्ट करता है, जब तक कि यह अतिपूरित होकर समाप्त नहीं हो जाता।"(27)

प्रतीकों की सामान्यतः तीन कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। प्रथम प्रकार परम्परागत प्रतीकों का है जो हजारों वर्षो से मनुष्य के भावों विचारों और कल्पनाओं को वहन करते आए हैं। अलग-अलग देशों की अलग-अलग परम्पराएँ होती हैं, इसीलिए उनके परंपरागत प्रतीक भी अलग-अलग होते हैं। उषस, वरूण, त्रिशूल, शरद, सिंह, चेतक, चक्रव्यूह, आदि इस देश के पारंपरिक प्रतीक हैं। बुलबुल, गुलशन, शमा अरब देशों के और मोर, चील, क्रास पश्चिमी देशों के। द्वितीय प्रकार वैयक्तिक प्रतीकों का है, जिनका रचना कर्म रचनाकार के विशिष्ट मानसिक गठन, संस्कार और अनुभूति की ऐतिहासिकता पर निर्भर रहता है। आयरिश कवि एट्स ने अनेक प्राइवेट मिथकों और प्रतीकों की सृष्टि की है। हिन्दी में अज्ञेय की रचनाओं में प्रतीक की प्रमुखता है। सागर, मछली, सूर्य, आदि उन्होंने वैयक्तिक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है। तृतीय प्रकार प्राकृतिक प्रतीकों का है, जिनका प्रयोग प्रत्येक

युग के रचनाकार एक नये दृष्टिकोण से करते हैं। प्राकृतिक प्रतीक भी देश के अनुरूप होते हैं - श्यामघटा इस देश के माहौल में एक अर्थ देगी और यूरोप में दूसरा।

साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक मुख्यतः लघु (माइनर) और प्रौढ़ (मेजर) दो प्रकार के होते हैं। लघु प्रतीक अर्थात् 'माइनर सिम्बल' का परिस्थितिगत महत्त्व होता है। सम्पूर्ण कृति के एक या दो दृश्यों में वे आते हैं और अपनी उपस्थिति से चरित्रों और उनके कार्य कलापों को स्पष्टता प्रदान करते हुए सम्पूर्ण परिस्थिति के कतिपय पक्षों को स्पष्ट करते हैं जबकि प्रौढ़ प्रतीक सम्पूर्ण कृति का मेरूदंड होता है।

साहित्य में प्रतीक योजना का विशेष महत्त्व है। प्रतीक संप्रेषण क्रिया में ही सहायक नहीं होता है, बल्कि अर्थ ग्रहण और प्रसारण में भी सहायक होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। प्रतीकात्मक शिल्प का प्रयोग कमलेश्वर की कई कहानियों एवं उपन्यासों में हुआ है। डाक बंगला, काली आँधी, लौटे हुए मुसाफिर, सुबह-दोपहर-शाम, कितने पाकिस्तान एवं समुद्र में खोया हुआ आदमी आदि प्रतीक योजना से विशिष्ट बन गए हैं।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास यथार्थवादी शैली में लिखित एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। इसमें मुख्य कथा को स्पष्ट करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'सड़कों पर एक के बाद एक लहरें आती चली जा रही हैं, आदमियों की लहरें और वे इस जन समुद्र में डूबे जा रहे हैं। छटपटाकर इधर उधर हाथ-पैर मार रहे हैं, पर कोई सहारा नहीं मिलता। कोई किनारा दूर तक नजर नहीं आता।"[28] यह तो महानगर में श्यामलाल की स्थिति को व्यंजित करता है। यहाँ महानगर रूपी सागर में फँसने वाले व्यक्ति की स्थिति का उल्लेख हुआ है। उपन्यास भर में महानगर के प्रतीक के रूप में सागर का चित्रण किया है। इस उपन्यास के वीरान के 'ध्रुवप्रदेश' की यात्रा भी प्रतीकात्मक है। 'ध्रुवप्रदेश' मानवीय ऊष्माहीन परिवेश का प्रतीक है।

'डाक बंगला' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। कमलेश्वर ने शीर्षक की अभिव्यक्ति के लिए जो वक्तव्य दिया है उसका प्रत्येक शब्द प्रतीकात्मक है। "हर जिन्दगी एक डाक बंगला है जिसमें खूबसूरती की किताबें और बदसूरती के राक्षस सो रहे हैं। पीली-पीली मोमबत्तियाँ जल रही हैं और दूर पर बहती नदियों का शोर है। चारों तरफ चीड़ और देवदार के जंगल है ...अनगिनत पेड़ हैं, पर सब अपने में अकेले हैं।"[29] इसमें डाक बंगला औरत का प्रतीक है, बदसूरती के राक्षस भोगने को उन्मत्त क्रूरतम व्यक्तियों का प्रतीक है। अर्थात् 'डाक बंगला' 'इरा' है और बदसूरती के राक्षस हैं 'विमल', 'बतरा', 'डॉ.चन्द्रमोहन', 'सोलंकी' आदि।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में 'पाकिस्तान' शब्द प्रतीक बना है, अलगाववादी प्रवृत्तियों का, मनुष्य की धर्मान्धता तथा सत्ता की हवस का। इसी के साथ यह साझी संस्कृति को भूलकर आतंक और हिंसा की आग को भडकाने वाली प्रवृत्ति का प्रतीक भी है। इसी प्रकार 'काली आँधी', और

'रेगिस्तान' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। 'काली आँधी' मालती की सफलता के वेग का प्रतीक है और 'रेगिस्तान' ध्येयनिष्ट व्यक्ति के निरर्थक जीवन का प्रतीक है।

कमलेश्वर की 'साँप' कहानी प्रतीकात्मक अर्थ एवं शिल्प में लिखी हुई है। प्रस्तुत कहानी मनोविश्लेषण को आधार बनाकर भय को अंकित करती है। आनंद व इंदु के रोमान्स के साथ-साथ लेखक पूर्ण कहानी में आनंद के मन की दहशत व भय की भावना को 'साँप' के प्रतीक रूप में व्यक्त करते हैं। लेखक कमलेश्वर की 'सींखचे', 'नीली झील', 'लड़ाई' 'नागमणि' आदि कहानियों में भी कुछ पूर्णतः एवं कुछ आंशिक रूप से प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

5.3 **कमलेश्वर का कहानी संसार एवं शिल्प**

बिना किसी भटकाव के कहानीकार जीये हुए जीवन को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त कर देता है। इस अभिव्यक्ति के लिए वह अनेक उपकरण जुटाता है। ये उपकरण कहानी के तत्व होते हैं किन्तु इन तत्वों का समाहार करने के लिए उसे किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता। बल्कि ये स्वतः समाहित होकर कहानी शिल्प का निर्माण कर देते हैं। इस प्रकार 'शिल्प वह माध्यम है जो लेखक की यथार्थ अनुभूति को रचनात्मक आधार प्रदान कर एक कलात्मक मोड़ देता है।'[30]

हिन्दी कहानी के विकास के साथ-साथ उसके शिल्प में भी परिवर्तन आया। प्रेमचन्द युगीन कहानियों में किस्सागोई शिल्प विकासमान था। अतः कहानियाँ वर्णनात्मक शैली में लिखी जाती थीं। उनका एक निश्चित कथानक होता था जिसका आरम्भ, मध्य और अन्त होने का एक निश्चित रूप था। प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानियों में शिल्प रचना का बदलाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस युग में आकर कहानी सूक्ष्म और जटिल होती गई। वैसे प्रेमचन्द युगीन कहानियों में भी शिल्प प्रयोग हुए हैं। कहानी के कहानीपन को बनाये रखना या उसे बहुत हद तक सुदृढ़ करने का अतिशय महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रेमचन्द की कहानियों द्वारा ही सम्पन्न होता है।

नयी कहानी ने शिल्प के परम्परागत स्वरूप का खण्डन किया तथा कहानी के रचनात्मक स्तर पर नये शिल्प की तलाश की । नयी कहानी में कथानक संबंधी पुरानी रूढ़िया समाप्त हो गयी। लेखक के स्वयं के अनुभव ही स्वातंत्र्योत्तर कहानियों का कथ्य है। और इसीलिए जितनी कहानियाँ हैं उतने ही प्रकार के शिल्प हैं। कथ्य की प्रमुखता होने के कारण कहानीकार अपना शिल्प स्वयं निर्मित करता है। नयी कहानी में इसलिए कथ्य व शिल्प की दूरी समाप्त हो गई है। कमलेश्वर का मानना है कि "नयी कहानी में चूंकि कथ्य और संदृष्टि ही मुख्य है, इसीलिए शिल्प शिल्प और शैली कथ्य और संदृष्टि से ही उद्‌भूत होते हैं।"[31]

कमलेश्वर ने शिल्प के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। उन्होंने कहानियों में शिल्प के नये-नये प्रयोग किए। कमलेश्वर का लेखन 1950 के पश्चात का है, अतः कहानियों में पुरानी कहानी का प्रभाव भी परिलक्षित होता

है। उनकी प्रारंभिक कहानियों की भाषा, शैली व शिल्प में संधिकालीन विशेषताएँ अनायास आ गई हैं। प्रारम्भ में भाषा में कस्बाई लेखन के अनुरूप हिन्दुस्तानी प्रयोग हुआ है। अपनी कहानियों में कस्बाई मनोवृत्ति के प्रभाव को स्वीकारते हुए कमलेश्वर ने स्वयं लिखा -"मैं उस छोटे से कस्बे मैनपुरी का आभारी हूँ, जहाँ जन्मा और पलकर बड़ा हुआ और जहाँ की धूल-धक्कड और जिन्दगी के कोलाहल से भरा-पूरा उदास किन्तु मोहक वातावरण मेरी अनुभूतियों को नये-नये रंग में रंगता है।"(32)

महानगर सम्बन्धी कहानियों में यह मोह छूट गया। सीधी सरल भाषा की व्यंजना हुई है। उनकी भाषा में आया लोकतत्व उन्हें रेणु, मार्कण्डेय के समकक्ष रखता है। दूसरी ओर महानगर के संत्रास को व्यक्त करने वाली सांकेतिक, अर्थगर्भित भाषा का प्रयोग उन्हें निर्मल वर्मा, राकेश के समकक्ष रखता है।

शिल्प कमलेश्वर की कहानियों का सशक्त पक्ष रहा है। उनका हिन्दी कहानी में प्रवेश 'राजा निरबंसिया' जैसी प्रभावशाली शिल्प को प्रस्तुत करती कहानी से हुआ। मोहन राकेश व राजेन्द्र यादव के तुलना में कमलेश्वर का शिल्प एक कदम आगे हैं। उन्होंने देशी-विदेशी शिल्प का समन्वय उपस्थित किया है। प्राचीन नवीन शिल्प का संगम भी उनकी कहानियों की अन्यतम गुणवत्ता है। दोहरे, चौहरे साम्यमूलक, वैषम्यमूलक 'कथ्य' को प्रस्तुत करती कहानियाँ प्रभांन्विति में श्रेष्ठ बन पड़ी हैं। प्रारम्भ में नहीं परन्तु महानगर के सन्दर्भो में शिल्प के प्रति विशेष झुकाव दिखता है। 'समांतर दौर में कलापक्ष व सौन्दर्य के पारम्परिक मानकों से परहेज रखा है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उनका शिल्पी सजग है परन्तु संवेदनशीलता पर हावी नहीं है।

कहानियों में शिल्प के सबसे सशक्त प्रयोग का उदाहरण कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी है। इसमें मध्यवर्गीय आर्थिक ही नहीं दाम्पत्य जीवन की विवशताओं, तनावों, अक्षमताओं का भी बहुत सशक्त व दारूण चित्रण मिलता है। यह कहानी कमलेश्वर के एक भिन्न ढंग के शिल्प के प्रयोग का उदाहरण है। 'राजा निरबंसिया' में एक साधारण आदमी की कथा के समानांतर ही एक राजा के जीवन की कहानी लोककथा के रूप में बराबर गतिशील रहती है। इस प्रकार यह कहानी दुहरे कथानक के संश्लिष्ट शिल्प से गुंथी हुई है।

निरबंसिया राजा-रानी की लोककथा का समानांतर प्रयोग वर्तमान समय में मौजूद पति-पत्नी जगपती और चन्दा के दुःख को और भी अधिक सघन रूप में उजागर करता है। लोककथा के सशक्त प्रयोग से शिल्प ने कहानी को अधिक अर्थवान, सांकेतिक व प्रभावशाली बना दिया है। डॉ. नामवर सिंह की राय में -"लोककथा मुख्य कथा को और भी मार्मिकता प्रदान करती है। जैसे दो समीपवर्ती तारों में से एक की झंकार दूसरे में भी सह-स्पन्दन उत्पन्न कर देती है। मुख्य कथा की गति में जैसे ही संवेदना की तीव्रता आती है, वह सहधर्मी लोकथा से छू जाती है और हम देखते हैं कि लोककथा का टूटा हुआ सूत्र अनजाने ही हाथ में आ गया है।"(33) प्रस्तुत उदाहरण से शैली शिल्प की यह अभिनव प्रयोगात्मक गरिमा स्पष्ट हो जाती है -"एक रोज राजा

आखेट को गए, माँ सुनाती थी, 'राजा आखेट को जाते थे, तो सातवें रोज जरूर महल में लौट आते थे। पर उस दिन जब गए, तो सातवां दिन निकल गया, पर राजा नहीं लौटे। रानी को बड़ी चिन्ता हुई। रानी एक मंत्री को साथ लेकर खोज में निकली।"(34)

लोककथा के साथ-साथ वातावरण के प्रतीकात्मक चित्रण ने भी कहानी के नायक जगपती की मूक व्यथा को स्वर दिया है। जगपती की कराह की ही अभिव्यक्ति की गई है। इस प्रकार समानान्तर कथा व इस वातावरण ने कहानी को और अधिक संवेद्य बना दिया है "दवाखाने का लैंप सहसा भभककर रूक गया और मरीजों के कमरे से एक कराह की आवाज दूर मैदान के छोर तक जाकर डूब गई।"(35)

कहानीकार कमलेश्वर ने परम्परागत शब्दों और उनके मुहावरों का परित्याग कर प्रचलित सभी प्रकार के शब्दों का उचित मुहावरों में प्रयोग किया है। इस प्रयोग ने कहीं-कहीं उनकी भाषा को एक साधन सूक्तिकार की भाषा भी बता दिया है। जैसे "तुम नहीं जानती, कर्ज कोढ़ का रोग होता है, एक बार लगने से तन तो गलता ही है मन भी रोगी हो जाता है।"(36) 'राजा निरबंसिया' कहानी की भाषा को सहज, सरल, स्वाभाविक, मुहावरेदार और साहित्यिक गरिमा से सम्पन्न भाषा कहा जा सकता है।

इस प्रकार एक नए शिल्प के प्रयोग में कमलेश्वर को सौ प्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है। 'देवा की माँ' कहानी में किस्सागो शैली का प्रयोग किया है। मन के सूक्ष्म भावों को उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। आक्रोश, औपचारिकता, टूटन, गिजगिजाहट, अकेलापन, तिरस्कार आदि भावों को कुछ वाक्यों में समेट उसे सूक्ष्मभाषा का समर्थ रूप दिया है। जैसे "आहट सुनकर बिना उसकी ओर देखे उठती और कोठरी में घुस जाती।"(37) देवा की माँ का रोष देवा के प्रति क्रोध व्यक्त हो जाता है। देवा के चले जाने पर माँ के कार्य व्यापार में माँ का स्नेह तथा उनके पश्चात देवा के न लौटने पर इंतजार, बेचैनी, प्रतीक्षा आदि व्यंजित हो उठे हैं।

"माँ ने कुरते को साबुन से धोकर कलफ और नील लगाया, तार पर फैलाया और इंतजार किया, पर देवा नहीं आया। खाना बनाकर बैठी रही, पर वह नहीं लौटा। रात आयी और चली गई लेकिन देवा के वापस आते पैरों की आहट नहीं सुनाई पड़ी। तुलसी के बिरवे के ऊपर बँधी अलगनी पर उसका कुर्ता सूखकर सिकुड गया, पर वह नहीं लौटा। माँ की आँखों से नींद उड़कर उसे खोजती रही किसी सूने पहर में भी वह वापस नहीं आया।"(38) देवा के न लौटने पर जो टूटन व दर्द उसने महसूस किया उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है -"टूटते सूत से सूत जोड़ने की कोशिश करती रही और सिसकती रही ..सोचती रही और रोती रही, उसके सूत तो ऐसे बिखर गए थे, जो पकडाई में ही नहीं आते थे।"(39) उपरोक्त उदाहरण से माँ की दशा की परतें उधड़ती हैं। ऐसे कई स्थलों पर कमलेश्वर की अर्थगर्भित भाषा भावों की व्यंजना बड़ी सूक्ष्मता से करती है।

प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर ने संवादों को सहज, स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल बनाया है। कहानी के अंतिम भाग में 'माँ-बेटे' के बातचीत के दौरान बेटे के मुँह से पिता की बीमारी की बातें सुनकर परित्यक्ता नारी का दृढ़ संकल्प उक्त कथनों से जाहिर होता है। "अम्मा, हम लोग चलकर बाबूजी को आज ही देख आएँ !
'मैं नही जाऊँगी ...' कहते कहते माँ कमरे की तरफ मुड़ गई।
"तुम नहीं जाओगी ?" देवा ने जैसे बात समझने के लिए दोहराई।
"नहीं।" माँ के स्वर में दृढ़ता थी।
"मैं चला जाऊँ ?" देवा सहसा कह गया।
"नहीं।" माँ ने उसी दृढ़ता से कहा और अपने काम में लग गई।"[40]

कहानी में कहीं-कहीं सांकेतिकता का पुट भी मिलता है जैसे "अम्मा, तुम खा लिया करो । मेरे इंतजार में बैठना ठीक नहीं। मेरा तो पैर निकल गया है।"[41] संकेत ही संकेत में देवा का घर से बाहर रहना उसका पैर निकलना ...स्पष्ट कर जाता है कि देवा बेकारी में सार्थकता ढूँढ़ने में व्यस्त हो गया है।

कहानी में मुहावरों का सहज प्रयोग भी परिलक्षित होता है। जैसे - "वक्त की मार ने उनकी जबानों को कुंद कर रखा था।
'दोपहर चढ़े जब घर पहुँचता तो दिल छोटा होने लगता।'
'वह देवा को पेट काट-काटकर पढ़ाती रही।'
'तब तक देबू करने-धरने लायक हुआ जाता है।"[42] उपरोक्त मुहावरे देवा की 'माँ' एवं 'देवा' की निजी जिन्दगी की वेदना व समस्याओं को गहराई से व्यक्त करते हैं। कमलेश्वर ने कुशलतापूर्वक उनका प्रयोग किया है।

कमलेश्वर ने भाषा को बिम्बों व उपमानों से समर्थ बनाया है -"वह अपने चारों ओर देखता तो उसे लगता कि उनके चेहरे एक से हैं, जिन पर प्यार नफरत, प्रशंसा या निंदा कुछ भी नहीं उभरती। अजीब-सी एकरसता थी, जैसे सब शंकर से योगी हैं, जो विष पी-पीकर स्थिर बैठे हैं, आँखे मूँदे।"[43] शंकर से जोगी में वैराग्य का चित्र स्पष्ट है।

कहानीकार कमलेश्वर की कहानी 'गर्मियों के दिन' की भाषा, सरल और आमफहम होते हुए भी एक विशिष्ट साहित्यिक गरिमा छिपाए हुए है। उसमें सभी प्रकार के भाव-विचार अभिव्यंजित एवं सम्प्रेषित कर पाने की सभी प्रकार की क्षमता भी निश्चय ही विद्यमान है। किसी विशेष प्रकार की शब्दावली का मोह नहीं है, आग्रह भी नहीं है। पात्रों और वातावरण के प्रभाव से कहीं-कहीं अपभ्रष्ट शब्दों और स्थानीय या आंचलिक शब्दों का प्रयोग अवश्य ही देखने को मिल जाता है। जैसे साइनवोट, मुर्री, चंगा आदि।

कहानी की शैली अन्य पुरूष प्रधान ऐतिहासिक, वर्णनात्मक ही कहीं जानी चाहिए। उसमें सुबोधता, रोचकता एवं सामान्य स्तर पर विश्लेषण का सहारा भी लिया गया है। वाक्य रचना छोटी और सरल है। भाषा शैली को प्रस्तुत करने वाला एक उदाहरण देखे -"तभी एक आदमी ने प्रवेश किया। सहसा लगा कि खलासी आ गया। पर वह पाण्डु-रोगी था। देखते ही वैद्य जी के मुख पर संतोष चमक आया। वे भीतर गए। एक तावीज लाते हुए बोले -

अब इसका असर देखो। बीच पच्चीस रोज में इसका असर दिखाई पड़ेगा। पाण्डु रोगी की बाँह में तावीज बाँध कर और उसके कुछ आने-पैसे जेब में डालकर वे गम्भीर हो उठे।"(44)

स्पष्ट है कि कहानी की भाषा-शैली परम्परा से हटकर, आधुनिक, नई और ताजी है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जिस आमफहम भाषा का व्यवहार बढ़ा है, उसी का यहाँ प्रयोग किया गया है। इस कहानी में वैद्य जी द्वारा 'साइन बोर्ड' लगाना परिवर्तन का प्रतीक है। कुल मिलाकर कहानी रेखाचित्रात्मक लगती है।

'सींखचे' कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। यह संस्कार, परम्परा व प्राचीन मान्यताओं का प्रतीक है। जो नारी की यातनापूर्ण जिन्दगी का साक्षी तो है ही साथ में उसकी विवशता व निरीहता को भी उभारता है। नन्दलाल बनिये की तीसरी पत्नी होने पर भी वह कमजोर लकडी में फसी छडों को अलगा नहीं पाती, उससे अपने को मुक्त नहीं कर पाती। परम्परा की सडी लकडी में फँसी पत्नी किस कदर कैद होती है, यह कहानी इस बोध को सम्प्रेषित करती है। कमलेश्वर ऐसी ही स्थितियों के माध्यम से विचारों को सम्प्रेषित करते हैं, जिससे कहानी अधिक सार्थक हो जाती है। गंभीर दार्शनिक शैली प्रस्तुत कहानी की मुद्रा है। कहानी में संक्रमणकालीन मूल्य व्यक्त किए हैं। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से पारम्परिक मूल्यों से रूझान स्पष्ट है। 'सींखचे' की नारी मुक्त होना चाहती है परन्तु सींखचो (परम्परा) में मजबूती है। प्रस्तुत उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकती है -"वह घर से नहीं निकल सकती, बाहर के दरवाजे तक जा नहीं सकती। अगर गई तो माखन की बूढी माँ, जो हर समय बाहर चौखट पर बैठी रहती है, रात को ही उन्हें खबर दे देगी। वह इन अर्ध-सभ्य गली के परिवारों में अपने खंडहर घर की पुरानी परम्पराओं की प्रतीक प्रतिमा है।"(45)

'खोई हुई दिशाएँ' से कमलेश्वर की एक नयी यात्रा शुरू हुई। वे कस्बे से शहर की ओर आए। इस दौर की सशक्त कथा रचना'खोई हुई दिशाएँ' है। इसमें यद्यपि चन्दर नामक एक नायक की परिकल्पना कर अन्य पुरूष या ऐतिहासिक वर्णनात्मक शैली को अपनाया गया है, पर हमें यह रचना आत्मकथात्मक शैली-शिल्प की अनुभूति करा जाती है। प्रस्तुत कहानी आत्मकथा लगती ही नहीं, उसमें वर्णित तथ्य भी सत्य एवं रचनाकार के स्वघटित प्रतीत होते हैं। इस कारण कहानी में स्वतः ही विवेचन एवं विश्लेषण शैली-शिल्प का समाहार एवं समावेश हो गया।

इन्द्रा नामक एक पात्र से नायक के पूर्व संबंधों को उजागर करने के लिए कहानीकार ने 'पूर्व दीप्ति-पद्धति' का सहारा भी लिया है। वर्णन की प्रक्रिया की दृष्टि से समास नहीं, बल्कि व्यास शैली को अपनाया गया प्रतीत होता है। छोटी वाक्य योजना अर्थगर्भित तो है ही उसमें प्रतीकात्मकता एवं चित्रात्मकता भी है। कमलेश्वर की यह विशेषता कही जा सकती है कि वे अपनी कहानियों में प्रायः बोलचाल की आमफहम भाषा का ही प्रयोग करते हैं। फिर भी वह भाषा अपनी साहित्यिक दर्जा बनाए रखती है। उसमें सभी प्रकार के विचारों को सहज भाव से अभिव्यंजित कर देने की क्षमता भी पूरी

कलात्मक ताजगी के साथ विद्यमान रहती है। भाषायी शब्दों का प्रयोग करते समय कमलेश्वर सिर्फ अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण में समर्थ शब्दों का ही ध्यान रखते हैं, इस बात का नहीं कि वे हिन्दी, उर्दू-पंजाबी के हैं, तत्सम, तद्भव, देशज या विदेशी हैं। आलोच्य कहानी में भी भाषायी प्रयोगों की इस परम्परा का कहानीकार ने आद्यन्त निर्वाह किया है। भाषायी प्रयोगों की यह विशेषता है कि कई बार उनकी उक्तियाँ स्वयं ही सूक्तियाँ बन जाती हैं। जैसे -"मौज की शक्ल में कटा हुआ आसमान"[46] आदि।

कुल मिलाकर भाषा-शैली-शिल्प की दृष्टि से इस कहानी को कहानीकार कमलेश्वर की एक विशिष्ट सर्जना कहा जा सकता है। वह इसलिए कि कहानी विविध एवं विभिन्न शैलियों की कथात्मक अनुभूति करा पाने की अद्भुत क्षमता से सम्पन्न है। इस कहानी के भाषा- शैली-शिल्प के आदर्श रूप को प्रस्तुत करने वाला उदाहरण देख लेने के बाद हमारे विचार में, और कुछ भी कह पाने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती -"लान पर कुछ क्षण बैठने को मन हुआ, पर उसे लगा कि वहाँ भी कोई ठिकाना नहीं, अभी कल ही तो चोर की तरह दबे पाँव घास में बहता हुआ पानी आया था और उसके कपड़े भीग गए थे ..तनहा खड़े पेड़ों और उसके नीचे सिमटते अन्धेरे में अजीब-सा खालीपन है। तनहाई ही सही, पर उसमें अपनापन तो है। वह तनहाई भी किसी की नहीं है, क्योंकि हर दस मिनट बाद पुलिस का आदमी उधर से घूमता हुआ निकल जाता है। झाडियों की सूखी टहनियों में आइस्क्रीम के खाली कागज और चने की खाली पुड़ियाँ उलझी हुई है या कोई बेघर-बार आदमी शराब की खाली बोतल फेंककर चला गया है।"[47]

दूसरे दौर की कहानियों का मुख्य स्वर भ्रष्ट व्यवस्था पर व्यंग्य, सम्बन्धों के अपनी पहचान खो चुकने की व्यथा और महानगरी विभीषिका का मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस दौर में लेखक "महानगरीय उलझी हुई जिन्दगी के छोर सुलझाने की चेष्टा करता है और साथ ही उसे यह भी प्रतीत होता है कि अपने समय और परिवेश को समझने की प्राथमिक दृष्टि व्यंग्य की ही हो सकती है।"[48]

'जार्ज पंचम की नाक' कहानी में कमलेश्वर ने सरकारी कामकाज के ढीलेपन, दफ्तरी दुनिया के माहौल और व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य का नश्तर चुभाया है। सम्पूर्ण कहानी में फैण्टेसी शिल्प के माध्यम से यथार्थ का पर्दाफाश होता है। किसी विदेशी अतिथि, वी.आई.पी और वह भी जब इंग्लैंड या अमरीका का शासनाध्यक्ष हो, तब उसके आगमन पर उसको लेकर इतनी धूमधाम, तामझाम होता है, इस पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है - "रानी एलिजाबेथ की जन्मपत्री भी छपी, प्रिंस फिलिप के कारनामे छपे। और तो और उनके नौकरों, बावर्चियों, खानसामों, अंगरक्षकों की पूरी की पूरी जीवनियाँ देखने में आयी। शाही महल में रहने और पलने वाले कुत्तों तक की तस्वीरें, अखबारों में छप गयीं... बड़ी धूम थी। बड़ा शोर-शराबा था। शंख इंग्लैंड में बज रहा था, गूँज हिन्दुस्तान में आ रही थी।"[49]

प्रस्तुत कहनी में कमलेश्वर ने फैण्टेसी शिल्प का प्रयोग कथ्य को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने के लिए किया, जिसका एक उदाहरण

ध्यातव्य है -"जार्ज पंचम की खोई हुई नाक लगाने के लिए 'एक मूर्तिकार को हुकुम दिया गया कि फौरन दिल्ली में हाजिर हो। मूर्तिकार यों तो कलाकार था, पर जरा पैसे से लाचार था। आते ही उसने हुक्मरानों के चेहरे देखे ..अजीब पेशानी थी उन चेहरों पर-कुछ लटके हुए थे, कुछ उदास थे, कुछ बदहवास थे। उनकी हालत देखकर लाचार कलाकार की आँखों में आँसू आ गये .. तभी एक आवाज सुनाई दी -मूर्तिकार, जार्ज पंचम की नाक लगनी है। लाट की मूर्ति वाले पत्थर की खोज में पुरातत्व विभाग की फाइलों के पेट चीरे गये, पर पता न चला। बन्द कमरे में मूर्तिकार ने कहा -"देश में अपने नेताओं की मूर्तियाँ भी हैं...अगर इजाजत हो ...अगर आप लोग ठीक समझे तो मेरा मतलब है; तो ... जिसकी नाक इस लाट पर ठीक बैठे उसे उतार लाया जाए।"[50] इस प्रकार मूर्ति को जिन्दा नाक लगाना स्वैर कल्पना के अन्तर्गत ही आता है।

'माँस का दरिया' एक घोर यथार्थवादी कहानी है। व्यास शैली का सहारा लेकर कहानीकार ने वर्ण्य-विषय के सभी पक्षों पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसमें ऐतिहासिक वर्णनात्मक पद्धति ही मुख्य है; पर उसे भी परम्परा से हटकर प्रयोग में लाया गया कहा जाएगा। कहानी में विश्लेषण शैली का भी अभाव नहीं। चित्रमयता और प्रतीकात्मकता का भी उचित अभिधान हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शैली-शिल्प में कहानीकार ने अपनी विशिष्ट प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है। इसी से कहानी में यथार्थ की समग्र रक्षा सम्भव हो सकी है।

छोटे-छोटे अर्थगर्भित वाक्यों के प्रयोग में विशेष कलात्मकता है। कहानी को सजीव एवं प्रभावी बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों आदि का भी सहारा लिया गया है। जिस मुहल्ले को कहानी का सेतु बनाया गया है, वहाँ की भाषा और अभिव्यक्ति पद्धति का खासा ध्यान रखा गया है। भाषा वर्ण्य-विषय के अनुरूप ही पूर्णतया यथार्थवादी है। कहीं-कहीं सामान्य अलंकरण की प्रवृत्ति भी विद्यमान है। जैसे -"शादी तो है नहीं कि किसी की आँख में धूल झोंककर गले मढ़ दूँ। जो आएगा, वह तो बोटी-बोटी देखेगा।"[51] इसी प्रकार भाषा का यह नमूना भी देखिए कि जो पात्र और वर्ण्य-विषय की गहराई के साथ प्रतिनिधित्व-सा करता हुआ प्रतीत होता है -"अरे, अल्ला तुझे वह दिन भी दिखाएगा जब ग्राहक तेरी सीढ़ियों पर कदम तक नहीं रखेगा।"[52] इसी प्रकार कहानीकार ने वर्ण्य-विषय और वातावरण अश्लीलता से बचने के लिए कहीं-कहीं बड़ी ही प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। एक उदाहरण देखिए -"नपुंसक लोगों से बेहद परेशानी होती थी। वे हद से ज्यादा परेशान करते थे। बोटी-बोटी टटोलते रहते थे और जोश आने के इन्तजार में बहुत सताते थे। चट-औचट हाथ डालते थे और तरह-तरह की गन्दी फरमाइशें करते थे।"[53]

इस प्रकार कथ्य का संबंध जिस वर्ग विशेष से है कहानी की भाषा उसकी अन्तःबाह्य मानसिकता और सभी प्रकार की स्थितियों को उजागर करने में पूर्ण समर्थ है। जैसे -" हमने तो गंगाजली उठा ली है ..रण्डीबाजी नहीं

करेंगे।"[54] इस प्रकार भाषा-शिल्प वर्ण्य-विषय को सजीव सटीक ढंग से प्रस्तुत कर पाने में पूर्ण समर्थ है।

'नीली झील' कहानी में कमलेश्वर की कलम वर्णनात्मकता में श्रेष्ट बन पड़ी है। प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर ने काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'नीली झील' कई स्तरों पर प्रतीक है। पहले स्तर पर कस्बे के आदमी की मासूमियत का प्रतीक जिसकी वह हर कुर्बानी के साथ रक्षा करना चाहता है। दूसरे स्तर पर 'नीली झील' कस्बे का प्रतीक है, जिससे सम्बन्ध टूट जाने को वह पीड़ा के स्तर पर अभिव्यक्त करना चाहता है। तीसरे स्तर पर 'नीली झील' केवल नीली झील है जिससे वह संवेदना के स्तर पर जुड़ा है। चौथे स्तर पर 'नीली झील' उन मानवीय संघर्षो का प्रतीक है जिसे लेखक धर्म की रूढ़ियों को तोड़ते हुए जीवित रखना चाहता है, भले ही उसे इस आस्था के लिए कहीं रोमांटिक बोध या यथार्थोन्मुखी आदर्शवादिता का सहारा लेना पड़ा हो।

'नीली झील' कहानी में प्रारंभ से लेकर अंत तक बिम्ब ही बिम्ब हैं। दृष्टव्य है -" 'नीली झील' खामोश थी। किनारे पर गीली आँखों की तरह नमी थी और घास की टहनियाँ हवा के साथ धीरे-धीरे पानी को सहला रही थीं। नरकुल की लंबी पत्तियाँ पक्षियों की कलंगी की तरह काँप रही थीं और पानी में डूबी सिवार के सूतों में मछलियों के बच्चे कतरा-कतराकर निकल रहे थे। वह किनारे आकर बैठ गया। पानी के नन्हें-नन्हें बबूले नीचे से ऊपर सतह पर आये, तो लगा किसी मछली ने मोती उगल दिए हों। जलचरों की बारीक आवाजें झील के पानी में गूँज रही थीं और ऊपर पेडों पर पक्षियों के पंखों की सरसराहट और सीटियों की मद्धम आवाजें थीं।"[55]

आलोच्य कहानी अपनी भाषा-शैली के स्तर पर भी लेखक कमलेश्वर की एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण रचना कहीं जा सकती है। कहानी क्योंकि मानव प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति-प्रधान है अतः कहानीकार ने ऐसी प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है जो प्रकृति के सभी रूपों को सजीव साकार बनाने में पूर्ण समर्थ है; अतः इसमें कोमल-कान्त, चित्रमय एवं संगीतात्मक भाषा का ही प्रयोग हुआ है। इसे हम भाषा-शिल्प ही नहीं बल्कि समग्र कहानी की एक प्रमुख विशेषता कह सकते हैं। भाषा-प्रयोग की सुघड़ता का एक उदाहरण देखे -"रह - रह कर उसकी आँखों के सामने वह बन्दूक घूम रही थी और कानों में चिडियों का शोर समाया हुआ था। हर आवाज वह पहचानता था - उन पक्षियों की भी, जो साल भर इसी झील के किनारे रहते थे और उनकी भी, जो इस ऋतु में दूर पहाडों से उतर कर, कुछ दिनों के लिए मेहमानों की तरह आते थे। उनकी हर आवाज का अर्थ वह समझता था - वे लड़ रहे हैं, या आनन्द से भर कर गा रहे हैं या साथियों को खतरे का बिगुल सुना रहे हैं।"[56]

'नीली झील' कहानी में कमलेश्वर ने संवादों का भी सहज, स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल प्रयोग किया है। कहानी में महेस पारबती का चिडियों के अण्डे दिखाते वक्त गर्भवती पारबती के हाथ से एक अण्डा गिर कर टूट

जाता है। तब पारबती ने चीखती हुई जो बातें की उस में भविष्य का संकेत है। जैसे -"टूट गया तो क्या हुआ ?" महेस ने सरलता से कह दिया। पर पारबती बहुत धीमे स्वर में बोली 'असगुन हो गया' और अंचल में मुँह छिपाकर रो पड़ी।"[57] इस प्रकार कमलेश्वर के सृजन की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी 'नीली झील' एक उत्कृष्ट रचना है।

कहानीकार कमलेश्वर ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के आम आदमी के संघर्ष को देखा और उनकी तकलीफों व मजबूरियों का कहानी में चित्रांकन किया। 'बयान' में कथाकर कमलेश्वर अपनी कहानियों के बारे में मितभाषी रहे। उनका कहना था कि "अपनी कहानियों के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है, सिवा इसके कि यही मेरा बयान है।"[58]

निश्चय ही 'बयान' संग्रह की कहानियाँ ऐसी सशक्त कहानियाँ है जो बड़ी बेरहमी से इस व्यवस्था के राजनीतिक-आर्थिक प्रपंच और भ्रष्टता को बेनकाब करती हैं और आम आदमी की मजबूरी, घुटन, यातना और टूटन को उजागर करती हैं। प्रतीकों के माध्यम से कहीं गयी बात में भी वह तपिश है जो इस पूँजीवाद की पोल या व्यवस्था के ढोंग को साफ कर देने में समर्थ है।

वस्तुतः 'बयान' कमलेश्वर की ऐसी कहानी है जो अपने शिल्प, कथ्य, संवेदना और परिवेश की जागरूकता के कारण वर्षो तक याद रखने योग्य है। यह कहानी अपनी शैली विशिष्टता के कारण अमर बन गयी है। इसे आत्म-संभाषण और आत्मकथा के बीच की वस्तु कहा जा सकता है। कोर्ट-कचहरियों में जिस प्रकार गवाहों के बयान हुआ करते हैं, उसी कथ्य-भंगिमा को अपनाया गया है। विशेषता यह है कि यहाँ मात्र गवाह के बयान एवं उत्तर रहते हुए भी उनके प्रश्नों की सहज सरल कल्पना की जा सकती है। इन्हीं सब कारणों से शैली-शिल्प में नवीनता और ताजगी के साथ-साथ आत्मीयता का भी समावेश हो गया है। उसमें भव्यता एवं आकर्षण भी विशेष आ गया है।

कमलेश्वर नवीन भाषिक संवेदना को कहानी के द्वारा उभारने में सफल हुए हैं। उन्होंने सहज और मर्मस्पर्शी भाषा का प्रयोग किया है। 'बयान' में भाषा की जीवंतता का नमूना है -"आप मुझे काँटो में क्यों घसीट रहे हैं ? जी हाँ, उस संपादक से मेरे पति की खासी दोस्ती हो गयी थी। ठीक है, आप 'खासी' शब्द को नोट कर लेना चाहते हैं, जरूर कर लीजिए। पर शब्दों से आप सत्य तक नहीं पहुँचेंगे। सत्य हमेशा कई तरह की बातों पर निर्भर करता है।"[59]

प्रस्तुत कहानी की भाषा परिनिष्ठित हिन्दी न होकर इस प्रकार की भाषा है ,जो आम बोलचाल और कोर्ट-कचहरियों में प्रयुक्त की जाती है। जो भाषा प्रयोग में लाई गई है, उसे परम्परागत साहित्यिक तो नहीं कहा जा सकता। वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकसित होने वाली भाषा ही कहीं ज सकती है, जो आम आदमी के भाषा व्यवहारों से सीधी जुड़ी हुई प्रतीत होत है। उसमें अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण की क्षमता निश्चय ही विद्यामान है भाषा-शैली की इस आदर्श भव्यता को उजागर करने वाला उद्ध

देखे -"मैं माफी चाहती हूँ, क्या करूँ, लौट-लौट कर उन्हीं क्षणों पर पहुँच जाती हूँ। दुःख तो उठाना ही है। जो हो सका, दोनों ने मिलकर उठाया ..पर अब तो हम दोनों के वही क्षण शेष हैं, जो भूले-भटके कभी आ जाते थे .. हँसी खुशी के एकाध क्षण।"(60)

कमलेश्वर की अन्य कहानियों के समान आलोच्य कहानी 'नागमणि' की भाषा भी छठे दशक के आस-पास प्रयुक्त होने वाली मिश्रित साहित्यिक भाषा ही है। कहानीकार ने कहीं-कहीं कुछ आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे भीटा, परिया, सिरा आदि। भाषा को पात्रानुकूल भी बनाया गया है। जैसे पाकिस्तान से आया पात्र बाकर मिस्त्री जो भाषा बोलता है, वह उर्दूनुमा अधिक है .. कोई खास अच्छी हालत भी नहीं है। न जाते तो भी कुछ फरक नहीं पड़ता। ..वैसे तामीर का काम वहाँ भी बहुत चल रहा है। मेहनत करने वाला बेकार नहीं बैठता"(61) इत्यादि। परन्तु इस भाषा को पाकिस्तानी नहीं कहा जा सकता। उत्तर प्रदेश का साठ के दशक के आस पास का पढ़ा-लिखा तबका ऐसी ही भाषा बोला करता था। आलोच्य कहानी का नायक यद्यपि हिन्दी भाषी ही नहीं; हिन्दी का भक्त, पुजारी और प्रचारक भी है, फिर भी कहानीकार ने उससे परिनिष्ठित हिन्दी का प्रयोग क्यों नहीं करवाया ? एक विशेष ध्यातव्य तथ्य और भी है। वह यह कि कहानी एक राष्ट्रभाषा हिन्दी के परम भक्त के मोहभंग को दर्शाने वाली कहानी है, इस कारण अन्तिम चरणों में अंग्रेजी भाषा के मात्र शब्दों का ही नहीं, बल्कि वाक्यों का प्रयोग किया गया है -"सो यू विल गो टु योर कंट्री। येस यू कैन ?"(62) और सलाम के उत्तर में 'गुडबाई' आदि। इस प्रकार कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कहानी में भाषायी प्रयोगों में विविधता है और यह विविधता कथावस्तु की विकास-प्रक्रिया की देन ही कही जा सकती है। इसी कारण यह सफल और सार्थक भी है।

शैली-शिल्प की दृष्टि से कहानी मुख्यतः वर्णनात्मक शैली में ही रची गयी है। कहीं-कही इस वर्णनात्मकता में एतिहासिकता का समावेश भी हो गया है। संवादात्मकता के कारण ही नहीं, बल्कि प्रक्रियात्मक व्यवहारों के कारण भी वर्णन शैली में कहीं-कहीं नाटकीयता का समावेश भी हो गया है। यह नाटकीयता सुशीला - विश्वनाथ प्रसंग और हिन्दी मन्दिर के उद्घाटन पर लोगों के न आने पर विश्वनाथ की प्रक्रिया प्रसंग में विशेष दर्शनीय है। छोटे - छोटे वाक्य, मुहावरों का प्रयोग और कहीं-कहीं अलंकरण की मानसिकता कुल-मिलाकर शैली आकर्षक एवं प्रभावी है।

कमलेश्वर की नई कहानियों में आवर्तन शिल्प का प्रयोग किया गया हैं। जिसमें से आलोच्य कहानी एक सशक्त उदाहरण है। 'नागमणि' में विश्वनाथ का "अ-आ-इ-ई कर घर। घर। राम खाना खा। अब घर चल। राम अब घर चल।"(63) पूरी कहानी में 'अ-आ-इ-ई से विश्वनाथ के जीवन का बाहर-भीतर समस्त रूप में हिन्दी मंदिर से जुड़े होने का एहसास देता है। विश्वनाथ के जीवन की एकरसता का भी चित्रण हुआ है। भीतर की घनीभूत संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है।

'नागमणि' कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। 'मणि' नाग का सर्वस्व है। आधुनिक युग के मनुष्य की स्थिति, मणि के अभाव में जीनेवाले सर्प की तरह हो गई है। यह शीर्षक गांधीवादी हिन्दी प्रचारक 'विश्वनाथ' के संपूर्ण चरित्र को उजागर करता है। भाषा-शैली-शिल्प का एक संक्षिप्त उदाहरण देखिए -"हिन्दी-मन्दिर एक कमरे का घर है। बड़ी भाग-दौंड करके विश्वनाथ ने यह छोटी-सी जगह चुंगी से हासिल की थी। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार करते-करते जब बहुत थक गया, तो वह अपने शहर लौट आया था। अपने देश का हाल देखकर वह उदास हो गया था। कहाँ है हिन्दी ? इतने बरसों बाद भी कहीं नहीं थीं। वह था, जिसके लिए सब बातें और चीजें मामूली बन गयी थीं। जब तक आदमी बोलेगा नहीं, देश कैसे चलेगा ?..अपनी भाषा, अपना देश, अपना राग, अपना वेश। उसे ताज्जुब हुआ कि अपने देश में ही कुछ नहीं हुआ था। इतने बरस वह दूसरे प्रान्तों में भटकता रहा है और बराबर सोचता रहा कि अपने यहाँ सब हो गया होगा... ।"(64)

फैंटेसी शिल्प हमें कमलेश्वर की कहानी 'जोखिम' में भी देखने को मिलता है। 'जोखिम' की स्वैर कल्पना आधी कहानी के पश्चात शुरू होती है। माँ का संदर्भ, घर की ओर लौटना, माँ के शरीर का तिल-तिल कर पथराना, वित्तमंत्री की उपस्थिति और अंततः माँ के पथराये शरीर का बुत की तरह शहर के चौराहे पर लगा दिया जाना, कहानी को एक फैंटसी की सी शक्ल देते हैं। लेकिन यह चालू किस्म की फैंटेसी नहीं है, वह फेबल और अन्योक्ति से घुलीमिली है। उदाहरण प्रस्तुत है "करीब चौदह दिनों के बाद माँ का शरीर पूरी तरह पथरा गया। जिसने देखा, उसी ने तारीफ की। ..बिलकुल पत्थर की मूरत बन गयी है। कितनी शांति है चेहरे पर। इतनी शांत मौत कहाँ मिलती है किसी को ! मुझे यह अच्छा लगा कि लोग माँ को भाग्यवान औरत समझ रहे थे। वह भी बहुत सीधी। दुनिया से बेहतर जुड़ी हुई। सबका अच्छा और भला सोचने वाली। अपनी तकलीफों को न समझ पानेवाली एक मामूली औरत। लोगों ने राय दी कि इतनी अच्छी मूरत बरबाद न की जाए। इसें हम कहीं लगा दें। मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी। एक चौराहे पर लम्बा सा ऊँचा चबूतरा बना कर माँ को वहाँ बैठा दिया गया। तब से वह मूरत मेरे चौराहे पर लगी हुई है। पत्थर की वह मूरत बिलकुल जीती जागती है। न हिलती है न डुलती है। बरसों बाद जब कभी मैं शहर से लौटता हूँ और उसके पास क्षण दो क्षण के लिए रूकता हूँ तो उसकी आँख के नीचे की वह छोटी माँस -पेशी काँपती है और लगता है कि मुझे देखने के लिए वह आँखे खोलने की कोशिश करती है। पर खोल नहीं पाती।"(65)

आलोच्य कहानी का नायक व्यापक भारतीय फलक पर सताये हुए साधनहीन जन का प्रतीक बनकर हमारे सामने आता है। यह नायक बार-बार अपनी और माँ की चिन्ताजनक हालत को लेकर सवाल पूछता है, उन सवालों को अपने निष्कर्षो की कसौटी पर परखने की कोशिश भी करता है। एक-दूसरे के हितों के विपरीत काम करने वाले दो वर्ग समाज में एक साथ समानता में पनप नहीं सकते, यह वह जानता है, और पूरी अर्थ व्यवस्था के

आगे प्रश्नचिन्ह लगाता दिखाई देता है। कहानी के अन्त में प्रतीकात्मकता के माध्यम से लेखक ने यथार्थ को एनलार्ज किया है।

व्यंग्यात्मक शैली में लिखी इस कहानी में कमलेश्वर ने बिम्बों का भी प्रयोग किया है। जो प्रकृति एवं वातावरण के चित्रण से निरूपित होता है - "उस रोज सागर पर धुँध छाई हुई थी। मानसून चारों तरफ था। मलबार पहाड़ी धुन्ध में खो गई थी। सिर्फ मेरे चारों ओर पचास-पचास गज तक साफ-साफ दिखाई दे रहा था। उसके बाद कुछ नहीं। एक मिनट बाद सागर का भी एक छोटा-सा टुकड़ा भर रह गया था। बाकी अदृश्य हो गया था। एक निहायत छोटी-सी धुन्ध की दुनिया में मैं घिर गया था। तब मैं था, धुन्ध थी, और सागर के टुकडे पर दो जल पक्षी। सफेद प्रकृति में ज्यादा सफेद पंखोवाले। वे टीस की तरह चमक रहे थे।"(66)

'इतने अच्छे दिन', 'समांतर सोच' के तहत लिखी गई कहानी है जिसका वैचारिक पक्ष तीसरे दौर के अंतर्गत आता है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर निम्नवर्गीय जीवन के रेशे-रेशे में अन्तर्निहित व्यंग्य को बखूबी से पकड़ा है। अनुभूति को अनुभव की बेहद सही भाषा कमलेश्वर ने इस कहानी में दी है। सपाटबयानी के साथ-साथ प्रवृत्त उत्तेजना की भाषा का प्रयोग किया। जो 70 के पश्चात् अर्थात् समान्तर से जुड़ने के पश्चात् अधिक प्रयुक्त की गई है। इस प्रवृत्त उत्तेजना की भाषा में खुरदुरापन है, तल्खी है, कडवाहट है। इस भाषा के संदर्भ में प्रस्तुत कहानी का एक उदाहरण दृष्टव्य है -"कहानी का बाला क्लीनर के साथ एक कथरी में कड़कड़ाती सर्दी में सोया था-"अबे, तू क्यों उठ के बैठ गया ? सवेरा होने में बहुत देर है। जाड़ा लगता है। अपन को बता। है साला बीडी सुलगा के खींचे जा रहा है। बीडी के जलते फूल में आँखे चमकती है कुत्तों की तरह लखन क्लीनर की।"(67)

कमलेश्वर नवीन भाषिक संवेदना को कहानी के द्वारा उभारने में सफल हुए हैं। प्रस्तुत कहानी में भूख ने बाला की इन्सानियत को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया है। बाला की बहन कमली ने भी अपने को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढाल लिया है। वह तन का पेशा करती है अपने मंगेतर चन्दु को छोड़ देती है। कहानीकार ने बाला जैसे पात्र के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "बाला ने फिर लेटने की कोशिश की। लेट भी गया, पर नींद नहीं आई। दादी ! नाराज मत होना ...ये दिन तू भी देख लेती तो कुछ आराम से मरती। अब कमली भी बच गई है। और अपन भी। व्यापार भी चल निकला है। यह अकाल न पड़ता और इतने ढोर डंगर, नाते-रिश्तेदार न मरते तो अपने का भी वहीं हाल होता। भला हो हड्डी गोदाम का।"(68) इस प्रकार तीन वर्षो से अकाल झेल रहे भाई बहन बाला एवं कमली का चित्रण करते हुए लेखक उत्तेजिक भाषा का प्रयोग करता है। अकालग्रस्त क्षेत्र, आर्थिक मार से मरे पात्रों की भाषा में बनाव, दुराव, अभिजात्यात्मकता नहीं बल्कि खुरदुरापन व्यक्त हुआ है।

कमलेश्वर ने आलोच्य कहानी में कथ्य को संप्रेषित करने के लिए फैंटेसी शिल्प का प्रयोग किया है। जैसे -"तब कमली उसे खोजती आई थी।

वह बाला को गिद्धों और कुत्तों के जमघट के बीच खोज ही नहीं पाई थी। उनके बीच वह घुटने मोडे गिद्ध की तरह बैठा था। साफ हो गई हड्डियों को बीनता हुआ।"[69] उपरोक्त उदाहरण लेखक की कल्पना का उत्कृष्ट नमूना है। बाला जैसा लड़का गिद्ध और कुत्ते से बेहतर जिन्दगी नहीं जीता। उदाहरण संकेतों में, उपमानों में, बिम्ब में, सजीव हैं।

कमलेश्वर द्वारा रचित 'दाल चीनी के जंगल' कहानी में भी फैंटसी शिल्प का प्रयोग देखा जा सकता है। गैस दुर्घटना में मरे हुए लोगों की लाशें एक दूसरे से बात कर रही हैं और यह बातचीत बहुत ही व्यंग्यात्मक है और गैस ट्रैजडी के कई पहलुओं को उजागर करती है।

कहानी का नायक भोपाल की गैस ट्रैजडी से पीड़ित एक अर्धविक्षिप्त सा आदमी है। उस आदमी की विचित्र बीमारी को अनेक बिम्बों के सहारे कमलेश्वर ने प्रस्तुत किया है। उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्था का एक चित्र है-"फिर दाल चीनी का जंगल नायलान की साड़ियों की तरह धू-धू करके जलने लगे थे ...दिमाग में खून के फव्वारे फूटने लगे थे और आतिश चरखियाँ चलने लगी थीं...आँखे फूल-झाड़ियों की तरह चिटपिटाने लगी थीं, फेंफडे धौंकनी से आग को सुलगाने लगे थे...कानों से गर्म धुए के बगूले फूटने लगे थे..।"[70]

कमलेश्वर ने प्रस्तुत कहानी में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करते हुए प्रतीकों को भी स्थान दिया है। 'दाल चीनी के जंगल' एक ओर मुश्ताक व उसकी पत्नी के प्रति प्रेम की महक का प्रतीक है तो दूसरी ओर क्षण में जलकर खाक हो जानेवाले भोपाल गैंस कांड का प्रतीक बन जाते हैं। क्षण में महकता शहर जलकर तेजाब की गंध देने लगता है। एक सफल कहानीकार सूक्ष्म भाषा का प्रयोग करता है। भावों को व्यक्त करने के लिए उसे ढेरों वाक्यों में फैलाना आवश्यक नहीं है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी के पात्रों की विशेष मनोदशा को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। आक्रोश, औपचारिकता, टूटन, गिजगिजाहट, अकेलापन, तिरस्कार आदि भावों को कुछ वाक्यों में समेट उसे सूक्ष्म भाषा का समर्थ रूप दिया है। जैसे -"पैसों का पहाड़ औरत के जिस्म बीस रूपये रात ..इन्सान का गोश्त ग्यारह रूपये किलो, मटन चालीस रूपये किलो।"[71]

इस प्रकार कमलेश्वर के शिल्प में परिवर्तन उनके कहानी के 'चार दौर' के साथ प्रगति करता है। उनका यह शैल्पिक प्रयास कथ्य के अनुरूप बन पड़ा है। कमलेश्वर की शिल्प के प्रति सजगता कई कहानियों में देखी जा सकती हैं। किसी शैली विशेष के प्रति उनका झुकाव न होकर भिन्न-भिन्न कहानियों में सूक्ष्म संवेदना को सप्राणतापूर्वक विशिष्ट शैली में पिरोया है। लगभग चारा दशकों की यात्रा तय करनेवाले कहानीकार कमलेश्वर विभिन्न दौरों से गुजरे। इस अकथनीय यात्रा में कमलेश्वर ने सदा भाषा के प्रति ताजगी का एहसास दिलाया। उनकी कहानियों में 'कमलेश्वर टच' ढूँढना कठिन कार्य नहीं है। उनका कथन है - "जो भाषा लेखक को मिलती है उसमें से वह अपनी भाषा की खोज करता है, जो उसके समय की बदली

मनःस्थितियों और हाव-भावों का मुहावरा बन सके, जिन्दगी में जो कुछ सभ्यता ने और जोड़ दिया है, उसे व्यक्त कर सके।"[72]

कमलेश्वर की कहानियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कमलेश्वर का कथ्य अनुरूप शैल्पिक प्रयास सुन्दर बन पड़ा है। उनकी सभी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग एवं मध्यवर्ग के यथार्थ जीवन का उद्‌घाटन हुआ है। उन्होंने समस्त दबावों के बीच जी रहे आम आदमी के दुख दर्द को अनेक कोणों से उभारने का प्रयास किया है। उन्होंने खास तौर से अपनी कहानियों में पारिवारिक विघटन, शहरीकरण से गाँव-कस्बों में हुए दुष्परिणामों, महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं, भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था तथा उसके शिकार आम आदमी की परेशानियों, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की च्युति आदि सभी समसामयिक समस्याओं पर प्रकाश डाला। और इसकी सशक्त यथार्थ एवं व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग किए। उनकी अधिकांश कहानियाँ आत्मकथात्मक शैली में रचित हैं। भावों और घटनाओं को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए फैंटसी शैली, प्रतीकों, बिम्बों, संकेतों का प्रसंगानुकूल इस्तेमाल कमलेश्वर ने किया। उन्होंने देशी-विदेशी शिल्प का समन्वय उपस्थित किया, प्राचीन नवीन शिल्प का संगम भी उनकी कहानियों की अन्यतम गुणवत्ता रही है। दोहरे, चौहरे, साम्यमूलक, वैषम्यमूलक 'कथ्य' को प्रस्तुत करती कहानियाँ प्रभान्विति में श्रेष्ठ बन पड़ी हैं।

निस्संदेह 'राजा निरबंसिया' से लेकर 'इतने अच्छे दिन' तक के कथाकार कमलेश्वर का रचनात्मक विकास अपने समय और अपने लोगों से अन्तरंगता से जुड़े हुए लेखक का गौरवशाली विकास है। समयगत सत्य और समान्तर रचना दृष्टि के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने वाली ये कहानियाँ न सिर्फ कमलेश्वर को अग्रणी कथाकार के रूप में स्थापित करती है, बल्कि आज के सामान्य जन की समूची तकलीफ को सम्यक् स्वर भी देती हैं।

5.4 कमलेश्वर के उपन्यास और शिल्प प्रयोग

भारतीय साहित्य में कमलेश्वर एक ऐसा नाम है, जिसे शायद ही कभी भुलाया जा सके। पदमूभूषण एवं अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कमलेश्वर ऐसे रचनाकारों में से रहे हैं, जिन्होंने कथा साहित्य को कला के औपचारिक बन्धनों से मुक्त कर दिया। इस कारण से उनकी रचनाएँ पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न एवं दृष्टि से कुछ बदली हुई नजर आती हैं। वास्तव में वहाँ शिल्प की नई अवधारणा जन्म लेती है। रचनाकार का जो दृष्टिकोण है वही शैल्पिक प्रयोग का प्रेरणा स्त्रोत है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन बदले परिवेश तथा बदली जिन्दगी की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास में नया शिल्प विधान अनिवार्य हो गया है। इस अनिवार्यता को पहचान कर कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों का शिल्प सँवारा।

कमलेश्वर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी साफगोई है। हर बात को निहायत सफाई के साथ पाठकों के समक्ष रखने में वे काफी सफल रहे हैं। डॉ.सुरेश सिन्हा के शब्दों में -"कमलेश्वर के उपन्यासों की एक प्रमुख

विशिष्टता उनकी साफ सुथरी भाषा का प्रवाह एवं यथार्थता है। चित्रात्मक भाषा संजोने एवं वातावरण का यथार्थ निर्माण करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं। आसपास के परिचित परिवेश के छोटे-छोटे ब्यौरे एवं बारीक रेशे भी उनकी सूक्ष्म अंतर्दुष्टि से छूटने नहीं पाये हैं। सामाजिक दायित्व का निर्वाह एवं सोद्देश्यता उनके उपन्यासों की दूसरी प्रमुख विशेषताएँ हैं।"[73] कमलेश्वर ने कथा शिल्प को नूतन बनाया है। उन्होंने अनुभव एवं अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग किए हैं। उनके अधिकांश उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में रचित हैं। भावों और घटनाओं को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए फैंटेसी शैली, प्रतीकों, बिम्बों, संकेतों का प्रसंगानुकूल इस्तेमाल उन्होंने किया है। कथासाहित्य में मिश्रित शैली का श्रीगणेश शायद कमलेश्वर ने ही किया होगा।

<u>एक सड़क सत्तावन गलियाँ</u> : कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में विवरणात्मक शैली के साथ पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से भी प्रस्तुत उपन्यास एक समर्थ एवं प्रथम कोटि का उपन्यास है। वस्तुतः यह इसकी भाषा-सामर्थ्य ही है कि उसमें स्थितियों का एक पूरा चित्र-सा हमारे सामने उपस्थित हो जाता है और हम सब-कुछ आँखों के सामने घटित होता महसूस करने लगते हैं। उदाहरण के रूप में उपन्यास के पहले पृष्ठ का यह अंश लिया जा सकता है -"नदियाँ घहरा उठती है, पर आदमी का आना-जाना नहीं रूकता। नदियों में कड़ाह पड़ जाते है और इन छोटी-छोटी बस्तियों के दिलेर लोग उन कड़ाहों में बैठकर बड़ी-बड़ी भँवरें, हाथी-डुकाउ गहराइयाँ और चौड़े पाट पार कर जाते हैं। जानवरों तक को लँघा ले जाते है...।"[74] प्रथम पृष्ठ की भाँति ही कोई भी दूसरा पृष्ठ ऐसा नहीं है जहाँ 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की भाषा इतनी ही जानदार, गतिशील, चित्रोपम और यथार्थमयी न हो।

उपन्यासों के संवादों में भी भाषा की इसी व्यंजना को देखा जा सकता है जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है -"तुम कह देना मैंने बुलाया है। नाच गाने में जी लगाने का दोष तो तुम्हारे सिंहजी का है। कौन-सा ऐसा कदम है जो बाकी बचा है उनसे। किसी दिन दड़ा पकड़ा गया तो जेल में सड़ेंगे।"
"तुम्हारी तो हर बात निराली होती है, हर दोष सरनामसिंह के सर। जो कुछ दुनिया में बुरा होता है सब उसी की करनी है।"
'शिवराज को और किसने बिगाड़ा है ? उसके घर वालों से जुदा कर दिया, आश्रम से भगा लाया और उसे मेहरा बना के ...'
'तुमको इससे क्या ? वह करता है तो करे।'
'पर एक ही जिन्दगी बिगाड़ दे ? कैसा प्यारा लड़का है, पर धकेल दिया उसे भी कीचड़ में। अभी क्या है, डाकू बनाकर दम लेगा।"[75]

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है कि आकार-प्रकार में 'लघु' होने के बावजूद विस्तार में यह काफी बड़ा है और गहराई इसकी इतनी ज्यादा है कि इसमें पात्रों की संख्या अधिक है और उन सभी पात्रों के बारे में कुछ-न-कुछ प्रामाणिक जानकारी दी गयी है, फिर भी पढते समय ऐसा

नहीं लगता कि हम पात्रों में उलझते जा रहे हैं और मुख्य कहानी से दूर हट रहे हैं। लेखक द्वारा सब कुछ इतने संतुलित ढंग से कहा और पेश किया गया है कि उनकी प्रतिभा पर आश्चर्य होता है और पाठक चमत्कृत होकर रह जाता है। 'गागर में सागर' भरने का जो मुहावरा है, इस उपन्यास पर बिलकुल फिट बैठता है।

प्रस्तुत उपन्यास का शिल्प नया है। इसमें लेखक ने कथा की दृष्टि से भी एकदम नई कथा का आधार लेकर उसे चित्रित किया। सामाजिक विचारों के साथ-साथ इस रचना में कोमल भावों का भी पर्याप्त कुशलता के साथ चित्रण हुआ है। कुल मिलाकर कमलेश्वर का यह प्रथम लघु उपन्यास एक सफल कृति है।

लौटे हुए मुसाफिर : 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास का आरम्भ पूर्वदीप्ति शैली में होता है। प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश्वर ने विभाजन के भीषण परिणाम को संकेतों द्वारा अभिव्यक्त किया है -"सब बिखर गया, आदमी के हौसले बिखर गए मन की मुराद टूट गई, दिलों के रिश्ते खत्म हो गए।"(76) इस प्रकार संकेतों के प्रसंगानुकूल प्रस्तुतीकरण से कमलेश्वर ने अपने उपन्यास को रोचक बनाया।

संवेदनाजन्य संप्रेषणीयता और सांकेतिक अभिव्यक्ति का यह उपन्यास एक उदाहरण है। अपने चारों ओर घटता हुआ वर्तमान और टूटते हुए अतीत के बीच भविष्य के शुभ की कामना करती हुई अंत में 'नसीबन दौड़कर घर गई थी और जो मिला था उठा लाई थी - बोरा, फटी हरी, मैली चादर वगैरह और बोली -"लो इन्हें यहीं पेड़ के नीचे बिछा लो और आराम करो। और सुबह तक के लिए रात उसी पेड़ के नीचे कट गई थी।"(77)

कथात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास की भाषा सहज और सरल है। दैनिक जीवन में प्रयुक्त शब्दों को काफी हद तक अभिजात-भाषा से लेखक ने बचाया है। कमलेश्वर की भाषा एक आम हिन्दुस्तानी की भाषा है जो भाषायी राजनीति से काफी दूर है। कमलेश्वर की भाषा की सामर्थ्य और कलात्मक एवं यथार्थ अभिव्यक्ति को प्रस्तुत उपन्यास में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ नीचे एक अंश दिया जा रहा है जो भारत-विभाजन की परिस्थिति और मनःस्थिति से सम्बन्धित है -"विभाजन हुआ तो पंजाब में खून की नदियाँ बही - बंगाल में मार-काट हुई। सूबे के बड़े शहरों में कत्ल हुए और बस्तियाँ जलाकर राख कर डाली गयी। पर इस शहर में एक बूँद खून नहीं गिरा। किसी मुहल्ले पर धावा नहीं हुआ। किसी ने किसी को नहीं मारा। किसी ने किसी को गाली तक नहीं दी। मस्जिदों में लड़ाई की तैयारियाँ नहीं हुई। मन्दिरों में ईट-पत्थर इकट्ठे नहीं हुए, जो बदमाश रोज पिटते थे, उन्हें भी किसी ने नहीं पीटा। लेकिन भीतर ही भीतर एक भूचाल आया हुआ था जिससे बस्ती की चूलें हिल रही थीं। हिली इमारतें ढह रही थीं। एक उबलता हुआ नफरत का दरिया नीचे बह रहा था- शक और डर सबके दिलों में समाए हुए थे।"(78)

'लौटे हुए मुसाफिर' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की भाँति निम्न वर्ग और छोटे शहर की जिन्दगी की ओर एक बार फिर दृष्टिपात किया है और उसके चित्रण में अपेक्षित सफलता भी प्राप्त की है। साथ ही इस उपन्यास की एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि यह केवल किन्हीं दो या चार पात्रों की दुःख भरी कहानी नहीं रह जाती, अपितु एक पूरे समूह या समुदाय की परिस्थितिजन्य यातनाओं को प्रस्तुत करने वाली रचना के रूप में सामने आता है।

कमलेश्वर की सूक्ष्म अनुभूति तथा संवेदनाजन्य प्रेषणीयता के कारण यह उपन्यास काफी सफल बन गया है। प्रस्तुत उपन्यास में आस्था, आत्मविश्वास, कर्त्तव्यपरायणता, देशानुराग, एवं दायित्व निर्वाह का जो उन्होंने महान संदेश दिया है वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसीलिए कमलेश्वर का यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हो जाता है।

तीसरा आदमी : 'तीसरा आदमी' उपन्यास प्रथम पुरूष 'मैं' की शैली में लिखा गया है। प्रथम पुरूष 'मैं' अपनी पत्नी की ऐसी कहानी कहता है, जिसके बीच में एक 'तीसरा आदमी' है। उस तीसरे आदमी तथा पत्नी के अंतरंग प्रसंगों का खुला वर्णन 'मैं' अपने माध्यम से नहीं करते हुए, संकेतों और जो कुछ वह देखता है, उसके आधार पर कहता है। इस विशेष स्थिति के कारण 'मैं' के मन का संदेह एवं आंतरिक द्वन्द्व, उसके भीतर के द्वेष तथा घृणा के भाव उभरकर सामने आते हैं तथा पूरा उपन्यास अत्यन्त विश्वसनीय एवं यथार्थ शैली का उपन्यास बन जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास बिल्कुल सीधी-सादी अत्यन्त सहज शैली में लिखा हुआ उपन्यास है, जिसे पढ़कर कभी भी नहीं लगता कि लेखक ने किसी बनावट या बुनावट का सहारा लिया है। इस उपन्यास की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि पति-पत्नी के बीच किसी तीसरे आदमी के आने की प्रचलित कहानी को लेखक ने एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक आयाम प्रदान किया है। जिससे यह कहानी मात्र कहानी नहीं रह जाती, वह मध्यवर्गीय दाम्पत्य ऊँच-नीच का एक प्रामाणिक दस्तावेज बन जाती है।

मध्यवर्गीय परिवारों के संस्कारों, कुंठाओं, आर्थिक असमर्थताओं का बड़ा ही स्वाभाविक और सशक्त चित्रण कमलेश्वर के इस उपन्यास 'तीसरा आदमी' में उपलब्ध है। और कहीं कहीं तो यह चित्रण इतना सजीव है कि लेखक की हम केवल प्रशंसा ही कर सकते हैं। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -"सीली हुई दीवारें ...सड़े अनाज की तरह महकता हुआ बिस्तर...कोने से आती हुई राशन की गंध.. मैले कपड़ों की भभका और उनमें से फूटती हुई चित्रा के बालों में पड़े तेल और बँधी हुई वेणी की बू...उसका तन पसीजने लगता और उस मिली जुली गंध के ज्वार में हम डूब जाते..उसका पसीजता शरीर मेरी बाहों में घुलता होता, पसीने का एक भभक आता..हमारी दीवार में लगा हुआ टूटा पाइप खरखराता और ऊपर की मंजिल से बहायी हुई जूठन का लोंदा भद्ध से नाली में गिरता और मूली या खरबूजों के बीच की महक का झोंका आता... गली में कोई जोर से बात करता तो हम सहम

जाते, जैसे हमे इस हालत पर टोक रहा हो। दरवाजे के पास आती दूर जाती कदमों की आहट हमें सर्द कर जाती, फिर जैसे बदन जलने लगता और मैं चित्रा के होठों पर होठ रख देता हल्का-सा प्याज महकता और उसी में वेणी के फूलों की गंध समा जाती। दोनों छवियों के बीच सूखे हुए पसीने और सुबह लगाए हुए पाउडर की चिकनाहट का एहसास होता ...उसका रोम-रोम भभर आता.. जाँघों के ऊपर और जाँघों पर जैसे कोमल काँटे उभर आते और फिर सब महकें घुलमिलकर जिन्दगी की एक अजीब-सी महक में समा जाती।"[79]

पूरे उपन्यास में इस प्रकार के अनेक विवरण, वर्णन, चित्रण और संवाद भरे पड़े हैं, जो बरबस ध्यान आकर्षित करते हैं और लेखक की प्रतिभा के प्रति आश्वस्त करते हैं। डॉ. अमर प्रसाद जयसवाल के शब्दों में - "आकार में लघु होते हुए भी अपने विस्तार और गुणधर्म में यह कृति विस्तृत है। उसमें कम शब्दों में सांकेतित भाषा द्वारा एक कस्बे का आदमी महानगरों में आते-आते कैसे टूट जाता है, इसका सशक्त चित्रण लेखक ने इस रचना में किया है। आत्मकथात्मक शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा हुआ यह लघु-उपन्यास कस्बाई और महानगरीय जिन्दगी की जुड़ती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है।"[80]

<u>समुद्र में खोया आदमी</u> : 'समुद्र में खोया आदमी' यथार्थवादी शैली में लिखा है इसके साथ ही यह एक अच्छा प्रतीकात्मक उपन्यास भी है और इसमें प्रतीकात्मकता का निर्वाह इतने सहज रूप में हुआ है कि कहीं भी अटपटा नहीं लगता। प्रतीकों के सफल निर्वाह के लिए न तो लेखक को इसमें रूमानी भाषा का सहारा लेना पड़ा और न ही व्यर्थ की जोड़-तोड़ का बल्कि जो कुछ भी लेखक ने लिखा है, वह मुख्य कथा को स्पष्ट करने के लिए ही लिखा है। उसमें प्रतीक भी कथा के अंग बनकर ही आये हैं, वे ऊपर से थोपे हुए नहीं हैं। उदाहरण के लिए समुद्र का यह प्रतीक दृष्टव्य है जो संसार की भीड़ में श्यामलाल की स्थिति को व्यंजित करता है -"सड़कों पर एक के बाद एक लहरें आती चली जा रही हैं, आदमियों की लहरें और वे इस जन-समुद्र में डूबते जा रहे हैं। छटपटाकर इधर-उधर हाथ-पैर मार रहे हैं, पर कोई सहारा नहीं मिलता। कोई किनारा दूर तक नजर नहीं आता।"[81]

अंत में श्यामलाल की पत्नी रम्मी को भी लगभग इसी प्रकार की परिस्थिति का सामना करना पड़ता है और उसकी स्थिति भी समुद्र में खोये आदमी जैसी हो जाती है "रम्मी फटी-फटी आँखों से परछत्ती की ओर ताकती रही। मुन्नी सो गयी थी फिर उसने समुद्र देखा लहराता हुआ समुद्र जिसका कोई ओर छोर नहीं था। जिसमें खोये हुए आदमी के बारे में कोई नहीं बता सकता था। और उसी समुद्र में वह डूबती चली गयी - चारों तरफ पानी था उसके कानों में, आँखो में, पेट में खारा पानी भर गया था और साँस ऊबने लगी थी। ऊबती साँस से एकदम आँख खुली तो चारों तरफ अँधेरा था। चारों तरफ समुद्र की मनहूस खामोशी छाई हुई थी।"[82]

यथार्थवादी शैली में भी कोई बात कलात्मक ढंग से कैसे कही जा सकती है, इसकी कला कमलेश्वर को आती थी, नतीजा यह है कि 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' और 'तीसरा आदमी' की भाँति 'समुद्र में खोया आदमी' में भी ऐसे अनेक स्थल देखे जा सकते हैं जहाँ थोडे-से वाक्यों में जटिल स्थिति को अत्यन्त प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जा सका है। एक उदाहरण यहाँ पर्याप्त होगा -"जिसके साथ कोई लड़का जुड़ जाता है, वह कितना बदल जाती है। उसके नाक-नक्श उभरने लगते हैं- बदन में हल्कापन और लोच आ जाती है। बात में सलीका और मिठास भर जाती है।.. तारा उससे कितनी अलग होती जा रही थी। घर की साड़ियों के नीचे हर चीज बदलती जा रही थी। और बाहर जाकर काम करने से नाखूनों और होठों पर लाली आ गयी थी। बालों में हल्की लहरें पड़ने लगी थी। ब्लाउज कुछ और छोटे हो गए थे। एडियों पर चमक आ गई थी और बाँहों के रोएँ ज्यादा मुलायम हो गये थे। आँखो में फैला हुआ आकाश भर गया था। होठों का कटाव और साफ हो गया था।"(83)

कमलेश्वर ने प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय वातावरण में व्याप्त अकेलापन, अजनबीपन, निराशा, कुण्ठा एवं परायेपन की अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति की है जैसे -"जब से परिवार दिल्ली आया था, उसे सब लोग परछाई की तरह ही लगने लगे थे। जिनसे दिल की कोई बात न की जा सके जिनके साथ सुख-दुःख और अकेलापन, बाँटा न जा सके, उन्हें सिवा परछाई के और क्या समझा जाए। जो साथी उस छोटे शहर में छूट गए थे, खुद छायाओं में तब्दील हो गए थे। उनकी शक्लें सामने आती और गुजर जाती। बातचीत का कोई सिलसिला ही नहीं रह गया था। और जो इतने बहुत से लोग यहाँ दिल्ली में थे, वे भी उतने ही अपरिचित और अनजाने थे, जितनी की परछाई होती है इतने शोर और कोलाहल के बीच भी जैसे सब कुछ खामोश था। कभी-कभी तो इतनी गहरी खामोशी छा जाती कि उसका मन ऊबने लगता।"(84)

कमलेश्वर ने जिस सांकेतिक माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया है। श्यामलाल, रम्मी, तारा, हरवंश और समीरा के साथ ही नमिता का चरित्र काफी स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पुलिस, हलवाई, मकान-मालिक, मजदूर और मिल का वातावरण कहानी के यथार्थ का धरातल प्रस्तुत करता है। इन सबके बीच भाषा का सहज स्वाभाविक प्रयोग 'समुद्र में खोया आदमी' को साधारण में श्रेष्ठता प्रदान करता है।

काली आँधी : 'काली आँधी' आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास है। इसके कथावचक 'मैं' के द्वारा नायिका मालती और नायक जग्गी बाबू की जीवन गाथा का सजीव चित्र खींचा गया है। कमलेश्वर ने स्मृति रूप में 'पूर्वदीप्ति शैली' का इस्तेमाल भी किया है। उपन्यास में सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का यथार्थ राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित किया है। उपन्यास की नायिका मालती देश के उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए, अपने स्वार्थो को पूरा करने के लिए दाँव-पेचों को

आधार बनाते हैं। यही कारण है मालती गुरसरन से कहती है -"देखिए, हम जातिवाद के सहारे चुनाव नहीं लड़ेंगे, यह बात साफ है, पर सच्चाइयों को भी देखिए। चुनाव मैदान में इत्तफाक से बनियों का कोई अपना कैंडीडेट नहीं है। लाला दीनानाथ के खड़े होते ही सारे बनिये उनके इर्द-गिर्द जमा हो जायेंगे ..यह शर्तिया होगा, क्योंकि लोगों के मन में अपनी जाति के लिए लगाव होना लाजिमी है। लाला दीनानाथ के खड़े होते ही सब बनिये एकजुट हो जाएँगे और उनका समर्थन करेंगे...
'लेकिन इससे तो हमें नुकसान ही होगा। मेरा शक फिर उभर आया था।
'आप सुनिये तो, मालती ने कहा था - जब सारे बनिये लाला दीनानाथ के झण्डे के नीचे जमा हो जायेंगे, उस वक्त लाला दीनानाथ चुनाव मैदान से मेरे फेवर में विड्रा करेंगे। समझे आप ! तब एक भी बनिया कहीं टूटकर नहीं जा सकता... ।"(85)

'काली आँधी' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। 'काली आँधी' रास्ते की सब बाधाओं को तहस-नहस करती चलती है। उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की मालती भी सफलता के रास्ते से सब रूकावटों को जड़ से उखाड कर आगे बढती है ताकि वे फिर बाधा न पैदा करें। इस प्रकार 'काली आँधी' मालती की सफलता के वेग का प्रतीक है। विचारों के साथ-साथ अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी 'काली आँधी' एक सशक्त और सार्थक उपन्यास है , इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। कमलेश्वर के पास सही शब्दों में सही बात कहने की जो कला है, वह स्थान-स्थान पर इस उपन्यास में भी उजागर हुई है। उदाहरण के रूप में ये वाक्य देखे जा सकते हैं - "सफलता कितनी क्रूर होती है, कितनी जालिम होती है, इसका नशा कितना गहरा होता है और खुद अपनी सफलता में व्यक्ति कैसे कैद हो जाता है, इसका जीता-जागता उदाहरण है मालती जी। दुख और त्याग कितना जालिम होता है और उसमें व्यक्ति कैसे बुझ जाता है इसका जलता हुआ उदाहरण है जग्गी बाबू।"(86)

इसी प्रकार यह संवाद भी दृष्टव्य है, जो थोड़े शब्दों में पूरी स्थिति का खुलासा कर देता है -"तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो। ..बाढ आयी तो उसे इस्तेमाल करो सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो, कहीं कोई लड़की भाग गई तो उसके भागने का इस्तेमाल करो...कहीं कोई मर गया तो उसके मरने का इस्तेमाल करो... तुम लोगों ने आदमी के आँसुओं और जजबातों तक को नहीं छोड़ा...उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा...तुमने उसके सपनों को नारे बना कर निचोड़ लिया। अब क्या बचा है आदमी के पास।"(87)

प्रस्तुत उपन्यास में जग्गीबाबू और मालती पति पत्नी है, साथ ही साथ मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के प्रतिनिधि भी हैं। जग्गी बाबू उच्चवर्ग के खोखले, झूठे छद्म एवं आडम्बर पूर्ण जीवन नहीं जीना चाहते हैं वे अपने स्वाभिमान को बनाए रखना चाहते हैं, लेकिन मालती उन्हें अपनी सफलता की सीढी बनाना चाहती है। इस सन्दर्भ में मालती और जग्गीबाबू का संवाद उल्लेखनीय है - "समझती तो हूँ पर राजनीति की इस दुनिया में साफ चेहरे रखने के लिए बहुत नुकसान भी उठाने पड़ते हैं और होटल का बन्द होना कोई इतना

बड़ा नुकसान नहीं है कि...आप मेरी खातिर इतना भी न कर सकें।
'फिर मैं करूँगा क्या ?'
'क्यों, मेरे साथ काम में हाथ नहीं बँटा सकते ?
इतने गैर लोग साथ रहकर काम करते हैं। कितनी चीजों को संभालना पड़ता है। आप दस कमेटियों के मेम्बर हो सकते हैं ... और लोग मुझसे फायदा उठा सकते हैं पर आप के लिए मैं किसी लायक नहीं ?
'मैं तुम्हारा पति हूँ ...फायदा उठा सकने वाला गैर आदमी नहीं ... मैं तुमसे फायदा उठाऊँगा ? सोचो क्या बात कहीं है तुमने ?
'कोई गलत बात तो नहीं कहीं। अगर एक औरत इस लायक हो जाए तो इसमें पति-पत्नी का रिश्ता ...
क्या कह रही हो तुम ?"[88]

कमलेश्वर एक ऐसे जागरूक कथाकार रहे हैं जिन्होंने समकालीन जीवन के उन प्रसंगों को भी चुना है जो जोखिम से भरे हैं। उन्होंने समकालीन राजनीतिक कुचक्र को भी आधार बनाया है। शायद उनके समकालीन कथाकारों की दृष्टि में ये प्रसंग आये ही नहीं। परन्तु कमलेश्वर ने आम जीवन की सार्थकता को व्यंजित करने के लिए उन विवरणों को अपने कथा-चिन्तन का आधार बनाया है।

डाक बंगला : 'डाक बंगला' उपन्यास का आरम्भ पूर्वदीप्ति शैली में होता है तथा साथ ही लेखक ने आत्मकथात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। कमलेश्वर ने शीर्षक की अभिव्यक्ति के लिए जो वक्तव्य दिया है उसका प्रत्येक शब्द प्रतीकात्मक है। "हर जिन्दगी एक डाक बंगला है जिसमें खूबसूरती की किताबें और बदसूरती के राक्षस सो रहे हैं। पीली-पीली मोमबत्तियाँ जल रही हैं और दूर पर बहती नदियों का शोर है। चारों तरफ चीड़ और देवदार के जंगल हैं ... अनगिनत पेड़ हैं, पर सब अपने में अकेले हैं।"[89] एक स्त्री 'इरा' के माध्यम से लेखक ने डाक बंगले के प्रतीक को रूपायित करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश्वर ने सैलानियों के क्रिया-कलापों को संकेतों के सहारे अभिव्यक्त किया है। इससे उनके उपन्यास अश्लीलता के घेरे से बच गए तथा वहाँ घटित घटनाओं को उद्घाटित करने के साथ ही साथ वहाँ उपस्थित व्यक्ति के मन की चाह को भी व्यक्त कर दिया है। इरा को अपने बनाने की चाह में सोलंकी सैलानियों के कमरे में जबरदस्ती ही घुस जाता है तो उसने जो दृश्य देखा उसे संकेतों से अभिव्यक्त किया गया है -"और पलंग की सफेद चादर बुरी तरह से मसली हुई थी, तकिए पर कोहनियों की टेक के गढे बाकी थे, तकिए के साथ ही एक मलयेजा और गंदा रूमाल था और एक रेशमी साड़ी सिरहाने के पीछे बेतरतीबी से पड़ी थी। तकिए के एक कोने से दबी हुई बेसरी झाँक रही थी, जिसकी गेटिस टूटी हुई थी।"[90]

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति हेतु रूमानी भाषा का प्रयोग किया। डॉ.वीरेन्द्र सक्सेना का कथ्य यहाँ दृष्टव्य है -" कमलेश्वर ने यह उपन्यास एक दूसरे प्रकार की भाषा

शैली में अपने आपको आजमाने के लिए लिखा और बाद में उन्हें स्वयं ही लगा कि वे इस भाषा-शैली के लिए नहीं बने हैं। प्रमाण के रूप में मैं कहूँगा कि 'डाक बंगला' के बाद कमलेश्वर ने अपना कोई भी उपन्यास इस प्रकार की किताबी और रूमानी भाषा में नहीं लिखा।"(91)

कमलेश्वर ने इस उपन्यास की नायिका 'इरा' को एक प्रकार की दार्शनिकता दी है। उसका हर वाक्य जैसे सूक्तिवाक्य है। अपनी आपबीती सुनाते समय वह तिलक के सामने सौन्दर्य, पुरूष, समाज और जीवन के संबंध में कई ऐसे वाक्य बोल जाती है जो जीवन के गहन अनुभव के बाद ही कहे जा सकते हैं। जीवन से जूझते हुए चरित्रों के रूप में कमलेश्वर की 'इरा' शायद सबसे सशक्त है। डॉ.सुरेश सिन्हा के शब्दों में -"पात्रों के अन्तस का विश्लेषण कर उनके मानस का सूक्ष्म विवेचन करने एवं उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करने में कमलेश्वर सफल रहे हैं।"(92)

आगामी अतीत : कमलेश्वर ने इस उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली के साथ-साथ व्यंग्यात्मक शैली की अभिव्यक्ति भी देखी जा सकती है। 'आगामी अतीत' उपन्यास का मूल विचार लगभग लेखक के 'काली आँधी' उपन्यास जैसा ही प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति पूँजीवादी समाज के स्पर्धामूलक परिवेश में पड़कर किस प्रकार सफलता प्राप्त करने के लिए गलत रास्तों को अपना लेता है और अपने निजी परिवेश या वर्ग से पूरी तरह कट जाता है। पर इन दोनों उपन्यासों का मुख्य अंतर यह है कि जहाँ 'काली आँधी' केवल 'सफलता' की ओर बढने तक का चित्रण प्रस्तुत करता है, वहीं 'आगामी अतीत' उससे आगे की भी बात कहता है, अर्थात् उस स्थिति की बात जब 'सफलताओं की स्पर्धा' से ऊबा हुआ व्यक्ति अपने पुराने परिवेश या वर्ग में लौटना चाहता है, पर लौट नहीं पाता।

प्रस्तुत उपन्यास की एक अन्य विशेषता यह है कि वह हमारे समक्ष चाँदनी जैसा जीवंत नारी पात्र प्रस्तुत कर सका है। वस्तुतः चाँदनी का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो दूसरे किसी भी हिन्दी-उपन्यास में देखने को नहीं मिलता और आश्चर्य इस बात का है कि कमलेश्वर ने उसे अपने अभिव्यक्ति कौशल से बिलकुल सजीव रूप में उपन्यास के पृष्ठों पर खड़ा कर दिया है। प्रमाण के रूप में यहाँ प्रस्तुत है कुछ संवाद - "न बाबा न, मुझे नहीं चाहिए ये हराम के पैसे' वह बोली थी।

'हराम के ?'

'और क्या ? कुछ करते धरते तो हो नहीं ...समझते हो मैं फोकट के पैसे लेके चली जाऊँगी। अरे बाबू, एक दिन सबको ईश्वर के यहाँ जवाब देना पड़ता है। ये पाप मैं काहे को लूँ ?" चाँदनी ने प्रायश्चित के लिए जैसे अपने कान पकड लिये थे, 'धंधा करूँगी तो पैसा लूँगी, ये मामूली काम नहीं है बाबू, बहुत पिता मारकर अनजाने आदमी को सहना पड़ता है। तुम औरत होते तो समझ पाते।"(93)

प्रस्तुत उपन्यास में कुछ दूसरे स्थलों पर छायावादी किस्म के संवाद या विवरण भी हैं जहाँ लेखक थोड़ा 'फिल्मी' होते दिखाई देते हैं जैसे 'कसक ?'

हाँ ! उसने बड़ी- बड़ी आँखे चमकायी थीं।
'कसक। कैसी होती है कसक ?' कमल ने शैतानी से पूछा था।
'अभी नहीं जाने ? जान जाओगी कभी।' उसने बहुत गहराई से कहा था।"[94] इस प्रकार उपर्युक्त संवाद जहाँ चाँदनी के अनूठे व्यक्तित्व और उसके वर्ग-चरित्र पर प्रकाश डालते हैं, वही कमलेश्वर के अभिव्यक्ति-कौशल को भी प्रमाणित करते हैं।

वही बात : कमलेश्वर का प्रस्तुत उपन्यास 'वही बात' यथार्थवादी शैली में लिखा गया है। 'काली आँधी' एवं 'आगामी अतीत' उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास का पात्र 'प्रशान्त' भी 'सफलता' के पीछे भागता है और निजी जिन्दगी में बहुत पीछे रह जाता है। 'सफलता' प्राप्त करने के चक्कर में वह अपनी पत्नी 'समीरा' को खो देता है। इस संबंध में प्रस्तुत संवाद यहाँ उल्लेखनीय है -"इतनी सफलता को लेकर क्या करोगे ? जितनी है, उतनी ही मेरे लिए काफी है। समीरा ने कहा।
'तुम समझती नहीं, समी ! ऐसे मौके जिन्दगी में बार-बार नहीं आते ...आगे बढना हो तो हर मौके को दोनों बाहों से पकड़ लेना चाहिए ...'
'तुम आगे बढते जाओ, पर ...यह तो देखते रहो कि कहीं मैं बहुत पीछे न छूट जाऊँ..।'
'कैसी बातें करती हो ?'
'बातें नहीं, हकीकत है यह ..तुमने कभी सोचा है कि मैं कहाँ-कहाँ अधूरी होती जा रही हूँ ?'
'सफलता के लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, समीरा !'
'तो ठीक है। जो तुम्हारे मन में आये, करते जाओ..इस जिन्दगी के साथ ...इस मन के साथ ...इस शरीर के साथ...।' "[95]

कमलेश्वर ने प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तुलना की दृष्टि से पूर्णतः निराले रूप में चित्रित किया है। उपन्यास की नायिका समीरा प्रतिकूल परिस्थिति व जीवन से हताश होकर आत्महत्या करने वाली नारी नहीं है। इस संदर्भ में डॉ. रेखा शर्मा का कथन है कि -"कमलेश्वर के उपन्यासों की नायिकाएँ अहमवादिनी है। वे अचेतन मन में पश्चाताप करती हैं लेकिन चेतन स्तर पर डटकर निर्णय लेती हैं और नायक के समक्ष झुकती नहीं हैं।"[96] 'वही बात' स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की एक नयी परिभाषा तैयार करती है।

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में सहज-सरल भाषा का प्रयोग किया है। साथ ही अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य हैं। अपनी भावनाओं को यथासम्भव उसके वास्तविक रूप में अभिव्यक्त किया है।

सुबह-दोपहर-शाम : कमलेश्वर द्वारा लिखित 'सुबह-दोपहर-शाम' उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास पारिवारिकता और क्रांतिकारिता का एक संगम है। यह अनुभूत सत्यों का रूपान्तरण है।

एक ही परिवार में सिद्धांतो और आदर्शो की विभिन्नता का यह यथार्थवादी रूपक है।

आजादी के आन्दोलन का गहरा असर खासतौर से दादी जैसे पात्र में देखा जा सकता है। दादी 'अंग्रेजी शासन' की गुलामी पर व्यंग्य करती हुई जसवन्त से कहती है -"देख जसवन्त ! रोटी तो कुत्ता भी खाता है, जो टुकडा फेंक दो, उसे ही खा लेता है, पर मानुष रोटी-रोटी में भेद करता है ...तू रोटी का भेद भूल गया है ...जैसे तेरी बुआ भूल गई है। तेरी बुआ इसी पेट की जाई है... पर मेरी कोख उसे जनम देकर चौदह बरस काली पड़ गई। वह अपने आदमी के साथ अंग्रेज बहादुर की रोटी तोड़ने लगी। उसकी तड़क-भड़क, हवेली, पैसा, तलवार तुझे भी ज्यादा सुहाने लगी ? खैर छोड़ मुझे कुछ नहीं कहना है, जो जी में आए कर जा के ...आँधी बीत जाए, आसमान खुल जाए... तू चला जा... ।"(97)

कमलेश्वर ने व्यंग के साथ-साथ प्रतीकों का भी खूब प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "कंकड की सड़क सूनी पड़ी थी। सड़क की दोनों कच्ची पटरियों की धूल मटमैली चादर की तरह उड़ती चली जा रही थी। उसी धूल की चादर में सूखी पत्तियाँ ऐसी उलझी चली जा रही थीं जैसे बड़ी दादी की पुरानी दोहर हो, जिसमें उन्होंने खुद फूल-पत्तियाँ काढी थीं और जब कटकटाती सर्दी पड़ती थी, तभी वह उसे निकालती थीं।"(98)

भाषा के स्तर पर कोई क्लिष्टता नहीं है, इसलिए पाठक उसे बड़ी सहजता के साथ समझ पाता है। कमलेश्वर ने सहज सरल भाषा के साथ कहीं अंग्रेजी शब्दों तो कहीं ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उपन्यास के संवाद पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा मनःस्थितियों के उद्घाटन में पूर्णतः सफल हुए हैं। एक प्रसंगानुकूल एवं सशक्त उदाहरण इस प्रकार है
"तुम्हारा जाना जरूरी है जसवन्त ?
'हाँ, बड़ी अम्मा।'
'अंग्रेज बहादुर की नौकरी जरूरी है ?'
'वह तो नही है, बड़ी अम्मा...लेकिन ...
'दो रूपये महीना मिलेगा, इसलिए जा रहा है ?'
'वह बात भी नहीं है बड़ी अम्मा !'
'तब क्यों अंग्रेज बहादुर की गुलामी करने जा रहा है ? तुझे भी क्या अपनी बुआ-फूफाजी की गद्धारी अच्छी लगने लगी है।"(99)

रेगिस्तान : 'रेगिस्तान' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। यह तो ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के निरर्थक जीवन का प्रतीक है। लेखक उपन्यास के प्रमुख पात्र 'विश्वनाथ' के माध्यम से यह बताना चाहता है कि आजादी के आन्दोलन के वक्त गांधीजी के साथ अनगिनत लोगों ने अपने बलिदान दिए। लेकिन आजादी के बाद गांधीवादी आदर्शो के पदचिन्हों का अनुसरण करने वालों का सामाजिक जीवन उसी तरह रेगिस्तान सा हो गया है। उपन्यास में विश्वनाथ सिर्फ एक पात्र भर नहीं है - वह हिन्दी बनाम स्वदेशी और सदाचारिता के

वैसे सेवकों का प्रतीक है जिनके जीवन को समाज रेगिस्तान सरीखा बना देता है।

अपने अन्य उपन्यासों की भाँति लेखक ने इस उपन्यास में भी व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। जिसका उदाहरण इस प्रकार है - "गहरी सांस लेकर विश्वनाथ सोचने लगा - आजादी के इतने बरसों बाद जब कालीकट, कोचीन, बंगलौर, मद्रास से लौटा भी तो क्या मिला ? इतने बरस एक जगह से दूसरी जगह भागता रहा...दक्षिण भारत में, एक कोने से दूसरे कोने तक देश को अपनी भाषाएँ देनी हैं - देश को हिन्दी देनी है ... सन् तीस में निकला था स्वदेशी स्कूल की मास्टरी छोड़कर हिन्दी प्रचार के लिए। और अब लौटा तो देखा, जहाँ हिन्दी थी पहले, वहाँ भी हिन्दी नहीं रही है...कहाँ है अपनी भाषाएँ ? कहाँ है हिन्दी ? लोग वैसे ही गूँगे बैठे हैं ...उसी तरह पड़े हुए हैं ...।"[100] लेखक ने अपनी भावनाओं को यथासम्भव उसके वास्तविक रूप में अभिव्यक्त करने के लिए सहज-सरल भाषा का प्रयोग किया है।

कितने पाकिस्तान : कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' अत्यंत व्यापक फलक पर लिखा गया उपन्यास है। अपनी शिल्पगत नवीनता तथा विषय की व्यापकता एवं गंभीरता के कारण कितने पाकिस्तान नयी सदी के बहुचर्चित उपन्यासों में से एक है। अधिकांश आलोचकों द्वारा तथा आम पाठकों द्वारा अब, तक इसके पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ लिखा और कहा गया है। जहाँ किसी ने इसे हिन्दी का प्रथम वैश्विक उपन्यास कहा तो कुछ लोग इसे उपन्यास मानने के लिए ही तैयार नहीं है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं से संबंधित प्रसंगों तथा इतिहास से संबंधित विवरणों के लिए विस्तार को उपन्यास की गति में बाधा माना गया तथा इसकी भाषा को लेकर भी सवाल उठाये गये। इस संदर्भ में लेखक का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है - "यह उपन्यास है या कुछ और तो मैं यही कह सकता हूँ कि इसे मैंने उपन्यास की तरह ही शुरू किया था और उपन्यास मानकर ही पूरा किया है। इसे उपन्यास की तरह पढ़ा गया है। मेरी समझ से यह परिभाषा का कोई संकट खड़ा नहीं करता। यदि थोड़ा-सा संकट खड़ा भी होता है तो इसलिए कि इस में राष्ट्रीय, सभ्यतागत, समयगत समस्याओं का विस्तार हुआ है। वैश्विक चिन्ताओं के बीच इसमें हर देश में मौजूद 'अपने देश' को पहचानने की कोशिश की गई है।"[101]

"सृजनात्मक वैश्विक विजन और मानवतावादी सोच के आग्रही कमलेश्वर ने इसमें न केवल रोमांटिक तेवर अपनाये हैं बल्कि इतिहास, मिथ, संस्कृति, विश्व राजनीति के अक्षांसो में विचरण करते हुए देश-काल, स्पेस-भूगोल की विधिओं को फैण्टेसी शिल्प में इस तरह अन्तर्भुक्त किया है कि पाठक उसके विश्व साहित्य के ज्ञान और भारतीय साहित्य की अंतश्चेतना के संस्पर्श से अभिभूत हो जाता है।"[102] 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के बने-बनाये ढाँचे को तोड़ते हुए 'ब्रेख्तीय शैली' में, इतिहास की कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा हमारे समय के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सवालों से जूझने

का प्रयास करता है। इस उपन्यास में स्पेस का विस्तार है,जो लेखक के अनुसार कथानक की माँग है। इसे लिखते समय कोई नायक या महानायक सामने न होने के कारण लेखक ने समय को ही नायक-महानायक और खलनायक बनाया है। जो शिल्प अपनी बात कहने के लिए लेखक ने अपनाया है वह किस्सागोई शैली की भी याद दिलाता है और उपन्यास को रोचक तथा विचारोत्तेजक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उपन्यास का प्रारंभ हो जाता है भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय की पृष्ठभूमि में, कस्बा मैनपुरी के नायक और फतेहगढ़ की विद्या के प्रसंग के साथ। इन प्रारंभिक पन्नों को पढ़ते हुए लगता है कि यह भारत-पाकिस्तान विभाजन की पृष्ठभूमि में चल रही, सांप्रदायिक उन्माद पर आधारित, मानवीय मूल्यों का समर्थन करनेवाली कोई रोमांटिक सी कहानी होगी। फिल्मी स्टाईल में..एक भूली हुई दास्तान उसे याद आती है, पुराने गीत के लय की तरह। नीम के झरते हुए फूलों के दिन, कनेर में आती पीली कलियों के दिन, न बीतनेवाली दोपहरियों के दिन ... विदा के समय कानपुर रेलवे स्टेशन पर रूमाल गिरने का जिक्र, परन्तु जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं वैसे पाते हैं कि यहाँ कुछ अलग हो रहा है। नायक और नायिका की जगह हमारे सामने अदीब और अर्दली महमूद हाजिर हो जाते हैं जो हमें लेखक द्वारा निर्मित एक भव्य फैंण्टेसी का हिस्सा बना लेते हैं। यहाँ हमारे समय के कड़वे यथार्थ के कारणों की तलाश के बहाने, वर्तमान, इतिहास एवं संस्कृति से जुड़े विभिन्न लोगों को चाहे वे देवता, बादशाह, राजनेता, तानाशाह, साहित्यकार, इतिहासकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, पीड़ित, शोषित आम आदमी.. चाहे कोई भी हो, उन सब को अदीब की अदालत में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए खड़ा कर दिया जाता है। केवल मृत या जीवित व्यक्ति ही नहीं बल्कि काल, नदियाँ और अपने समय की तमाम दस्तकें अदीब के सामने पेश होकर अपना पक्ष रखती हैं। मानवीय मूल्यों की रक्षा से संबंधित जिन सवालों से हम जूझने का प्रयास करते आ रहे हैं, उनके साथ लेखक अदीब के माध्यम से बार-बार टकराता है।

लेखक का विश्वास अदीब में है, उसकी बेलौस, बेखौफ आवाज में है तथा न्याय के प्रति उसकी प्रतिबद्धता में है। उपन्यास में फैजाबाद की बहू बेगम कहती है -" तू बैठ के लिख। तेरा लिखा सदियों के पार जाएगा.. कोई राजा-महाराजा, बादशाह-शहंशाह, नेता-प्रधानमंत्री अपने वक्त का जवाब नहीं देगा। सब अच्छा या बुरा कर के मर जाएँगे...जवाब सिर्फ तुझे देना पडेगा।"[(103)] जब अर्दली पूछता है कि आप कोई अदालत तो नहीं कि आप इंद्र पर बलात्कार का मुकदमा चला सकें तब अदीब जवाब देता है- "मत भूलो महमूद ! किसी भी दौर के अत्याचारों, अनाचारों के खिलाफ खड़ा होनेवाला कोई-न-कोई अदीब हमेशा एक नैतिक अदालत बन कर मौजूद रहता है।"[(104)] वास्तव में अदीब की अदालत हर संवेदनशील व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में चल रही नैतिक अदालत है जहाँ वह अपने विवेक की मदद से समय के द्वन्द्वों का सामना करता है। वास्तव में अपनी वर्णनात्मक संरचना में

कमलेश्वर ने फैण्टेसी शिल्प का प्रयोग बहुत ही सार्थक रूप में रचा है। दिवा स्वप्न, यथार्थ और स्वप्न का मिला जुला पैटर्न।

उपन्यासकार का विश्व इतिहास, मिथक शास्त्र का ज्ञान विशेषकर भारतीय इतिहास का ज्ञान आम पाठक को अभिभूत करने वाला है जिसे फैण्टेसी शैली में प्रस्तुत कर पाठक वर्ग को आकर्षित करने का अद्‌भुत कौशल नुमायाँ हुआ है।

'पाकिस्तान' शब्द यहाँ प्रतीक बना है। यह अलगाववादी प्रवृत्तियों का मनुष्य की धर्मान्धता तथा सत्ता की हवस का प्रतीक है। इसी के साथ यह साझी संस्कृति को भूलकर आतंक और हिंसा की आग को भडकानेवाली प्रवृत्ति भी है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के बीच बीच में गालिब की तल्खियत की अनुगूँज उभर कर आती है। विद्या के प्रेमपत्र में पहले जिक्र था-वफा कैसी, कहाँ का इश्क, जब सर फोडना ठहरा। तो फिर ऐ संगे दिल, तिरा ही संगे-आस्तां क्यों न हो। अपनी वर्णनात्मक संरचना में कमलेश्वर ने फैण्टेसी शिल्प का प्रयोग बहुत ही सार्थक रूप में रचा है। दिवा स्वप्न, यथार्थ और स्वप्न का मिला जुला पैटर्न। कमलेश्वर ने अधिकाशतः उर्दू, अरबी-फारसी, अंग्रेजी शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है जैसे अदीबे आलिया, पैसिंजर, कयामत इत्यादि। विवेच्य उपन्यास की भाषा के संबंध में डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे ने कहा है कि "बहुत अच्छा मराठी अनुवाद मौजूद होने के बाद भी वे इसे हिन्दी में पढ़ने के लिए उत्सुक हुए ..और उन्हें यह लगा कि यह हिन्दी उन सबकी हिन्दी है जो हिन्दीवालों की वैयक्तिक हिन्दी नहीं बल्कि भविष्यमुखी राष्ट्रीय हिन्दी होगी।"(105)

'कितने पाकिस्तान' हिन्दी उपन्यास लेखन की दीर्घ यात्रा में एक मील का पत्थर हैं, जो अपने वर्तमान तथा अतीत के साथ जुड़ते हुए, एक बेहतर भविष्य की कामना करते हुए, भविष्य की भयानक संभावनाओं को लेकर हमें सचेत करता है। बँटवारे की राजनीति के रहस्यों को जानने तथा अनेक खानों में बँटते जा रहे विश्व को मानवता के सूत्र में बाँधने का भगीरथ प्रयास यह उपन्यास करता है।

<u>अनबीता व्यतीत</u> : कमलेश्वर द्वारा रचित 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास का प्रथम संस्करण 2004 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनात्मक शैली एवं पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया गया है। उपन्यास का शिल्प कथ्य के अनुरूप बन पड़ा है। सहज सरल भाषा के प्रयोग के बावजूद लेखक अपने संवादों को इतने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है कि पाठक को लगता है कि सब कुछ उसके सामने घटित हो रहा है अर्थात् पाठक कल्पना में खो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश्वर ने जिस तरह अपने संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिकता को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है वह काबिले तारीफ है। इंसान अपने स्वार्थ हेतु किस हद तक जा सकता है इसका उदाहरण प्रस्तुत संवाद में देखा जा सकता है -

"आपने यह विज्ञापन देखा है मास्टरजी ?'

'हाँ देखा है..पिछले पच्चीस दिनों से हर रोज निकल रहा है। यह बहुत बड़ी साजिश है।'
'साजिश !'
हाँ महाराज साहब की यह जायदाद नगर परिषद खरीद चुकी है। नगर परिषेद इसका सत्तर करोड रूपया महाराज साहब को पहले ही अदा कर चुकी है।'
'सत्तर करोड... नगर परिषद इतनी अमीर है क्या ?'
'नही, नगर परिषद ने तो कुल एक करोड लगाया है, बाकी विदेशी बैंकों से कर्ज उठाया गया है ...सब ने मिल-बाँट कर खाया है ...पहले महाराज साहब की ओर से परिषद को प्रापर्टी बेचने का निवेदन भिजवाया गया, फिर मेम्बरों को यह भरोसा दिलवाकर कि यह प्रापर्टी खरीदने में मुनाफा ही मुनाफा है, परिषद में प्रस्ताव पास करवाया गया ...'
'लेकिन परिषद के अपने भी तो नियम कानून होंगे ?'
'नियम कानून गये भाड़-चूल्हे में ! यह सब दीवान द्वारिकादास की जालसाजी है ..नियम कानून कलक्टर की राय से दीवान द्वारिकादास के घर में बनते हैं ।'
'यह तो बहुत बड़ा घपला है।'
'है तो हुआ करे। बिचौलियों के जेबें गरम हो गयी। महाराज साहब को खड़ा पैसा मिल गया ... अब विज्ञापन निकल रहा है, प्रापर्टी बिके न बिके ... उसकी बला से।'
'लेकिन बैंकें तो अपना ब्याज लेगी... जनता का पैसा डूब जायेगा।'
'डूबे तो डूब जाय ... और देखना, नगर परिषद का अध्यक्ष जान-बूझकर अगले इलेक्शन में हार जाएगा जो नया अध्यक्ष बनेगा ठीकरा उसके सिर फूटेगा, सड़के बनेगी नहीं, बिजली मिलेगी नहीं, तनख्वाहें बँटेगी नहीं।"[106]

प्रस्तुत उपन्यास को एक 'पर्यावरण प्रधान उपन्यास' की संज्ञा दी जा सकती है। जिसमें प्रकृति, पक्षी इत्यादि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेखक ने तो प्रकृति को भगवान से बढकर मान लिया है। उपन्यास के पात्र समीरा गौतम से पूछती है - "तो क्या प्रकृति सच है और ईश्वर मात्र एक शुभ परिकल्पना ?"[107] अपने भाषिक कौशल के माध्यम से लेखक ने प्रकृति का सजीव एवं मनोहारी चित्रण किया है जैसे - "नीली झील की सतह के ऊपर पसरे बादलों का रंग सिन्दूरी होने लगा था। बादलों के सिन्दूरी रंग में नीली झील, उसके चारों ओर की हरी-भरी पहाडियों को नहीं सम्पूर्ण प्रकृति को अपने सिन्दूरी रंग में रंग लिया है। पीछे की ओर खड़ी दुर्ग की वे प्राचीरें भी काई और सिन्दूर की पुती दिखाई दे रही थीं।"[108]

अम्मा : प्रस्तुत उपन्यास का कथा फलक यों तो विस्तृत है लेकिन कमलेश्वर जी ने अपने रचनात्मक कौशल से जिस तरह कम शब्दों में संभव किया है वह काबिले तारीफ है। प्रस्तुत उपन्यास भी वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है।

लेखक ने प्रभावात्मक संवादों का निर्माण कर अपने भावों को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। जिसका उदाहरण प्रस्तुत संवाद के माध्यम से देखा

जा सकता है, जिसमें देवर के प्रति भाभी की ममता का सजीव चित्रण हुआ है -"एक बात कहूँ लालाजी, शान्ता ने अचानक कुछ याद आते ही कहा, 'होली आ रही है, क्या भाभी के साथ होली खेलने नहीं आओगे ?'
'अगर आ सका तो ..।'
'नहीं, मुझे वचन दो कि होली पर जरूर आओगे।'
'कैसे वचन दूँ भाभी, नवीन की आवाज उदास हो उठी, 'खून की होली खेलते-खेलते किधर चला जाऊँ या किसी गोरे की रिवाल्वर का ..'
'नहीं..नहीं, ऐसा मत कहिए लालाजी, शान्ता ने नवीन के मुँह पर अपनी हथेली रख दी, 'मुझे अपने भगवान पर पूरा-पूरा विश्वास है। तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा।'
'आपका यह आशीर्वाद हर संकट में मेरी सहायता और रक्षा करेगा भाभी।' नवीन ने कहा।
'शान्ता की आँखो में ममता, मोह और स्नेह की अधिकता से आँसू छलछला उठे।"[109]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने सहज, सरल भाषा का प्रयोग किया है। अंग्रेजी शब्दों के साथ-साथ कहीं-कहीं सांकेतिक भाषा का भी प्रयोग किया गया है जैसे "हाँ, सलीम भाई, जब घर में साँप बिल बनाकर बस जाए तो सावधानी जरूरी हो जाती है।"[110]

<u>पति, पत्नी और वह</u> : कमलेश्वर का पूँजीवादी समाज के प्रतिस्पर्द्धात्मक परिवेश की विडम्बनाओं और अन्तर्विरोधों को उजागर करने वाला यह उपन्यास शिल्प व भाषा की सहजता के लिए हमेशा याद किया जाएगा।

यह उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। लेखक के भाषिक सौन्दर्य को प्रस्तुत उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है जैसे -"शारदा के प्यार में सागर जैसी गम्भीरता थी, उपवन जैसी शान्ति थी। और निर्मला का प्यार उस पर्वतीय सरिता की चंचल धारा के समान था, जो अपने मार्ग में आने वाले पत्थरों और चट्टानों को रौदती हुई उच्छृंखल अहसास के साथ दौड़ती हुई सागर की बाँहों में लिपट जाती है।"[111] अपनी बात को सही ढंग से संप्रेषित करने के लिए सटीक संवादों का प्रयोग लेखक ने बखूबी ढंग से किया है, प्रस्तुत उदाहरण उल्लेखनीय है -
"फिर तुमने मेरे दिल के साथ इस तरह खिलवाड़ क्यों किया ? निर्मला दहाड़कर बोली 'तुमने मुझे इस तरह धोखा क्यों दिया रंजीत ? बोलो...बताओ।'
'और रंजीत, तुमने मुझे धोखा क्यों दिया ? मेरे साथ विश्वासघात क्यों किया ? क्या मैंने अपना सब कुछ तुम्हें नहीं दिया था ? शारदा ने कड़ककर पूछा।
'दिया था ...दिया था ..मैं कब इन्कार कर रहा हूँ।'
'मैंने किसी का कुछ बुरा चाहा था ? तुम्हारा या तुम्हारी वाइफ का ?'
'नहीं..नहीं ..बिल्कुल नहीं।'
'तब तुमने हमारे दिल से ..निर्मला बोली।
'हमारी भावनाओं से ...।'

'यह खिलवाड़ क्यों किया ? क्यों ? किस लिए ?' शारदा बिफर उठी।
'रंजीत पूरी तरह पस्त हो चुका था। वह पागलों की तरह अपने बाल नोचने और चीखने लगा। फिर उसने फर्श पर पड़ी शारदा की चप्पल उठाई और अपने मुँह पर मारने लगा।"[112]

प्रस्तुत उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य है तथा जगह-जगह शायरी-कविताओं का भरपूर प्रयोग मिलता है जैसे -

"मस्जिद है मेरा दफ्तर
खाली है मेरा बिस्तर
सोचा करता हूँ अक्सर
कुछ छोड़े मेरा अफसर।"

"लैला की कब्र से आती है ये सदा
कि क्या, कि जागते रहो, जागते रहो ।"[113]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कमलेश्वर आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य के संवेदना पक्ष और शिल्प पक्ष को नूतन प्रयोगों से नितान्त गौरवशाली बनाने का सफल प्रयास किया है। एक सच्चे वामपंथी की कथनी और करनी की ईमानदारी उनकी रचनाओं से जाहिर होती है। देश के नक्शे को भी बदलने की क्षमता रखनेवाली उनकी रचनायें असल में हिन्दी कथा-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लक्ष्मीनारायण दास	: हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	पृ.2
2. आक्सफोर्ड डिक्शनरी	:	पृ.1258
3. बृहद हिन्दी कोश	: ज्ञानमंडल, बनारस	पृ.1239
4. रोहिताश्व	: समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.261
5. श्यामसुन्दर दास	: साहित्यालोचन	पृ.259
6. शिवप्रसाद सिंह	: आधुनिक परिवेश और नवलेखन	पृ.185
7. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.178
8. नामवर सिंह	: वाद-विवाद संवाद	पृ.23
9. सुरेश सिन्हा	: नई कहानी की मूल संवेदना	पृ.110
10. रेखा शर्मा	: कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान	पृ.43
11. कमलेश्वर	: नई कहानी की भूमिका	पृ.210
12. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.157
13. सुधा बालकृष्णन	: हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप	पृ.115
14. रोहिताश्व	: समकालीन कहानी का शिल्प विधान	पृ.6
15. पुष्पपाल सिंह	: समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ	पृ.300
16. धनराज मानधाने	: हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	पृ.422
17. सोनिया सिरसाट	: राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.262
18. मार्लो पोंती	: द पालिमिक्स ऑफ एक्सपीरियंस	पृ.27
19. रोहिताश्व	: कितने पाकिस्तान : क्लासिकल अभिरूचि की महागाथा	पृ.16
20. रोहिताश्व	: नयी कविता : संप्रेषण की समस्या	पृ.71

21. ऋता बावा	: उपन्यास के सिद्धांतों का विकास और विवेचन	पृ.121
22. धीरेन्द्र वर्मा	: हिन्दी साहित्य कोश	पृ.431
23. रोहिताश्व	: समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.295
24. कमलेश्वर	: नीली झील, समग्र कहानियाँ	पृ.359
25. कमलेश्वर	: तलाश, समग्र कहानियाँ	पृ.243
26. रेनेवेलेक व आस्टिन	: साहित्य-सिद्धांत-अनुपालीवाला	पृ.249
27. आशा मेहता	: विचार प्रधान उपन्यास में कथ्य और शिल्प	पृ.20
28. कमलेश्वर	: समुद्र में खोया आदमी, समग्र उपन्यास	पृ.320
29. कमलेश्वर	: डाक बंगला, समग्र उपन्यास	पृ.218
30. निरूपमा भट्ट	: स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक हिन्दी कहानी	पृ.175
31. तरूलता मटियानी	: हिन्दी कहानीकारों के कथा-चिन्तन के संदर्भ में उनके कहानी साहित्य का मूल्यांकन	पृ.132
32. तरूलता मटियानी	: हिन्दी कहानीकारों के कथा-चिन्तन के संदर्भ में उनके कहानी साहित्य का मूल्यांकन	पृ.255
33. नामवर सिंह	: कहानी : नई कहानी	पृ.29
34. कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया, समग्र कहानियाँ	पृ.131
35. कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया, समग्र कहानियाँ	पृ.134
36. कमलेश्वर	: राजा निरबंसिया, समग्र कहानियाँ	पृ.133
37. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.155
38. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.158
39. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.159
40. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.161
41. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.157

42. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.154
43. कमलेश्वर	: देवा की माँ, समग्र कहानियाँ	पृ.154
44. कमलेश्वर	: गर्मियों के दिन, समग्र कहानियाँ	पृ.128
45. कमलेश्वर	: सींखचे, समग्र कहानियाँ	पृ.68
46. कमलेश्वर	: खोई हुई दिशाएँ, समग्र कहानियाँ	पृ.368
47. कमलेश्वर	: खोई हुई दिशाएँ, समग्र कहानियाँ	पृ.370
48. तरूलता मटियानी	: हिन्दी कहानीकारों के कथा-चिन्तन के संदर्भ में उनके कहानी साहित्य का मूल्यांकन	पृ.258
49. कमलेश्वर	: जार्ज पंचम की नाक, समग्र कहानियाँ	पृ.288
50. कमलेश्वर	: जार्ज पंचम की नाक, समग्र कहानियाँ	पृ.289
51. कमलेश्वर	: मांस का दरिया, समग्र कहानियाँ	पृ.339
52. कमलेश्वर	: मांस का दरिया, समग्र कहानियाँ	पृ.339
53. कमलेश्वर	: मांस का दरिया, समग्र कहानियाँ	पृ.345
54. कमलेश्वर	: मांस का दरिया, समग्र कहानियाँ	पृ.346
55. कमलेश्वर	: नीली झील, समग्र कहानियाँ	पृ.359
56. कमलेश्वर	: नीली झील, समग्र कहानियाँ	पृ.352
57. कमलेश्वर	: नीली झील, समग्र कहानियाँ	पृ.357
58. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.141
59. कमलेश्वर	: बयान, समग्र कहानियाँ	पृ.431
60. कमलेश्वर	: बयान, समग्र कहानियाँ	पृ.429
61. कमलेश्वर	: नागमणि, समग्र कहानियाँ	पृ.600
62. कमलेश्वर	: नागमणि, समग्र कहानियाँ	पृ.602
63. कमलेश्वर	: नागमणि, समग्र कहानियाँ	पृ.594
64. कमलेश्वर	: नागमणि, समग्र कहानियाँ	पृ.599
65. कमलेश्वर	: जोखिम, समग्र कहानियाँ	पृ.589

66. कमलेश्वर : जोखिम, समग्र कहानियाँ पृ.585

67. कमलेश्वर : इतने अच्छे दिन, समग्र कहानियाँ पृ.647

68. कमलेश्वर : इतने अच्छे दिन, समग्र कहानियाँ पृ.651

69. कमलेश्वर : इतने अच्छे दिन, समग्र कहानियाँ पृ.649

70. कमलेश्वर : दाल चीनी के जंगल, समग्र कहानियाँ पृ.689

71. कमलेश्वर : दाल चीनी के जंगल, समग्र कहानियाँ पृ.690

72. उषा चौहान : नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि पृ.167

73. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास पृ.558

74. कमलेश्वर : 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', समग्र कहानियाँ पृ.11

75. कमलेश्वर : 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', समग्र कहानियाँ पृ.59

76. कमलेश्वर : लौटे हुए मुसाफिर, समग्र कहानियाँ पृ.87

77. कमलेश्वर : लौटे हुए मुसाफिर, समग्र कहानियाँ पृ.107

78. कमलेश्वर : लौटे हुए मुसाफिर, समग्र कहानियाँ पृ.145

79. कमलेश्वर : तीसरा आदमी, समग्र कहानियाँ पृ.173

80. अमर प्रसाद जायसवाल : हिन्दी लघु उपन्यास पृ.16

81. कमलेश्वर : समुद्र में खोया हुआ आदमी पृ.310

82. कमलेश्वर : समुद्र में खोया हुआ आदमी पृ.307

83. कमलेश्वर : समुद्र में खोया हुआ आदमी पृ.346

84. कमलेश्वर : समुद्र में खोया हुआ आदमी पृ.293

85. कमलेश्वर : काली आँधी, समग्र उपन्यास पृ.387

86. कमलेश्वर : काली आँधी, समग्र उपन्यास पृ.385

87. कमलेश्वर : काली आँधी, समग्र उपन्यास पृ.366

88. कमलेश्वर : काली आँधी, समग्र उपन्यास पृ.368

89. कमलेश्वर : डाक बंगला, समग्र उपन्यास पृ.227

90. कमलेश्वर	: डाक बंगला, समग्र उपन्यास	पृ.252
91. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.187
92. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास	पृ.558
93. कमलेश्वर	: आगामी अतीत, समग्र उपन्यास	पृ.501
94. कमलेश्वर	: आगामी अतीत, समग्र उपन्यास	पृ.461
95. कमलेश्वर	: वहीं बात, समग्र उपन्यास	पृ.537
96. सत्यजीत चिखलीकर	: कमलेश्वर के उपन्यास	पृ.271
97. कमलेश्वर	: सुबह-दोपहर-शाम, समग्र उपन्यास	पृ.578
98. कमलेश्वर	: सुबह-दोपहर-शाम, समग्र उपन्यास	पृ.591
99. कमलेश्वर	: सुबह-दोपहर-शाम, समग्र उपन्यास	पृ.577
100. कमलेश्वर	: रेगिस्तान, समग्र उपन्यास	पृ.679
101. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान : भूमिका	
102. रोहिताश्व	: कितने पाकिस्तान : क्लासिकल अभिरूचि की महागाथा	पृ.16
103. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.70
104. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.20
105. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान : भूमिका	
106. कमलेश्वर	: अनबीता व्यतीत (उपन्यास)	पृ.144
107. कमलेश्वर	: अनबीता व्यतीत (उपन्यास)	पृ.47
108. कमलेश्वर	: अनबीता व्यतीत (उपन्यास)	पृ.37
109. कमलेश्वर	: अम्मा (उपन्यास)	पृ.87
110. कमलेश्वर	: अम्मा (उपन्यास)	पृ.123
111. कमलेश्वर	: पति,पत्नी और वह	पृ.158
112. कमलेश्वर	: पति,पत्नी और वह	पृ.117
113. कमलेश्वर	: पति,पत्नी और वह	पृ.134

****

उपसंहार

कमलेश्वर का कथा-साहित्य : योगदान एवं सीमाएँ

कमलेश्वर एक प्रगतिशील रचनाकार रहे हैं। उनके लेखन की सोदेश्यता प्रगतिकामी चेतना के विकास और शोषण विरोधी अवधारणाओं को जाग्रत करने से जुड़ी है। एक सही और ईमानदार रचनाकार की तरह कमलेश्वर हमेशा इतिहास की प्रगतिशील वैचारिकता के साथ अपने को संशोधित, परिवर्तित कर, गलत पड़ते जा रहे अंशों को छोड़ते और नकारते हुए, सच्चाई को लगातार स्वीकार करते रहे। यही कारण है कि कमलेश्वर अपने समकालीन रचनाकारों के बीच हमेशा ताजा और नये रहे। कमलेश्वर ने एक भाषण में कहा था -"सर्वहारा के संघर्ष में शामिल, परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध और उसी से सम्बद्ध समांतर रचना ही वह कारगर विकल्प है जो हमारे समय में संगत तथा मनुष्य के लिए सार्थक हो सकती है ! सत्य निरपेक्ष नहीं है। हर सत्य मनुष्य और समय-सापेक्ष है। कोई कला या साहित्य मनुष्य से बड़ा या उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।"[1]

6.1 कथा-साहित्य संबंधी वैशिष्ट्य

कमलेश्वर प्रेमचन्द की परम्परा के स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य के एक प्रधान रचनाकार रहे हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में प्रगतिशील कथाकारों की अनेक महत्त्वपूर्ण सीमाओं का अतिक्रमण किया और अपनी हर रचना को पहले से भिन्न और आकर्षक बनाने की कोशिश की है तथा

कहानी या उपन्यास में हर बार एक नयी समस्या को लेकर, एक नयी आम बात के साथ वे हमारे सामने आये और उन सबके बीच में कमलेश्वर का चेहरा एक बड़े मानवतावादी कथाकार के रूप में हमारी आँखों में उभरता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य के क्षेत्र की स्थिति काफी निराशाजनक थी। ताजे अनुभवों की सामयिक भावुकता और रोमांटिक यथार्थवाद से मुक्त अतिरंजनाओं की अभिव्यक्ति की जा रही थी। एक ओर यशपाल, विष्णु प्रभाकर, रांघेय राघव जैसे लेखक, क्रांतिकारी रोमांटिसिज्म का चित्रण कर रहे थे तो दूसरी ओर जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी जैसे भव्य लेखक निस्तेज व मंद पड़े हुए थे। 'नई कहानी' व 'नये कथाकारों' का अभ्युदय इसी पृष्ठभूमि पर हुआ। 1950 के पश्चात् क्षितिज पर उभरकर आये नये कथाकारों जैसे मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्मा आदि ने 'नई कहानी' के आन्दोलन का सूत्रपात किया।

कमलेश्वर को प्रगतिशील एवं मुक्तिकामी मानवीय भावनाओं का सशक्त कथाकार माना जाता है। कमलेश्वर मुख्यतः शोषण विरोधी चेतना के मध्यवर्गीय भावना, आकांशा और मुक्तिकामी चेतना के रचनाकार प्रमाणित होते हैं। साथ ही वे निम्न वर्ग के संघर्ष और जागरण स्वर को पर्याप्त महत्त्व देते रहे हैं। रामविलास शर्मा ने साहित्य की सोदेश्यता और प्रगतिशीलता को रेखांकित करते हुए कहा है कि "भारतीय साहित्य के लिए देश के जनसाधारण से अलग कोई भविष्य नहीं है जो मजदूर वर्ग के नेतृत्व में आज स्वाधीन मानव जीवन के लिए और शोषण के सभी रूप खत्म करने के लिए लड़ रहे हैं। हमारे लेखक जितना ही इस आन्दोलन के नजदीक आयेंगे उतना ही उनके साहित्य की विषय वस्तु और रूप दोनों ही समृद्ध होंगे।"(2)

स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में कई नूतन प्रवृत्तियों का श्री गणेश हुआ था। स्वातंत्र्योत्तर कालीन बदली राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की असलियत तत्कालीन साहित्य जाहिर करता है। कस्बे के मध्यवर्ग परिवार के सदस्य होने के नाते कमलेश्वर स्वयं इन बदलावों के भोक्ता रहे हैं। जिनका जीवन्त उद्घाटन अपने कथा-साहित्य में कथाकार ने किया है। कमलेश्वर की रचनाधर्मिता उनके जीवनवृत्त एवं परिवेश से जुड़ी हुई हैं। उनका जीवन कठिन व संघर्षपूर्ण दिनों को चित्रित करता है। बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था का काल तनावमुक्त कभी नहीं रहा। उनके लेखन की प्रेरणा परिवार, परिस्थितियाँ व परिवेश से निसृत हैं।

कमलेश्वर की ख्याति का मुख्य आधार उनकी कहानियाँ ही है। उन्होंने मध्यवर्ग को अपनी रचना का विषय बनाया। एक प्रगतिशील कथाकार होने के कारण उनमें जीवन से प्रतिबद्धता एवं शाश्वत मूल्यों के विद्रोह का आग्रह विद्यमान है। डॉ.सुरेश सिन्हा के अनुसार -" कमलेश्वर ने अराजकता की स्थिति को पहचानने का प्रयास किया और अपनी कहानियों के माध्यम से जीवन को विभिन्न स्तरों पर वहन करने वाले उससे संपृक्त केन्द्रीय पात्रों की तलाश की-यथार्थ की तलाश की, जिसकी साक्षी है **'माँस का दरिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'दिल्ली में एक मौत', 'एक रूकी हुई जिन्दगी', 'मुर्दो की दुनिया', 'धूल उड़ जाती है'** आदि कहानियाँ।"(3)

जीवन के प्रति प्रतिबद्धता होना आप अनिवार्य मानते हैं। आपने छूटते, हारते और अकुलाते मनुष्य का चित्रण किया है। आधुनिक संचेतना का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। कमलेश्वर की कोई भी कहानी ऐसी नहीं है जिसमें रूढियों के प्रति तिरस्कार एवं विद्रोह, प्रगतिशीलता एवं नवीन मूल्यों के प्रति आग्रह अभिव्यक्त न हुआ हो। कहानियों में परिलक्षित प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर कमलेश्वर की कहानियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। पारिवारिक जीवन का विघटन कमलेश्वर की कहानियों की एक मुख्य प्रवृत्ति है। आज पारिवारिक संबंधों में सबसे ज्यादा विघटन-टूटन, पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों में आया है। इसके कई कारण होते हैं फिर भी सब समस्याओं की जड़ तो 'अर्थ' ही है। इसका सफल अंकन कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' कहानी में हुआ है। परिवार के सदस्यों के आपसी रिश्तों में आए अंतर को **'कुछ नहीं कोई नहीं', 'तलाश', 'या कुछ और'** आदि कहानियों में दिखाया गया है, जिसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध के तृतीय अध्याय में किया गया है।

आजादी के बाद सत्ता एवं सत्ताधारियों की स्वार्थनीति, भ्रष्ट शासन व्यवस्था, न्यायतन्त्र के खोखलेपन आदि के दुष्परिणामों के शिकार आम-आदमी की असहायता एवं दीन-हीन अवस्था आदि की सफल प्रस्तुति कमलेश्वर की **'लाश', 'जार्ज पंचम की नाक', 'जोखिम', 'रातें', 'दालचीनी के जंगल', 'बयान', 'मानसरोवर के हंस, 'इंसान और हैवान',** आदि कहानियों में देखी जा सकती है। आजादी के साथ घटित देश विभाजन की विभीषिका और उससे उत्पन्न समस्याएँ एवं सांप्रदायिक विद्वेषों के बुझने के बदले प्रज्वलित होते रहने की नियति पर प्रकाश डालने वाली कहानियाँ हैं, **'धूल उड़ जाती है', 'भटके हुए लोग', 'कितने पाकिस्तान'** आदि। इसमें मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास भी प्रकट हुआ है।

'खोई हुई दिशाएँ', 'बेकार आदमी', 'दुःखों के रास्तें' तथा **'दिल्ली में एक मौत'** शीर्षक कहानियों में टूटते हुए व्यक्ति का चित्रण बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक हुआ है। उच्च शिक्षा, उपाधियाँ एवं योग्यताओं के बावजूद भी वे बेकार भटकने को अभिशप्त है क्योंकि उनके पास न धन है न सिफारिश। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए परिवर्तनों एवं प्रगति का असर महानगरीय जीवन पर ज्यादा पड़ा है। महानगरीय परिवेश एवं जीवन में व्याप्त अजनबीपन, अमानवीयता, बेगानेपन, पराएपन, छल-कपटता, क्रूरता, स्वार्थता, कृत्रिमता, अकेलापन, घुटन, कुण्ठा, दबाव आदि का सशक्त चित्रण कमलेश्वर की 'पराया शहर', 'दिल्ली में एक मौत', 'स्मारक', 'अच्छा थीक है' आदि कहानियों में हुआ है।

भौतिक मूल्यों के कारण प्राचीन नैतिक मूल्य और वैयक्तिक नैतिकता भी टूट रही है और आर्थिक विषमताओं और सामाजिक विसंगतियों के कारण व्यक्ति और उसके सम्बन्ध भी टूट रहे हैं। "कमलेश्वर की कहानियों में नए आयामों को कम खोला गया है। दिशाओं को खोने, भटकने एवं नई दिशाओं को खोजने की ही कहानियाँ हैं।"[4] कमलेश्वर का लेखन 1950 के पश्चात् का है अतः कहानियों में पुरानी कहानी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उनकी

प्रारम्भिक कहानियों की भाषा, शैली व शिल्प में संधिकालीन विशेषताएँ अनायास आ गई हैं। प्रारम्भ में भाषा में कस्बाई लेखन के अनुरूप हिन्दुस्तानी प्रयोग हुआ है। महानगर सम्बन्धी कहानियों में यह मोह छूट गया। सीधी सरल भाषा की व्यंजना हुई है। सरल बोधगम्य भाषा कमलेश्वर की विशेषता है। उनकी भाषा में आया लोकतत्व उन्हें रेणु, मार्कण्डेय, के समकक्ष रखता है। दूसरी ओर महानगर के संत्रास को व्यक्त करने वाली सांकेतिक, अर्थगर्भित भाषा का प्रयोग उन्हें निर्मल वर्मा, राकेश के समकक्ष रखता है।

"कहानी शिल्प की दृष्टि से भी कमलेश्वर सफल रहे हैं। उनकी कहानियाँ सुनियोजित ढंग से प्रारम्भ होती है। इसी प्रकार रोचक ढंग से कमलेश्वर की कहानियों का अंत भी होता है।"[5] शिल्प कमलेश्वर की कहानियों का सशक्त पक्ष रहा है। उनका हिन्दी कहानी में प्रवेश 'राजा निरबंसिया' जैसी प्रभावशाली शिल्प को प्रस्तुत करती कहानी से हुआ। मोहन राकेश व राजेन्द्र यादव की तुलना में कमलेश्वर का शिल्प एक कदम आगे है। उन्होंने देशी-विदेशी शिल्प का समन्वय उपस्थित किया है, प्राचीन नवीन शिल्प का संगम भी उनकी कहानियों की अन्यतम गुणवत्ता है।

शिल्प के स्तर पर कमलेश्वर की कहानियों ने कई पड़ाव पार किए हैं। उन सभी पड़ावों पर कहानीकार ने अपने व्यक्तित्व और कला की एक विशिष्ट छाप छोडी है। दोहरे, चौहरे, साम्यमूलक, वैषम्यमूलक 'कथ्य' को प्रस्तुत करती कहानियाँ प्रभान्विति में श्रेष्ठ बन पड़ी हैं। अपनी सृजन प्रक्रिया के प्रारम्भिक दौर में शिल्प के स्तर पर कमलेश्वर की कहानियाँ परम्परा का निर्वाह करती हुई ही दिखाई देती है। अर्थात् जिस प्रकार प्रेमचन्द और उनके समकालीन कहानीकार ऐतिहासिक वर्णनात्मक शैली-शिल्प में किस्सागोई किया करते थे, कमलेश्वर ने भी कुछ वैसा ही किया परन्तु महानगर के संदर्भो में शिल्प के प्रति कमलेश्वर का विशेष झुकाव परिलक्षित होता है। शैली के प्रति 'नई कहानी' के लेखकों में उतना वैविध्य नहीं मिलता जितना कमलेश्वर में।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्ण्य-विषयों के समय कहानीकार कमलेश्वर ने अभिव्यक्ति शिल्प के क्षेत्र में भी नई जमीन तोड़ी है। अपने व्यक्तित्व और प्रतिभा की कथात्मक गरिमा से उसे नवीन स्वरूप, आकार और गरिमा-गौरव प्रदान किया है। शैली-शिल्पगत सौष्ठव ही कमलेश्वर को अपने समकालीन कहानीकारों से विलगाकर अलग स्थान एवं महत्त्व प्रदान करता है। कहना न होगा कि कमलेश्वर में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के विभिन्न स्वरों को सुना जा सकता है। अपनी कहानी यात्रा में वे सतत गतिशील रहे और उनकी सभी कहानियाँ हिन्दी नई कहानी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

कमलेश्वर निःसंशय दायित्व बोध से जुड़े हुए प्रतिबद्ध रचनाकार रहे हैं। सन् 1950 के पश्चात् जो उपन्यासकार हिन्दी में आये उनमें कमलेश्वर ने अपनी एक विशेष पहचान बनायी। कमलेश्वर ने मध्यवर्ग के जीवन की विसंगतियों को जिस तीखे स्वर में मुखरित किया है वैसा कदाचित ही किसी ने मुखरित किया हो। कस्बाई जीवन की वियम स्थिति का, मध्यवर्ग की असंगति एवं सामाजिक असमानता का चित्रण कमलेश्वर ने बड़ी मार्मिकता से

अपने उपन्यासों में किया है। कमलेश्वर के प्रायः सभी उपन्यास निम्न एवं मध्यवर्गीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध हैं। उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में मानवीय पक्ष को संवेदना के धरातल पर सहजता और कलात्मकता से रूपायित किया है।

बहुचर्चित उपन्यासकार कमलेश्वर ने जिस समय उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश तथा स्थितियों में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे थे। ऐसे समय में कमलेश्वर ने अपनी कहानियों की भाँति अपने उपन्यास यात्रा में आये संघर्ष को बड़ी सूक्ष्मता एवं ईमानदारी से देखा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण मोड़ आये और अनेक साहित्यिक आन्दोलन हुए। इन साहित्यिक गतिविधियों को दिशा-निर्देश करने में कमलेश्वर का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

कमलेश्वर की रचनाओं में स्त्री-पुरूष सम्बन्ध पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तुलना की दृष्टि से पूर्णतः निराले रूप में चित्रित हुए हैं। हिन्दी के अधिकांश उपन्यास में अस्वाभाविक, संत्रास तथा पीड़ा से भरे हुए और कुंठा से ग्रस्त मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है, लेकिन कमलेश्वर के उपन्यासों में यह स्थिति बदली-सी अंकित हुई है। उनके उपन्यासों की नायिका प्रतिकूल परिस्थिति का डटकर संघर्ष करते दिखाई देती है। वह जीवन से हताश होकर आत्महत्या करने वाली कमजोर नारी नहीं है। पुरूष पात्र स्थितियों से पलायन करते हैं और स्त्री पात्र समझौता। **'डाक बंगला', 'सुबह-दोपहर-शाम', 'अम्मा', 'कितने पाकिस्तान',** आदि उपन्यास इसके सशक्त उदाहरण हैं।

कमलेश्वर औपन्यासिक यात्रा में 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' से लेकर 'अम्मा' उपन्यास तक अनेक मंजिलों पर से गुजरे हैं। इस यात्रा में कमलेश्वर ने जो मंजिले सफलता से पारकी हैं, संभवतः उनका समकालीन कोई उपन्यासकार नहीं कर सका है। **'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'कितने पाकिस्तान', 'अनबीता व्यतीत'** आदि कमलेश्वर के प्रसिद्ध और बहुचर्चित उपन्यास हैं, जिसके कारण कमलेश्वर अत्यंत सफल उपन्यासकार सिद्ध हुए हैं।

हिन्दी कहानी के महत्त्वपूर्ण स्तंभ और 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर कमलेश्वर 'कथा-संस्कृति' में भारतीय एवं विश्व कथा-संस्कृति के इतिहास से हमें रू-ब-रू कराते हैं। विश्व कथा-संस्कृति के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो यह कहना असंगत न होगा कि कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विश्व की कथा-संस्कृति के विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं और इतिहास से गुजरते हुए सामाजिक और मानवीय मूल्यों को हमेशा महत्त्व दिया है। विश्व की सभ्यताओं, संस्कृतियों और इतिहास के विकास की पहचान का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत विश्व कथा-संस्कृति ही है।

कहना न होगा कि कमलेश्वर ने कथा-संस्कृति को आधार बनाते हुए अपने श्रेष्ठ उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' की रचना की। जिसमें भारतीय संस्कृति की ही नहीं, विश्व की तमाम प्राचीन संस्कृतियों की कलात्मक व्याख्या और मूल्यांकन है, चाहे वह सुमेरी सभ्यता हो, बेबीलोनिया हो, यूनान की

सभ्यता हो, मिस्त्र हो अथवा सिंधु घाटी की सभ्यता। सत्ता प्राप्त करने में संस्कृति और धर्म के दुरूपयोग से अनेक त्रासदियों का जन्म हुआ है। पाकिस्तान का निर्माण भी धर्म के राजनीति में प्रयोग, संस्कृति की गलत व्याख्या, सदभाव और प्रेम के मूल्यों के ह्रास तथा आपसी अविश्वास के कारण हुआ। देश का विभाजन इसी गलत विचारधारा का परिणाम था।

कमलेश्वर के इस उपन्यास में बराबर यह गूंज सुनाई देती है कि धर्म और संस्कृति का दुरूपयोग कई विभाजन और करेगा। यदि इन मानव-विरोधी प्रवृत्तियों को न रोका गया तो कई और पाकिस्तान बनेंगे, हिन्दुस्तान में ही नहीं दूसरे उन देशों में भी जहाँ बहुधर्मी लोग रहते हैं। भाईचारा, सद्भाव, साथ जीने की इच्छाशक्ति ही लोगों को एक रखती आई है। आज के संदर्भ में इन जीवन सूत्रों को मजबूत और गहरा करने की आवश्यकता है। कमलेश्वर ने सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा इतिहास का दुरूपयोग करने की प्रवृत्ति का तर्कसंगत एवं तथ्यात्मक उत्तर दिया है। इतिहास की इस बहस को 'कितने पाकिस्तान' में बहुत रोचक एवं कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। अर्दली महमूद और अदीब इतिहास के उस समय के साहित्यकारों और इतिहासकारों से अपने समय के सच को कहलवाते हैं। "अदीब की अदालत मनुष्य के मन की शाश्वत अदालत है। कानून के नाम पर धर्म का व्यापार करने वालों के पास इतना साहस नहीं है कि वे अदालत में हाजिर हो सके।"(6)

कमलेश्वर के इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके चरित्र पूर्णतः ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिवेश से जुड़े हुए हैं। "कुछ पेशेवर आलोचकों और कलावादियों को यह उपन्यास अच्छा नहीं लगेगा, वे साहित्य में स्पष्ट विचारों को देखने परखने के आदि नहीं हैं। उनकी स्थिति उस भावुक भक्त की तरह है जो हर मूर्ति को प्रणाम करते हुए चलता है। इसके शिल्प पर कुछ लोग नाक मुँह सिकोड़ सकते हैं, परन्तु शिल्प एवं भाषा, संवेदना और विचार तय करते हैं।"(7) स्वतंत्रता के बाद बहुत से अच्छे और चर्चित उपन्यास प्रकाश में आए हैं, लेकिन आधी शताब्दी में महाकाव्यात्मक उपन्यास अब तक यशपाल का 'झूठा सच' (1960) और कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' (जनवरी 2000) ही हैं।

इस प्रकार कमलेश्वर ने अपने राजनीतिक उपन्यासों में समकालीन समस्याओं तथा देश-विभाजन की विभीषिका पर प्रकाश डाला है। **'काली आँधी', 'रेगिस्तान', 'सुबह-दोपहर-शाम', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'अम्मा', 'कितने पाकिस्तान'** जैसे उपन्यास इसके सशक्त उदाहरण हैं।

कहना न होगा कि कमलेश्वर के उपन्यास आकार में लघु होते हुए भी अपनी प्रवृत्ति के कारण प्रभावी सिद्ध हुए हैं। उनके समस्त उपन्यास मानवीय संवेदना के धरातल पर स्थिर है। उनमें कहीं पर भी न तो अनावश्यक विस्तार है और न ही निरर्थक शब्दों की भरमार। कमलेश्वर के उपन्यासों की भाषा, उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति है। कम से कम शब्दों में सम्पूर्ण परिवेश को उद्घाटित करने का सामर्थ्य उसमें है। भाषा का प्रयोग यथार्थ के नये स्वरूप के कारण कमलेश्वर में और भी प्रभावशाली हो गया है। भाषा प्रयोगों तथा संवादों की दृष्टि से कमलेश्वर की सफलता प्रायः स्पृहणीय है।

डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में -"उनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता उनकी साफ-सुथरी भाषा का प्रवाह एवं यथार्थता है। चित्रात्मक भाषा की संयोजना एवं वातावरण का यथार्थ निर्माण करने में वे सफल रहे हैं। आसपास के परिचित परिवेश के छोटे-छोटे बौरे एवं बारिक रेशे भी उनकी दृष्टि से छूटने नहीं पाये हैं। सामाजिक दायित्व का निर्वाह एवं सोद्देश्यता उनके उपन्यासों की प्रमुख दूसरी विशेषता है।"[8]

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में कमलेश्वर के भाषा प्रयोगों के कुछ नवीन आयाम विकसित हुए हैं। भाषा की यह विलक्षणता उनके **'डाक बंगला'** और **'समुद्र में खोया हुआ आदमी'** में भी देखी जा सकती है, जहाँ उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से स्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। कमलेश्वर का औपन्यासिक दृष्टिकोण एक चिंतन का निर्माण करता है और विशेष यह है कि उनका यह चिन्तन कहीं बोझिल नहीं होता। उनके उपन्यासों में चित्रित मानवी जीवन का पक्ष हमारे अपने सामाजिक जीवन का पक्ष लगता है और मैं समझती हूँ कि यही उनके उपन्यासों की उपलब्धि है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यास के शिल्प को नूतन बनाया। उन्होंने अनुभव एवं अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग किए हैं। उनके अधिकांश उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में रचित हैं। भावों और घटनाओं को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए फैण्टेसी शैली, प्रतीकों, बिम्बों, संकेतों, का प्रसंगानुकूल इस्तेमाल उन्होंने किया है। उपन्यासों में समकालीन समस्याओं को उजागर करने के लिए कमलेश्वर ने व्यंग्य का सहारा लिया है। पूर्वदीप्ति शैली के सफल प्रयोग से उनके उपन्यासों एवं कहानियों की चारूता बढ़ी है।

अपने युग को निसन्देह कमलेश्वर ने समकालीन लेखकों से ज्यादा अनुभूत किया है अर्थात् कमलेश्वर एक प्रतिबद्ध कथाकार है। प्रतिबद्ध लेखक जीवन को जिस रूप में जीता है और भोगता है उसे उसी रूप में चित्रित करता है। कमलेश्वर ने कथाओं में युगबोध और समय सम्पृक्ति को अधिक महत्त्व दिया है। अतः कमलेश्वर के कथा-साहित्य के विश्लेषण के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जहाँ तक सम्भव है जीवन के कटु सत्यों को लेकर जीनेवाले यथार्थ चरित्रों का उद्‌घाटन किया है। उनकी कृतियाँ एक प्रकार से पाठकों को अपने साथ 'इन्वॉल्व' करने वाली कृतियाँ हैं क्योंकि जिस मार्मिक मानवी पक्ष का वे चित्रण करते रहे हैं, वह हमारे सामाजिक जीवन का, हमारा अपना अनुभव रहा है। कमलेश्वर एक जुझारू शख्सियत की तरह अपनी अंतिम साँस तक लिखते रहे। चाहे हिन्दू-मुस्लिम एकता का सवाल हो, चाहे आतंकवाद की समस्या हो, चाहे छद्‌म धर्मनिरपेक्षता या कट्टर धार्मिकता का सवाल हो, या फिर भारत-पाकिस्तान संबंध, या नैतिक मूल्यों के क्षण से लेकर आम आदमी के रोजमर्रा जीवन से जुड़े सवाल हो - कमलेश्वर जी ने अपने नीर-क्षीर विवेक से बेबाक रूप में सभी पर लेखनी चलायी।

6.2 योगदान और सीमाएँ

कमलेश्वर सिर्फ एक शरीर का प्रतीक नहीं वरन् एक ख्यातिलब्ध साहित्यकार, अद्‌भुत, बेजोड पत्रकार व कुशल पटकथा लेखक रहे हैं। उन्होंने अपने को एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् साहित्य के अलावा पत्रकारिता, टी.वी धारावाहिकों और सिनेमा माध्यमों से भी वे गहरे व जीवंत रूप से जुड़े रहे। कमलेश्वर बीसवीं सदी के हिन्दी कहानीकारों में अग्रणी रहे। उनमें एक साथ प्रेमचन्द व फणीश्वरनाथ रेणु के गुण धर्मो का विकास देखा जा सकता है।

साहित्य में राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश के साथ मिलकर कमलेश्वर ने 'नई कहानी' आन्दोलन का सूत्रपात किया। 1972 ई. में आपने समान्तर कहानी का आन्दोलन चलाकर युवा कहानीकारों को आकृष्ट किया था। इन आन्दोलनों के साथ भीतर तक जुड़कर उन्होंने कहानी लेखन किया। सही शब्दों में कहा जाए तो कमलेश्वर नई सृजनशीलता के प्रणेता ही नहीं, वरन् हर उस नयेपन के समर्थक थे, जिसकी सामाजिक सार्थकता पर उन्हें यकीन था। उनका स्वयं का व्यक्तित्व और साहित्य मानवतावाद को प्रतिबिम्बित करता है। अपने साहित्य में उन्होंने समाज के परिवर्तित मूल्यों को अंकित किया। उनका लेखन परिवेश व सृजनभूमि के द्वंद्व से उपजा है। परिवेश के परिवर्तन से कथ्य का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। परन्तु कमलेश्वर इन कहानी आन्दोलनों से संलग्न होकर या विलग होकर 'समकालीन यथार्थ' की व्यंजना के दायित्व को नहीं भूले।

राजेन्द्र यादव जहाँ मध्यवर्ग की भाषा शैली को बर्हिमुखी पात्रों के रूप में चित्रित करते हैं वहाँ मोहन राकेश मन के संवेदनशील पक्षों को निम्नमध्य वर्गीय पात्रों के परिवेश में। कमलेश्वर की बहुमुखी प्रतिभा कस्बे-ग्राम, महानगर और आन्तरिक भावों के पात्रों को सम्पन्न करती है। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार -"'नई कहानी' के प्रति लेखकों - मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर में कमलेश्वर ही ऐसे हैं जिन्होंने सामाजिक विसंगतियों, टूटते हुए जीवन मूल्यों, बढते हुए भ्रष्टाचार और व्यक्ति के अमानवीकरण को वाणी देने का निरंतर प्रयत्न किया है।"[9]

यह सही है कि स्थापित साहित्यकारों की ओर से सर्वाधिक हमले कमलेश्वर पर ही हुए, यहाँ तक कि उनकी वजह से साहित्य में स्थापित रचनाकारों ने भी उनको नही बख्शा। पर, कमलेश्वर ने इसकी परवाह किए बिना अपना काम जारी रखा और आलोचकों को भी गले लगाते रहे। प्रेमचन्द और यशपाल के पश्चात् अवतरित नये कहानीकारों की पीढी में उन्होंने प्रभावी भूमिका अदा की और जब-जब कहानी की दिशा में भटकाव आए, उन्होंने समीक्षक की तरह मार्गदर्शन भी किया।

कहा जाता है कि ईश्वर किसी व्यक्ति को सभी गुण एक साथ नहीं देता, पर कमलेश्वर इसका अपवाद रहे। वे उन अपवादस्वरूप लोगों में से रहे, जिन्होंने अपने विभिन्न गुणों के साथ कई भूमिकाओं को जिया। ख्यातिलब्ध साहित्यकार, कथाशिल्पी, संपादक, अनुवादक, उपन्यासकार, कुशल

पटकथा-लेखक, दूरदर्शी पत्रकार, आन्दोलनकर्मी व सशक्त प्रशासक के रूप में उन्होंने हर भूमिका को जिंदादिली के अंदाज में जिया। 27 जनवरी 2007 को उनके देहावसान से उनकी भौतिक काया भले ही विलुप्त हो गयी हो, पर उनकी कभी न खत्म होने वाली और निरंतर सक्रिय बनी रहने वाली क्रांतिधर्मी रचनात्मक बेचैनी अभी भी जिन्दा है, जो आगामी पीढ़ियों को उनके वजूद का अहसास कराती रहेगी।

****

उपसंहार परिशिष्ट : संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	पृ.221
2. रामविलास शर्मा	: मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य	पृ.22
3. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	पृ.584
4. रमेशचन्द्र लवानिया	: हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य	पृ.227
5. महेश 'दिवाकर'	: हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन	पृ.219
6. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	पृ.47
7. कुँवरपाल सिंह	: वर्तमान साहित्य, 2007	पृ.118
8. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	पृ.302
9. रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	पृ.311

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्रम. रचनाकार	शीर्षक	प्रकाशन	वर्ष
1. अमर ज्योति	: महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-वादी दृष्टि	राष्ट्रभाषा संस्थान, दिल्ली	1985
2. अमर प्रसाद जायसवाल	: हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन	साहित्य निलय, कानपुर	1994
3. अरूणा गुप्त	: छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली	1989
4. अशोक भाटिया	: समकालीन हिन्दी कहानी का विकास	भावना प्रकाशन, दिल्ली	2000
5. आशा मेहता	: विचार प्रधान उपन्यासों में कथ्य और शिल्प	भारतीय ग्रंथ, निकेतन	1997
6. उषा चौहान	: नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि	हिमालय पुस्तक भण्डार, दिल्ली	1986
7. ऋता बावा	: उपन्यास के सिद्धांतों का विकास और विवेचन	पुष्पाञ्जलि प्रकाशन	2001
8. एस.राधाकृष्णन	: धर्म और समाज	लिपि प्रकाशन	1973
9. कमलेश्वर	: अनबीता व्यतीत	लोकभारती प्रकाशन	2004
10. कमलेश्वर	: अपनी निगाह में	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली	2004
11. कमलेश्वर	: अम्मा	राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि	2006
12. कमलेश्वर	: आँखों देखा पाकिस्तान	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली	2005
13. कमलेश्वर	: कथा-संस्कृति	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	2007
14. कमलेश्वर	: कमलेश्वर अभी जिन्दा है	भावना प्रकाशन	2006
15. कमलेश्वर	: कितने पाकिस्तान	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली	2004
16. कमलेश्वर	: जलती हुई नदी	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली	2003

17. कमलेश्वर : जो मैने जिया — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2006

18. कमलेश्वर : तुम्हारा कमलेश्वर — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2003

19. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका — अक्षर प्रकाशन, दिल्ली — 1966

20. कमलेश्वर : पति-पत्नी और वह — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 2006

21. कमलेश्वर : परिक्रमा — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 2004

22. कमलेश्वर : भारतमाता ग्रामवासिनी — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 2005

23. कमलेश्वर : मेरा हमदम मेरा दोस्त — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 1972

24. कमलेश्वर : मेरे साक्षात्कार — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 2004

25. कमलेश्वर : यादों के चिराग — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2007

26. कमलेश्वर : समग्र कहानियाँ — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2002

27. कमलेश्वर : समग्र उपन्यास — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2003

28. कृष्णा अग्निहोत्रीः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी — इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली — 1983

29. के.एम.मालती : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी — लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद — 1991

30. के.पी.जया : कथाकार कमलेश्वर — जवाहर पुस्तकालय — 2007

31. गायत्री कमलेश्वर : कमलेश्वर मेरे हमसफर — राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली — 2005

32. गोपालराय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि — 2006

33. गोरख नाथ तिवारी	: अन्तिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाशास्त्रीय अध्ययन	गिलिस बाजार कानपुर	2010
34. घनश्याम मधुप	: हिन्दी लघु उपन्यास	राधाकृष्णन प्र., दरियागंज, दिल्ली	1983
35. जयन्ती प्रसाद नौटियाल	: हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ (तात्तिवक विवेचन)	किताबघर प्रकाशन, दिल्ली	1977
36. देवेश ठाकुर	: हिन्दी कहानी का विकास	चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद	1979
37. नरेन्द्र मोहन	: आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ	इन्डिया प्रा.लि. दिल्ली	1977
38. पारूकान्त देसाई	: हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास	चिंतन प्रकाशन	2002
39. पुष्पपाल सिंह	: समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1986
40. प्रताप नारायण टंडन	: हिन्दी उपन्यासों में कथा-शिल्प का विकास	हिन्दी प्रचारक संस्थान,वाराणसी	1978
41.प्रदीपकुमार शर्मा	: हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान	अभय प्रकाशन	1990
42. प्रदीप मांडव(सं)	: कमलेश्वर 'धरोहर'	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	2008
43. प्रदीप मांडव(सं)	: कमलेश्वर 'महागाथा'	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	2008
44. प्रदीप मांडव(सं)	: महानीच की आत्मकथा	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	2008
45. प्रदीप मांडव(सं)	: विरासत के अलम्बरदार 'कमलेश्वर'	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	2009
46. बच्चन सिंह	: आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	लोकभारती प्रकाशन	1986
47. मंजुला देसाई	: कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन	क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स	2002
48. मधुकर सिंह	: कमलेश्वर	शब्दकार,तुर्कमान गेट, दिल्ली	1977

49. महेश दिवाकर	: हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन	सुमन प्रकाशन	1992
50. रमेश चन्द्र लवानिया	: हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	अमित प्रकाशन, गाजियाबाद	1973
51. राजेन्द्र यादव	: कमलेश्वर की'श्रेष्ठ कहानियाँ'	अक्षर प्रकाशन	1976
52. राजेन्द्र यादव	: मेरा हमदम मेरा दोस्त	अक्षर प्रकाशन	1971
53. राधेश्याम कौशिक	: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास	भारतीय ग्रंथ निकेतन	1988
54. रामचन्द्र तिवारी	: हिन्दी का गद्य साहित्य	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	1992
55. रामदरश मिश्र	: हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन	2001
56. रामधारी सिंह दिनकर	: संस्कृति के चार अध्याय	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट,दिल्ली	1956
57. राममूर्ति त्रिपाठी	: हिन्दी साहित्य का इतिहास	राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद	1985
58. रेखा शर्मा	: कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान	मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद	1991
59. रोहिणी अग्रवाल	: इतिवृत्त की संरचना और संरूप	आधार प्रकाशन	2006
60. रोहिताश्व	: कथा साहित्य के प्रतिमान	अमन प्रकाशन, कानपुर	1986
61. रोहिताश्व	: समकालीन कविता की आलोचना और मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र	प्रभा प्रकाशन	1986
62. रोहिताश्व	: समकालीनता और शाश्वतता	विद्या प्रकाशन	2006
63. लक्ष्मीनारायण लाल	: हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	नेशनल प्रकाशन, दिल्ली	1977
64. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	: आधुनिक हिन्दी कहानी परिपार्श्व	साहित्य भवन, इलाहाबाद	1966
65. विश्वम्भर दयाल गुप्त	: ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य परिप्रेक्ष्य में	मधुवन प्रकाशन, मथुरा	1988

66. शोभा वेरेकर	: साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास	पीयूष प्रकाशन	2001
67. सुधा बालकृष्णन	: हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप	संजय बुक सेन्टर, वाराणसी	1997
68. सुधा सिंह	: अमृतराय का कथा-साहित्य मध्यवर्गीय जीवन	विद्या प्रकाशन	2003
69. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी कहानी उद्‌भव और विकास	अशोक प्रकाशन	1967
70. सुरेश सिन्हा	: हिन्दी उपन्यास	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	1967
71. सूर्य नारायण रणसुभे	: कहानीकार कमलेश्वर संदर्भ और प्रकृति	पंचशील प्रकाशन जयपुर	1977
72. सोनिया सिरसाट	: राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	विद्या प्रकाशन	2004
73. हेतु भारद्वाज	: परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य	साहित्य प्रकाशन	1995
74. त्रिभुवन सिंह	: हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी	1978

****

पत्र – पत्रिकाएँ

1. अन्यथा	: लुधियाना
2. अक्षर	: रायपुर
3. आजकल	: दिल्ली
4. कथाक्रम	: लखनऊ
5. दस्तावेज	: गोरखपुर
6. नया ज्ञानोदय	: दिल्ली
7. बराबर	: मुंबई
8. वर्तमान साहित्य	: अलीगढ
9. वीणा	: वाराणसी
10. समीचीन	: मुंबई
11. सारिका	: मुम्बई
12. हंस	: दिल्ली

कोश :

1. बृहत हिन्दी कोश	: कालिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड
2. हिन्दी साहित्यकोश	: धीरेन्द्र वर्मा

****